अपने माहिं टटोल
(Note: ch.2 is incompleted.)

प्रवचन-क्रम

1. चित्त का दर्पण...2
2. बोध की पहली किरण..12
3. चित्त मौन हो..27
4. जीवन का लक्ष्य...42
5. यांत्रिक जीवन से मुक्ति..58
6. एक ही मंगल है--जागरण..75
7. तुम ही हो परमात्मा..90
8. अहंकार का भ्रम...105
9. नई संस्कृति की खोज..123 10...सत्य है अनुसंधान -- मुक्त और स्वतंत्र 137

अपने माहिं टटोल
पहला प्रवचन

चित्त का दर्पण

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से आने वाले तीन दिनों की चर्चाओं का मैं प्रारंभ करूंगा।
एक युवा फकीर सारी पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकला। उसने सारी जमीन घूमी। पहाड़ों और रेगिस्तानों में, गांव और राजधानियों में, दूर-दूर के देशों में वह भटका और घूमा। और फिर सारे जगत का भ्रमण करके अपने देश वापस लौटा। जब यात्रा पर निकला था, तो जवान था; जब वापस आया, तो बूढ़ा हो चुका था। अपने देश की राजधानी में आने पर उसका बड़ा स्वागत हुआ। उस देश के राजा
ने उसके चरण छुए और उससे कहा कि धन्य है हमारा भाग्य कि तुम हमारे बीच पैदा हुए। और तुमने हमारी सुगंध को सारी दुनिया में पहुंचाया। तुम्हारी कीर्ति के साथ हमारी कीर्ति गई। तुम्हारे शब्दों के साथ, हमने जो हजारों वर्षों में संगृहीत किया था, वह लोगों तक पहुंचा। और मैं भी एक प्रतीक्षा किए तुम्हारी राह देख रहा हूं। अनेक बार मेरे मन में यह ख्याल उठा है कि मेरा मित्र और मेरे देश का भाग्य जब सारी दुनिया से घूम कर लौटेगा, तो शायद मेरे लिए कुछ भेंट भी लाए। शायद सारी दुनिया में कुछ उसने खोजा हो जो मेरे काम का हो। तो मैं बड़ी आशा से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं। मेरे लिए क्या लाए हो?
वह फकीर और वह राजा बचपन के मित्र थे। वे एक ही स्कूल में पढ़े थे। राजा बड़ा सम्राट हो गया था। उसने अपने राज्य की सीमाएं बहुत बढ़ा ली थीं। और उसका मित्र फकीर भी सारी दुनिया में यश और कीर्ति अर्जित करके लौटा था। करोड़ों-करोड़ों लोगों ने उसे सम्मान दिया था। और दुनिया का कोई कोना न था जहां उसके चरण और उसकी वाणी न पहुंची हो। उस राजा ने कहा कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं कि मेरे लिए क्या भेंट लाए हो?
वह फकीर बोलाः मैंने भी यह सोचा था कि जरूर घर लौट कर यह बात पूछी जाएगी। और जरूर ही तुम कहोगे कि क्या लाए हो मेरे लिए? और मैंने दुनिया में बहुत सी चीजें देखी हैं और मैंने सोचा कि उन चीजों को मैं ले चलूं। लेकिन हर चीज लाते वक्त मुझे ख्याल आया, यह तो तुम्हारे पास पहले से ही मौजूद होगी। तुम्हारे पास कौन सी चीज की कमी है! तुमने दूर-दूर के देश जीत लिए हैं! तुम्हारे महलों में सारी दुनिया की संपदा आ गई! तुम्हारे पास कौन सी चीज की कमी होगी जो मैं ले चलूं? आखिर मैं थक गया और मुझे कोई चीज ऐसी न मालूम पड़ी जो तुम्हारे महलों में न पहुंच चुकी हो, जिसके तुम मालिक न बन चुके होओ। बहुत सोच कर एक चीज जरूर मैं ले आया हूं। लेकिन अकेले में और एकांत में उस चीज को मैं तुम्हें दूंगा।
उस फकीर के पास कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता था, एक छोटा सा झोला था, जो उसके कंधे पर लटका था। उसमें क्या हो सकता था? ऐसी कौन सी चीज हो सकती थी जो राजा के पास न हो? क्योंकि फकीर ने खुद ही कहा कि मैं उन सारी चीजों को छोड़ आया हूं जिनका मुझे ख्याल पैदा हुआ कि तुम्हारे पास पहले से होंगी। उस फटे से झोले में क्या हो सकता था? बड़ी उत्सुकता और आकांक्षा से वह राजा उसे अपने महलों में ले गया। सारे लोग जब पीछे छूट गए, उसने उस फकीर से फिर कहा कि निकालें, दिखाएं मुझे, क्या ले आए हैं मेरे लिए?
उस फकीर ने जो निकाला, आप भी नहीं सोच सकते कि वह क्या लाया होगा। वह
एक बड़ी सस्ती सी, पर बड़ी अनूठी चीज ले आया था। उसने अपने झोले में से जो निकाला, बड़ी साधारण सी चीज थी। एक छोटा सा आईना था, एक छोटा सा दर्पण था चार पैसे का। और उसने उस राजा को वह दर्पण दिया।
राजा ने उसे उलट-पलट कर देखा, उसने कहाः क्या? यह दर्पण ले आए हो?
उस फकीर ने कहाः यह मुझे सबसे कठिन चीज मालूम पड़ी, जो राजाओं के पास नहीं होती। इसमें तुम खुद को देख सकोगे। और दुनिया में बहुत कम लोग हैं जो खुद को देखने में समर्थ होते हैं। और जिनके पास बहुत कुछ होता है--धन, संपत्ति, यश, वे तो अपने को देखने में और भी असमर्थ हो जाते हैं। तो बहुत

खोज कर मैं यह दर्पण ले आया हूं ताकि तुम अपने को देख सको। इस दर्पण को सस्ता मत समझना। ऐसे तो घर-घर में दर्पण होते हैं, लेकिन खुद को देखने में कौन समर्थ हो पाता है? दर्पण में हम अपने को रोज देख लेते हैं, लेकिन क्या कभी हम अपने को देख पाए हैं? तो उस फकीर ने कहा कि यह दर्पण इस याद के लिए तुम्हें दे जाता हूं कि जिस दिन तुम अपने को देखने में समर्थ हो जाओगे, उस दिन ही समझना कि तुम्हें दर्पण उपलब्ध हुआ है।
मैं भी सोचता था रास्ते में कि आपके लिए क्या ले चलूं? सोचा कि मैं भी दर्पण खरीद लूं और आपको एक दर्पण भेंट कर दूं। क्योंकि जमीन पर वे लोग कम होते जा रहे हैं जिनके पास दर्पण हो, जो खुद को उसमें देख सकें और पहचान सकें। पर मैंने कहाः पता नहीं, दर्पण किसी काम में आए या न आए! और दर्पण बड़ी कमजोर चीज है। पता नहीं, आपके हाथों में बचे या टूट जाए! और वह कहानी का भी क्या हुआ अंत में, यह भी अब तक पता नहीं चल सका कि वह राजा अपने को देखने में समर्थ हो पाया या नहीं। इतनी ही कहानी सुनी गई है। इसके बाद क्या हुआ, इसका कोई भी पता नहीं--कि उस दर्पण का क्या हुआ? उस राजा का क्या हुआ?
तो मैं अगर दर्पण ले भी आऊं, तो उस दर्पण का क्या होगा, इसका कोई पता नहीं था। इसलिए फिर मैंने सोचा कि तीन दिन में वे बातें करूंगा, जिनसे आपके चित्त में एक दर्पण बन जाए और आप अपने को देखने में समर्थ हो सकें। तो आने वाले तीन दिनों में, आपके चित्त को दर्पण कैसे बनाया जा सके, उस संबंध में कुछ बातें कहूंगा। और आपका चित्त दर्पण बन जाए, तो वह दर्पण न तो फूट सकता है, न टूट सकता है। और वह दर्पण चार पैसे में किसी बाजार में भी नहीं मिल सकता। चार लाख में भी नहीं, चार करोड़ में भी नहीं। कितनी भी संपदा देकर उसे किसी बाजार से खरीदने का कोई उपाय नहीं। वह तो जब खुद को ही कोई निखारता है, खुद के ही जीवन को जब कोई घिसता है और खुद के ही पत्थर जैसे मन को जब कोई चमकाता है, तो वह दर्पण उपलब्ध होता है जिसमें खुद की छवि बनती है।
और बड़े रहस्यों का रहस्य यह है कि जो खुद को जानने में समर्थ हो जाता है, वह परमात्मा को भी जान लेता है। और जो खुद को जानने में समर्थ नहीं होता, वह चाहे कुछ भी जान ले, उसके जानने का दो कौड़ी से ज्यादा कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि जिसके भीतर अज्ञान हो, उसके बाहर के ज्ञान का क्या अर्थ हो सकता है? जिसके भीतर का दीया बुझा हो, उसके घर के बाहर सूरज भी जल रहा हो, तो उसका क्या प्रयोजन है? जिसकी अपनी आंखें फूटी हों और बंद हों, रास्तों पर कितनी ही रोशनी हो, उस रोशनी से क्या होगा? लेकिन अगर भीतर दीया जल जाए, और रास्ते अंधकार से भरे हों, अमावस की रात से भरे हों, तो भी वह रास्ते का कोई खतरा नहीं है, उस अंधकार का कोई डर नहीं है। एक छोटा सा दीया भीतर हो, तो जहां भी हम कदम रखेंगे वहां प्रकाश हो जाएगा, अंधेरा रास्ता प्रकाशित हो उठेगा और हम उस रास्ते को पार कर सकेंगे।
और बाहर के जगत में चाहे कितना ही अज्ञान हो, भीतर अगर ज्ञान की एक किरण भी फूट जाए, तो इस दुनिया भर का अज्ञान भी उस एक किरण के सामने बहुत कमजोर होता है। और भीतर अगर दर्पण मिल जाए, तो हम खुद को तो देख ही पाएंगे और उस खुद के देखने में हम यह भी जान पाएंगे कि उस खुद में ही वह भी छिपा था जो खुदा है, स्वयं में वह भी छिपा था जो सत्य है, स्वयं में वह भी मौजूद था जो कि भगवान है। और स्वयं में खोजे बिना चाहे हम किन्हीं मंदिरों की पूजा करें और किन्हीं मस्जिदों में प्रार्थनाएं पढ़ें और किन्हीं शिवालयों में जाकर हम दीये जलाएं, न कोई शिवालय है और न कोई मस्जिद और न कोई मंदिर काम का आएगा, क्योंकि मंदिर तो एक है जो मनुष्य के भीतर है। पत्थर और ईंटों के मंदिरों ने मनुष्य को परमात्मा से जोड़ा नहीं बल्कि तोड़ा है। मंदिर और मस्जिद दुश्मन की भांति खड़े हो गए हैं। मस्जिद और मंदिर में जाने वाले लोग एक-दूसरे के शत्रु होकर खड़े हो गए हैं।
भगवान क्या किसी के बीच शत्रुता बन सकता है? परमात्मा क्या मनुष्य और मनुष्य को तोड़ने के लिए दीवाल बन सकता है? परमात्मा क्या कोई सीमा बन सकता है जो एक को दूसरे से अलग कर दे? निश्चित ही जो मंदिर और मस्जिद मनुष्य को मनुष्य से अलग करते हों, वे झूठे होंगे, पत्थरों से बनाए गए होंगे, उनमें बैठे हुए भगवान भी पत्थर से ज्यादा नहीं हो सकते हैं।

लेकिन एक और मंदिर भी है, जो मन का है। और वह जो मन का मंदिर है, वह न हिंदू का है, और न मुसलमान का है, और न ईसाई का, और न जैन का। क्योंकि मन तो मन है, न वह हिंदू होता है, न मुसलमान और न ईसाई। उस मन के मंदिर को अगर कोई उपलब्ध हो जाए, खोज कर ले, तो उसी में वह प्रभु को भी पा लेगा।
तो उस दर्पण की हम चर्चा करेंगे इन तीन दिनों में। और वह खुद के भीतर दर्पण कैसे विकसित हो जाए? कैसे हम उसको दर्पण को निर्मित कर लें और उस दर्पण में अपने को पा लें? क्योंकि जो मनुष्य अपने को भी नहीं पा सका है, वह और क्या पा सकेगा? और खुद को छोड़ कर चाहे वह सारे जगत का साम्राज्य भी पा ले, तो भी आखिर में पाएगा--उसके हाथ खाली के खाली हैं।
सिकंदर जिस दिन मरा, उस दिन जिस राजधानी में उसकी अरथी निकली, लोग हैरान हो गए। एक ही बात उस दिन उस राजधानी में राजपथ पर गूंजने लगी, हजार-हजार ओंठों पर, हजार-हजार मुंह से एक ही बात पूछी जाने लगी कि यह क्या है? सिकंदर के दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके हुए थे! ऐसी अरथी कभी भी नहीं निकली थी। लोग पूछने लगे कि क्या कोई भूल हो गई है? अरथी के बाहर दोनों हाथ क्यों लटके हुए हैं? हाथ तो अरथी के भीतर होते हैं।
धीरे-धीरे लोगों को पता चला, सिकंदर ने मरने के पहले कहा थाः मेरे हाथ अरथी के बाहर रखे जाएं, ताकि लोग देख लें, मैं भी खाली हाथ दुनिया से जा रहा हूं। मैंने बहुत कुछ जीता, जमीन करीब-करीब जीत ली थी। और जो भी ज्ञात था, वह सब मेरा साम्राज्य हो गया था। लेकिन मरते वक्त मैं अनुभव करता हूं कि मुझसे ज्यादा दरिद्र आदमी और कोई नहीं है। और दुनिया यह बात देख ले कि एक सम्राट भी खाली हाथ मरता है। इसलिए मेरे हाथों को अरथी के बाहर खुले लटके रहने देना।
हम सबके हाथ भी खाली ही जाते हैं। और खाली जाएंगे ही। क्योंकि एक ही संपदा है जो प्राणों को भर सकती है, और वह हमारे भीतर है। और बाहर जो भी संपदा है, उसके हम भ्रम में रहें भला कि उसे इकट्ठा करके हम अपने प्राणों को भर लेंगे, परिपूरित कर लेंगे, फुलफिलमेंट हो जाएगा, लेकिन आज तक यह न हुआ है और न होगा। आप भी उसके अपवाद नहीं हो सकते हैं। जीवन का नियम यही हैः जो बाहर है, वह भरने का भ्रम देता है, लेकिन भर नहीं पाता। और जो भीतर है, वही केवल भर सकता है। और उसे लाने को भी कहीं जाना नहीं, कोई यात्रा नहीं करनी, कोई युद्ध नहीं करना, कोई आक्रमण नहीं करना, केवल आंखें फेरनी हैं और भीतर खोज लेना है। वह दर्पण मिल जाए भीतर का, तो यह खोज पूरी हो सकती है।
हममें से सारे लोग ही शायद उसकी खोज में हैं। हममें से शायद ही कोई व्यक्ति हो, जो दुखी, पीड़ित और अशांत नहीं है। हममें से शायद ही कोई हो, जो खाली-खाली अनुभव नहीं करता। हममें से शायद ही कोई हो, जिसे यह अहसास नहीं होता कि मेरा जीवन पानी पर खींची हुई लकीरों की भांति रोज मिटा जा रहा है और मेरे हाथों में कुछ भी उपलब्धि नहीं है। कोई पाना नहीं है, मैं खाली और रिक्त जी रहा हूं और मरा जा रहा हूं। यह जो अहसास है खाली और रिक्त होने का, यह जो एंप्टीनेस है सारी दुनिया में, हर आदमी को अनुभव हो रही है, इस अनुभव को भरने के वह उपाय करता है। लेकिन वे उपाय भी अगर बाहर ही हों, तो उन उपायों से भी कुछ भी नहीं हो पाता।
जब हम पीड़ित और परेशान होते हैं, तो हम भगवान की तलाश में निकलते हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में खोजते हैं उसे। पहाड़ों पर, तीर्थों में खोजने जाते हैं उसे। दूर की यात्राएं करते हैं उसके लिए। लेकिन एक बात भूल जाते हैं कि हमारे भीतर जो प्राणों का प्राण बैठा है, क्या कभी उसको भी खोजेंगे? क्या कभी उसको भी पहचानेंगे?
इसके पहले कि कोई किसी और खोज में जाए, जिसके पास भी थोड़ी समझ और बोध है, उसे अपनी खोज कर लेनी चाहिए। हो सकता है जिसे हम खोजना चाहते हों, वह हमारे भीतर मौजूद हो। और हो सकता है कि जहां हम उसे खोजने जा रहे हैं, वहां वह बिल्कुल ही मौजूद न हो।
एक अंधेरी रात में, एक चर्च पर, एक नीग्रो ने जाकर द्वार खटखटाया। चर्च के पादरी ने द्वार खोला। काश, उसे पता होता कि एक काला आदमी द्वार बजा रहा है, तो वह द्वार भी न खोलता। क्योंकि वह चर्च जो था सफेद चमड़ी के लोगों का चर्च था। अब तक जमीन पर आदमी ऐसा मंदिर नहीं बना पाया जो सबका हो। और जो

मंदिर सबका नहीं है वह परमात्मा का कैसे हो सकेगा? सफेद चमड़ी के लोगों के मंदिर हैं, काली चमड़ी के लोगों के मंदिर हैं; हिंदुओं के मंदिर हैं, मुसलमानों के मंदिर हैं; जैनों के मंदिर हैं, बौद्धों के मंदिर हैं; ब्राह्मणों के मंदिर हैं, शूद्रों के मंदिर हैं; लेकिन मनुष्य का कोई मंदिर नहीं। वह मंदिर भी मनुष्य का नहीं था। दरवाजा खोल दिया तो देखा कि एक नीग्रो खड़ा है, काला आदमी। पुराने दिन होते तो उसने कहा होताः हट शूद्र यहां से, भगवान के मंदिर में तेरे लिए कोई जगह नहीं है! और पुराने दिन होते तो शायद उसकी गर्दन कटवा देता, या उसके कानों में शीशा पिघलवा कर भरवा देता कि तू इस मंदिर के आस-पास क्यों आया! लेकिन जमाना बदल गया है, तो उस चर्च के पादरी को उसे प्रेम से समझा कर लौटा देना पड़ा। उसने उस नीग्रो को कहाः मेरे मित्र, किसलिए मंदिर में आना चाहते हो?
उसने कहाः मन है मेरा दुखी, चित्त है मेरा पीड़ित और चिंताओं से भरा। शांत होना चाहता हूं। जीवन बीत गया मालूम होता है और कुछ भी मैंने पाया नहीं। भगवान की शरण चाहता हूं। यह एक ही मंदिर है गांव में, मुझे भीतर आने दो, भगवान का सान्निध्य मिलने दो।
उस पादरी ने कहाः मित्र, जरूर आने दूंगा। लेकिन जब तक मन शुद्ध न हो, चित्त पवित्र न हो, प्राण शांत न हों, आत्मा ज्योति से न भर जाए, तब तक भगवान से मिलना नहीं हो सकेगा। आकर भी क्या करोगे? जाओ और पहले अपने मन को शुद्ध करो और शांत करो, हृदय को प्रार्थना और प्रेम से भरो, फिर आना। फिर मैं तुम्हें भीतर प्रवेश दूंगा।
वह नीग्रो वापस लौट गया। उस पादरी ने सोचाः न होगा कभी इसका मन शांत
और न यह दुबारा कभी आएगा।
लेकिन कोई दो-तीन महीने बीत जाने के बाद एक दिन बाजार में उस पादरी ने देखा कि वह नीग्रो चला जा रहा है। लेकिन वह तो आदमी दूसरा हो गया मालूम पड़ता है। उसकी आंखों में कोई नई रोशनी, कोई नई झलक। उसके पैरों की चाल बदल गई है, उसके चारों तरफ कोई वायुमंडल ही और हो गया है, उसके ओंठों पर कोई और ही मुस्कुराहट है जो इस जमीन की नहीं है। तो उसने उस नीग्रो को पूछा और कहा कि तुम वापस नहीं आए?
वह नीग्रो हंसने लगा और उसने कहाः मैं तो आना चाहता था। और उसी आने के लिए मैंने प्रार्थनाएं कीं, उसी आने के लिए मैंने भगवान से न मालूम कितनी मनौतियां मानीं, उसी आने के लिए मैंने अपने मन को सब भांति शांत किया। लेकिन मैं क्या करता, खुद भगवान ने मुझे रोक दिया कि मत जाओ। एक रात जब मैं प्रार्थनाएं करके सो गया, तो मैंने सपना देखा कि भगवान खड़े हैं। और वे मुझसे पूछ रहे हैं कि क्यों तू मुझे पुकार रहा है? क्यों तू मुझे बुला रहा है? तो मैंने कहा कि वह जो हमारे गांव का मंदिर है, चर्च है, मैं उसमें प्रवेश पाना चाहता हूं, इसी के लिए सारी प्रार्थनाएं कर रहा हूं। तो भगवान हंसने लगे और उन्होंने कहाः तू बड़ा पागल है! यह ख्याल छोड़ दे। दस साल से मैं खुद उस चर्च में घुसने की कोशिश कर रहा हूं, वह पादरी मुझे भी नहीं घुसने देता! तू यह ख्याल छोड़ दे।
और सच्चाई तो यह है कि उस मंदिर में ही नहीं, आज तक किसी मंदिर में किसी पुरोहित ने भगवान को प्रवेश नहीं पाने दिया। आज तक जमीन पर कोई मंदिर भगवान का घर नहीं बन सका। कई कारण हैं न बनने के।
पहली बात, भगवान प्रेम है और हमारे सब मंदिर व्यवसाय हैं। प्रेम का और व्यवसाय से क्या संबंध हो सकता है? जहां व्यवसाय है, वहां प्रेम का कोई प्रवेश नहीं।
दूसरी बात, सब मंदिर आदमी के बनाए हुए हैं। भगवान आदमी का बनाया हुआ नहीं है। आदमी की बनाई हुई चीज में भगवान का प्रवेश असंभव है।
तीसरी बात, आदमी जो भी बनाएगा, आदमी से छोटा होगा। बनाने वाले से बनाई
गई चीज बड़ी नहीं हो सकती। स्रष्टा से बड़ी उसकी सृष्टि नहीं हो सकती। आदमी खुद ही बहुत छोटा और क्षुद्र है, उसके बनाए हुए मंदिर और भी छोटे और क्षुद्र हैं। और परमात्मा है विराट, असीम। इन क्षुद्र घेरों में और दीवालों में उसका आगमन कैसे हो सकता है? आज तक नहीं हुआ, आगे भी नहीं होगा।

लेकिन जिन लोगों को यह ख्याल पैदा होता है कि हम सत्य की खोज करें, वे किन्हीं मंदिरों में उस खोज को करने लगते हैं। इससे बड़ी भूल और कोई दूसरी नहीं हो सकती।
सत्य की खोज करनी हो, तो खुद को मंदिर बनाना होगा, इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं है। कोई जमीन पर मंदिर नहीं है जहां सत्य की खोज हो सके। हां, हर आदमी खुद मंदिर बन सकता है, जहां भगवान का प्रवेश हो सके। और यह खुद आदमी मंदिर कैसे बन जाए? चित्त दर्पण बन जाए तो आदमी मंदिर बन सकता है। चित्त दर्पण बन जाए तो आदमी इसलिए मंदिर बन सकता है कि उसी दर्पण में भगवान की छवि उतरनी शुरू हो जाती है।
एक बार ऐसा हुआ, एक अरबी बादशाह के दरबार में कुछ यूनानी चित्रकार आए।
और उन चित्रकारों ने कहाः हम अपनी कला का प्रदर्शन करना चाहते हैं। लेकिन अरबी बादशाह के दरबार में अरब के बड़े-बड़े चित्रकार थे, उन्हें बड़ी इस बात से प्रतिस्पर्धा पैदा हुई और उन्होंने कहाः कोई हमारी कला कम है जो इन चित्रकारों को आमंत्रण दिया गया है? अगर ये कुछ प्रदर्शन करना चाहते हैं, तो हम भी कुछ प्रदर्शन करना चाहते हैं।
दोनों चित्रकारों की मंडलियों को, यूनानी और अरबियों को एक बड़ा भवन
दे दिया गया कि वे अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करें।
अरबी चित्रकारों ने बड़ी अदभुत दीवालों पर चित्रकारी की, बड़े खूबसूरत चित्र बनाए। छह महीने तक निरंतर वे दिन-रात श्रम करते रहे और उन्होंने एक पूरी दीवाल पर जादू खड़ा कर दिया। उनकी मेहनत तो देखने जैसी थी, उनका श्रम तो अदभुत था। लेकिन और भी बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी कि यूनानी चित्रकार कुछ भी नहीं कर रहे थे। न उनके पास तूलिकाएं थीं और न रंग था। और राजा ने बहुत बार उनको कहा कि तुम्हें कोई जरूरत हो, तो उन्होंने कहाः हमें कोई भी जरूरत नहीं। उन्होंने अपनी दीवाल पर एक पर्दा लटका लिया था। दोनों दीवालें आमने-सामने थीं। उन्होंने अपनी दीवाल पर एक पर्दा लटका लिया था। अरबी चित्रकार दीवाल पर पागल की भांति मेहनत कर रहे थे और दीवाल को एक अदभुत चित्र में निर्मित कर दिया था। ये यूनानी चित्रकार क्या कर रहे थे? वे अपने पर्दे के पीछे क्या करते थे? न तो वे कभी रंग ले जाते दिखाई पड़े, न कभी तूलिकाएं, लेकिन वे भी दिन-रात भीतर लगे थे, क्या कर रहे थे? सारे नगर में चर्चा थी, उत्सुकता थी। छह महीने पूरे हों, तो लोग देखें।
छह महीने पूरे हुए, राजा गया। राजा भी दीवाना था जानने को कि वे क्या
कर रहे हैं? वे जब कोई सामान नहीं ले जाते, तो क्या करते होंगे? अंतिम दिन आ गया और राजा गया। अरबी चित्रकारों की चित्रकला देखने जैसी थी। दंग हो गए लोग देख कर। इतने सजीव चित्र उन्होंने बनाए थे, जैसे वे दीवाल से बाहर निकल आएंगे। ऐसे सजीव वृक्ष उन्होंने दीवाल पर पेंट किए थे कि भूल हो जाए कि वे असली हैं या नकली। दीवाल पर ऐसे रास्ते थे कि मन होने लगे कि उन पर चल पड़ो। बहुत अदभुत था। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहाः मेरी कल्पना भी न थी कि मेरे दरबार में ऐसे चित्रकार हैं! मुझे ख्याल भी न था कि इतनी बड़ी कला, इतनी क्षमता तुममें है! और फिर वह मुड़ा दूसरी दीवाल की तरफ और उसने यूनानी चित्रकारों को कहाः हटाओ अपना पर्दा। तुमने तो हमारी नींद तक मुश्किल कर दी है, रात में भी सपना आता है कि तुम क्या कर रहे हो आखिर? उन्होंने पर्दा हटा दिया और लोग देख कर हैरान रह गए। जो चित्र अरबी चित्रकारों ने बनाया था, वही चित्र और भी अदभुत रूप में सामने की दीवाल पर मौजूद था! यूनानी चित्रकारों ने कोई चित्र नहीं बनाया, वे तो केवल दीवाल को घिस कर दर्पण बनाते रहे। उन्होंने सारी दीवाल घिस डाली थी। छह महीने में उन्होंने दीवाल को दर्पण बना दिया था। अरबी चित्रकारों का चित्र अदभुत था, अदभुत थी उनकी कला, लेकिन दर्पण में वही चित्र और हजार गुना सुंदर होकर दिखाई पड़ने लगा था।
वे यूनानी चित्रकार बोलेः हम तो केवल दर्पण बनाना जानते हैं। चित्र
तो परमात्मा ने बना दिए हैं, हम दर्पण बना देते हैं। और परमात्मा और हजार गुना खूबसूरत होकर उन दर्पणों में झलक आता है।
परमात्मा तो सब तरफ मौजूद है, हमारे पास दर्पण चाहिए, और दर्पण हो तो
वह दिखाई पड़ेगा। और वह दिखाई पड़ेगा, तो हम सब उसके मंदिर हो जाएंगे। और जब कोई आदमी उसका मंदिर हो जाता है, तभी उसके जीवन में आता है आनंद, तभी उसके

जीवन में आता है सौंदर्य, तभी उसके जीवन में पैदा होता है संगीत, तभी उसके जीवन में कोई नई क्रांति घटित हो जाती है, वह कुछ से कुछ और हो जाता है।
तो इन आने वाले तीन दिनों में, कैसे हम दर्पण बन जाएं, कैसे हम मंदिर
बन जाएं, उसकी हम बात करेंगे। मैं बात करूंगा, लेकिन मेरी बात करने से आप मंदिर बन नहीं सकते। मेरी बात करने से अगर आप दर्पण बन सकते होते, तब तो बड़ी आसान बात थी। मैं बात करूंगा, वह बात अगर आपके हृदय में किसी कोने में पहुंच जाए, अगर आप अपने हृदय में दरवाजा खोलें और उसको भीतर जाने दें, तो वह आपके भीतर बीज बन सकती है। और वह बीज आपके भीतर विकसित हो सकता है। लेकिन वह विकास करना होगा आपको, वह बदलाहट करनी होगी आपको। इतना जरूर मैं कह सकता हूं कि वह बदलाहट कठिन नहीं है, बहुत आसान है, बहुत सरल है।
इसलिए सरल है वह बात कि परमात्मा को पाने से ज्यादा सरल और क्या बात
हो सकती है? अगर परमात्मा को पाना ही कठिन हो गया, तो फिर तो और सब बातें और कठिन हो जाएंगी। क्योंकि परमात्मा है सब जगह उपलब्ध और सबके भीतर मौजूद। असलियत तो यह है कि परमात्मा को खोना असंभव है। क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही यह है कि जिसमें हम जी रहे हैं, जो हमारा जीवन है, जो हमारी श्वास-श्वास और हमारा प्राण-प्राण है, उसे हम खो कैसे सकते हैं? जैसे मछली सागर को नहीं खो सकती, सागर में होना ही उसका जीवन है, उसकी आत्मा है, ऐसे ही हम भी परमात्मा को नहीं खो सकते। लेकिन जो परमात्मा निरंतर हमें उपलब्ध है, उसका भी हमें स्मरण नहीं और बोध नहीं। वह बोध थोड़ी ही सरलता से उपलब्ध हो सकता है। वह थोड़े ही सहज और स्वाभाविक होने से उपलब्ध हो सकता है। बड़ी सरल है बात। लेकिन सरल बात भी कभी-कभी बहुत कठिन मालूम होती है। क्योंकि हम उस सरल बात के विरोध में इतने दूर तक चले गए होते हैं कि लौटना कठिन हो जाता है। हम इतने दूर चले गए होते हैं किसी सरल बात के विरोध में कि लौटना कठिन हो जाता है।
एक आदमी पेकिंग के बाहर कोई तीन-चार मील की दूरी पर रास्ते पर चला जाता था और उसने एक छोटे से बच्चे से पूछाः पेकिंग कितनी दूर है?
उस लड़के ने कहाः जिस तरफ आप जा रहे हैं, अगर उसी तरफ आप चलते चले जाएं,
तो इस जिंदगी में पेकिंग पहुंचना कठिन है। लेकिन अगर आप कृपा करें और लौट पड़ें, तो चार मील से ज्यादा फासला नहीं है।
वह जिस तरफ चला जा रहा था, अगर वह उसी तरफ चलता चला जाए, तो पूरी जमीन
का चक्कर लगाए, तब पेकिंग पर पहुंच सकता था। लेकिन अगर लौट पड़े, तो चार मील का फासला था, जो कोई फासला नहीं था।
हम जिस तरफ चले जा रहे हैं, वह परमात्मा की बिल्कुल विरोधी दिशा है, वह शांति की विरोधी दिशा है, वह सत्य की विरोधी दिशा है। अगर हम उस पर ही चले जाएं, तो पेकिंग तो कोई पहुंच भी सकता है पूरे जमीन का चक्कर लगा कर, क्योंकि कोई जमीन बहुत बड़ी नहीं है, लेकिन जिस रास्ते पर हम चलते हैं जीवन के, वह अनंत है। और हम चलते चले जाएं तो परमात्मा से दूरी निरंतर बढ़ती चली जाती है। लेकिन यदि हम लौटने का साहस करें, तो शायद हम लौटें और परमात्मा मौजूद है। जैसे कोई सूरज की तरफ पीठ किए खड़ा हो और पूछे कि सूरज कहां है? मैं कैसे पहुंचूं? तो हम उससे कहेंगेः कहीं पहुंचना नहीं है, केवल तू पीठ फेर ले और आंखें उस तरफ ले आ जिस तरफ तू पीठ किए है, तो सूरज तेरी आंखों के सामने आ जाएगा। शायद पीठ फेरने की बात है और हम परमात्मा के सामने आ सकते हैं।
तो कैसे यह पीठ फेरेंगे, उसकी बात तो कल सुबह से आपसे करूंगा। यह तो प्राथमिक चर्चा है थोड़ी सी, आपको सिर्फ यह ख्याल दिलाने को कि हम तीन दिनों में क्या करने वाले हैं। एक निवेदन हैः जो भी व्यक्ति उत्सुक हो, वह पूरे-पूरे तीन दिन आए, नहीं तो बिल्कुल न आए। जो भी उत्सुक हो, वह कल सुबह से आए तो फिर पूरे तीन दिन आए, नहीं तो कल सुबह से न आए। कोई भीड़ करने की यहां जरूरत नहीं है। आना हो तो पूरे तीन दिन आने का ख्याल हो तो आना चाहिए, नहीं तो नहीं आना चाहिए। क्योंकि अधूरी बातें सुनना कभी-कभी न सुनने से भी ज्यादा खतरनाक हो जाता है। आधी बातें सुनना न सुनने से भी ज्यादा खतरनाक हो जाता है। अधूरा ज्ञान अज्ञान से भी ज्यादा खतरनाक हो जाता है। इसलिए पहला निवेदन तो यह है कि आज की बात की तो कोई फिकर नहीं, लेकिन कल सुबह से

आना है तो फिर पूरे दिन, पूरे वक्त, पूरी चर्चाओं में मौजूद होना हो तो ही आना है, नहीं तो नहीं आना है।
दूसरी बात, कोई भी जो बातें मैं कहूंगा इन तीन दिनों में, उन पर निर्णय लेने की, जजमेंट करने की जल्दी मत करना, जब तक कि मेरी पूरी बात न सुन लें। तो निर्णय को थोड़ा स्थगित रखना। जब मेरी तीन दिन की पूरी बात सुन लें, तब सोचना और विचार करना। मेरी एक-एक बात पर अगर विचार करना शुरू किया, तो समझना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि हो सकता है कि जो मैं कहूं वह शुरू-शुरू में अटपटा मालूम पड़े। लेकिन अगर तीन दिन पूरी बात को समझने की कोशिश की, तो हो सकता है उसका अटपटापन चला जाए और तीन दिन में पूरी बात ख्याल में आ जाए। तो जल्दी निर्णय करने की कोशिश मत करना। जीवन और जीवन के सत्य इतने रहस्यपूर्ण हैं और हमारी समझ इतनी छोटी कि जब हम उससे निर्णय कर लेते हैं, तो हम अक्सर भूल में पड़ जाते हैं। तो जल्दी निर्णय नहीं करेंगे, दूसरा निवेदन। रोज-रोज फुटकर निर्णय नहीं करेंगे, एक-एक बात पर नहीं सोचेंगे। पूरी बात मेरी सुन लेंगे तीन दिन। फिर सोचने का काफी वक्त होगा। फिर धीरे- धीरे उस पर सोचना।
हमारी आदतें गलत हैं। इधर मैं बोलता हूं, उधर आप सोचना जारी रखते हैं
कि यह जो मैं कह रहा हूं, ठीक है या गलत? यह जो मैं कह रहा हूं, यह गीता में लिखा है या नहीं? यह जो मैं कह रहा हूं, यह क्राइस्ट ने कहा या नहीं? महावीर ने यही कहा या नहीं? जब मैं बोलता हूं, उसी वक्त अगर आप सोचते हैं, तो आपको पता है, मन एक समय में एक ही काम कर सकता है, या तो सुन सकता है या सोच सकता है। तो अगर आप उसी वक्त सोचते हैं, तो आप सुन न पाएंगे। और जिस बात को आप सुन ही न पाएंगे, उसको सोच कैसे पाएंगे?
तो पहले सुन लेना, सोचना बाद में कर लेना। कोई जल्दी नहीं है। और मैं
यह भी नहीं कह रहा हूं कि सुनने का मतलब मान लेना। नहीं। सुनने का मतलब यह भी नहीं है कि मैं जो कहूं उसे मान लेना। मान लेने की भी जल्दी मत करना। क्योंकि मान लेना भी एक निर्णय है। सुनना सिर्फ, न मानने की जल्दी, न न मानने की जल्दी; न स्वीकार, न अस्वीकार, सिर्फ चुपचाप मौन से सुन लेना काफी है। और अगर तीन दिन मौन से बात को सुना भी, तो सुनते-सुनते ही, अगर उस बात में कोई सच्चाई है, तो वह आपके प्राणों तक पहुंच जाएगी। और अगर वह बात गलत है, तो उसके गलत होने का भी स्पष्ट बोध आपको हो जाएगा।
एक फकीर एक गांव में नया-नया पहुंचा था। उस गांव के लोगों ने कहा कि चलो, शुक्रवार का दिन था और मस्जिद में नमाज का दिन था, तो उन गांव के लोगों ने कहा कि आओ और मस्जिद में आज हमें समझाओ कुछ। वह गया। वह मंच पर बैठा और उसने कहाः मेरे मित्रो, इसके पहले कि मैं बोलना शुरू करूं, मेरी एक खराब आदत है, मैं एक प्रश्न पूछता हूं हमेशा। वह प्रश्न मैं आज भी पूछूंगा। और तुम सबको उसका उत्तर देना पड़ेगा। और उस फकीर ने पूछाः मैं यह पूछना चाहता हूं कि मैं जिस संबंध में बोलूंगा, आप लोग उस संबंध में कुछ जानते हैं या नहीं?
उन सारे लोगों ने कहाः हम कुछ भी नहीं जानते, हमें कुछ भी पता नहीं है।
वह फकीर मंच से नीचे उतर गया और उसने कहा कि क्षमा करें, फिर मैं न बोल सकूंगा। क्योंकि जो लोग कुछ भी नहीं जानते, उनके साथ सिर खपाना फिजूल है, बेकार है। लोग बड़ी हैरानी में पड़ गए! वह फकीर उठ कर चला गया।
फिर दूसरा शुक्रवार आया, उस गांव के लोगों ने कहाः बड़ा अजीब फकीर है।
अब फिर उसके पास चलें। वे फिर गए और उन्होंने कहा कि चलो, शुक्रवार का दिन आ गया, उपदेश करो। वह फकीर फिर राजी हो गया और आ गया। मंच पर बैठा और उसने कहाः जैसी मेरी खराब आदत है, मैं एक प्रश्न बिना पूछे कभी अपनी बात शुरू नहीं करता। और तुम सबको उत्तर देना पड़ेगा। लोग तैयार थे लेकिन। पिछली बार भूल हो गई थी। उसने कहा कि मैं पूछना चाहता हूं कि मैं जिस संबंध में बोलूंगा, आपको उस संबंध में कुछ पता है या नहीं?
सारे लोगों ने कहाः हमको पता है। पिछली दफा भूल हो गई थी यह कह कर कि नहीं पता है।
वह फकीर नीचे उतर गया और उसने कहाः जिनको सब कुछ पता है, उनके साथ सिर पचाना फिजूल है। मैं वापस जाता हूं।

अब तो लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए। लेकिन तीसरा शुक्रवार आ गया। और उन्होंने कहाः एक मौका और लेना चाहिए। यह आदमी है कैसा? वे गए और उन्होंने उस फकीर से कहा कि चलें, शुक्रवार का दिन आ गया, उपदेश करें। वह फिर राजी हो गया। वह वापस आकर मंच पर बैठा, उसने कहाः जैसी कि मेरी सदा की आदत है, एक प्रश्न बिना पूछे मैं कभी चर्चा शुरू नहीं करता। लोग तैयार थे। उसने पूछा कि यह जो मैं बोलने वाला हूं, उस संबंध में कुछ पता है या नहीं?
तो लोगों ने कहाः कुछ लोगों को पता है और कुछ लोगों को पता नहीं है।
वह फकीर नीचे उतर कर खड़ा हो गया और उसने कहाः फिर जिनको पता है, वे उनको बता दें जिनको पता नहीं है। मैं जाता हूं। मेरी यहां क्या जरूरत है? चौथा शुक्रवार भी आ गया, लेकिन चौथा कोई उत्तर नहीं था लोगों के पास।
वह फिर वही बात पूछेगा, अब क्या करेंगे? तीन ऑल्टरनेटिव, तीन विकल्प हो सकते थे। तीनों खत्म हो गए थे। चौथा कोई विकल्प नहीं था। अब इस फकीर के साथ झंझट हो गई थी। अब क्या करें उस गांव के लोग? समझ लीजिए वह फकीर मैं ही हूं और आप ही उस गांव के लोग हैं, क्या करिएगा? तीन विकल्प के अलावा चौथा विकल्प है? तीन उत्तर के अलावा चौथा उत्तर है?
उस गांव में उस फकीर का प्रवचन न हो सका, क्योंकि गांव के लोग चौथा उत्तर देने में समर्थ नहीं हो सके। चौथा उत्तर लेकिन है। चौथा उत्तर यह था कि उन्हें कोई भी उत्तर नहीं देना था, उन्हें चुप रह जाना था। वह फकीर जरूर बोलता। उन्हें मौन रह जाना था। उन्हें कोई बात नहीं कहनी थी। उन्हें कोई जल्दी नहीं करनी थी। वे चुप रह जाते, फकीर जरूर बोलता। क्योंकि केवल उन्हीं लोगों के सामने बोला जा सकता है जो चुप हों। जो चुप नहीं हैं, उनके सामने कुछ भी नहीं बोला जा सकता।
तो यही प्रार्थना आज की संध्या मैं आपसे करूंगा कि इन तीन दिनों में आंतरिक रूप से थोड़ा सा चुप और मौन होकर, जो मेरे हृदय में कुछ बातें हैं वह मैं आपसे कहूं, तो सुनने की कृपा करना।
आज की रात तो इतनी ही बात। चित्त को एक दर्पण बनाना है, ताकि परमात्मा पाया जा सके। चित्त दर्पण बन सकता है। सरल है यह कीमिया, सरल है यह राज चित्त को दर्पण बना लेने का। उसका मेथड, उसकी विधि, उसकी हम बात करेंगे। मैं बात करूंगा, तो जरूरी है कि आप चुप रहें। नहीं तो बात नहीं हो सकेगी। अगर मेरे ऊपर यह जिम्मा है कि मैं तीन दिन कुछ बातें आपसे करूं, तो आप पर यह जिम्मा होगा कि तीन दिन आप चुप होंगे। नहीं तो फिजूल हो जाएगी बात। और जो उस फकीर ने किया, वही फिर मुझे भी करना चाहिए। उतना कठोर मैं नहीं हूं, उतना नहीं कर पाऊंगा। इसलिए बेफिकर रहें। लेकिन आप भी दया करेंगे और कठोर न होंगे। और थोड़ा चुप, मौन, साइलेंस से बातों को सुनने की कोशिश करेंगे, तो शायद वे बातें आपके प्राणों तक पहुंच सकें।
जमीन में हम बीज बोते हैं। पथरीली जमीन में बीज भीतर नहीं पहुंच पाता, पत्थर रोक देते हैं। पत्थर न हों, तो बीज भीतर पहुंच जाता है, जड़ें फैला लेता है, अंकुर फूट पड़ता है, पौधा बन जाता है। जो मन बेचैन बातचीत में लगा रहता है अपने भीतर, पत्थर की तरह हो जाता है, उसके भीतर कोई बात नहीं पहुंचती, कोई बीज नहीं पहुंचता, फिर उसमें कोई अंकुर नहीं आता। लेकिन जो मन मौन होता है, शांत होता है, साइलेंस में सुनता और समझता है, वह मन उस जमीन की भांति होता है जिसमें पत्थर नहीं हैं। उसमें बीज भीतर प्रविष्ट हो जाता है, उसकी जड़ें फैल जाती हैं, उसमें अंकुर आ जाते हैं। वह जीवन बदल जाता है। बस इतनी ही थोड़ी सी बात आज की रात कहूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। अंत में मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अपने माहिं टटोल
दूसरा प्रवचन

बोध की पहली किरण
(दूसरा प्रवचनअंत में कुछ अधूरा छूटा है)
(Note: ch.2 is incompleted.)

एक सम्राट बूढ़ा हो गया था। उसके तीन लड़के थे। और तीनों के बीच में उसे निर्णय करना था कि किसे राज्य को सौंप दे। बड़ी कठिनाई थी। वे तीनों लड़के सभी भांति एक-दूसरे से ज्यादा योग्य थे। तय करना कठिन था-- किसकी क्षमता, किसकी योग्यता ज्यादा है। तो उस सम्राट ने अपने बूढ़े नौकर को पूछा, जो कि गांव का एक किसान था। उससे पूछाः मैं कैसे इस बात की पहचान करूं, कैसे इस बात को जानूं कि कौन सा युवक राज्य को सम्हाल सकेगा और विकसित कर सकेगा? उस किसान ने कहाः सरल और छोटी सी तरकीब है। और उसने कोई तरकीब सम्राट
को बतलाई।
एक दिन सुबह सम्राट ने अपने तीनों लड़कों को बुलाया और उन्हें एक-एक बोरा गेहूं का भेंट किया और कहाः इसे सम्हाल कर रखना। मैं तीर्थयात्रा पर जाता हूं। शायद वर्ष लगें, दो वर्ष लगें। जब मैं लौटूं तो तुम उत्तरदायी होओगे इस अनाज के जो मैंने तुम्हें दिया। इसे सुरक्षित वापस लौटाना जरूरी है।
यह दायित्व सौंप कर वह सम्राट तीर्थयात्रा पर चला गया।
बड़े लड़के ने सोचाः गेहूं को सम्हाल कर रखना जरूरी है। उसने तिजोड़ी में गेहूं बंद कर दिए और भारी ताले उसके ऊपर लटका दिए, ताकि एक भी दाना खो न जाए और पिता जब लौटे तो उसे पूरे दाने वापस किए जा सकें।
उससे छोटे भाई ने सोचाः दाने तिजोड़ी में बंद करके रख दूंगा, पता नहीं पिता कब तक आएं, दाने सड़ जाएं और राख हो जाएं, तो मैं क्या लौटाऊंगा? तो उसने उन दानों को एक खेत में फिंकवा दिया, ताकि उनसे फसल पैदा हो और जब पिता आए तो ताजे दाने उसे वापस दिए जा सकें।
लेकिन उसने खेत में इस भांति फिंकवा दिया, जैसा कोई किसान कभी खेत में दानों को नहीं फेंकता है। न तो उसने यह बात देखी कि उस खेत के कंकड़-पत्थर अलग किए गए हैं, न उसने यह देखा कि उस खेत की घास-पात दूर की गई है। उसने इस बात की कोई फिकर न की, वह कोई किसान न था, वह एक राजकुमार था। उसे इस बात का कोई पता भी न था कि गेहूं कैसे पैदा होते हैं, बीज कैसे पौधे बनते हैं। उसने तो गेहूं फिंकवा दिए, जैसे कोई अंधकार में फेंक दे। और जहां फिंकवा दिए, न तो उस जमीन की जांच की गई कि वह जमीन कैसी थी! वहां अनाज पैदा होगा या नहीं होगा! वहां जो घास-पात है, पैदा हुए अनाज को वह समाप्त कर जाएगा, इसका भी कोई ख्याल नहीं रखा गया। और वह निश्चिंत हो गया। और वह निश्चिंत हो गया कि पिता जब आएंगे तब नये दाने वापस किए जा सकेंगे।
तीसरे छोटे भाई ने सोचाः दानों को घर में बंद करके रखना तो नासमझी होगी, नष्ट हो जाने के सिवाय और क्या परिणाम होगा! जैसा बड़े भाई ने किया है, वैसा करने को वह राजी न हुआ। दानों को बो देना जरूरी था, लेकिन अंधेरे में, और अपरिचित जमीन पर, और बिना तैयार की गई जमीन पर फेंक देना भी नासमझी थी। शायद, जैसा दूसरे भाई ने किया था, उससे भी दाने नष्ट हो जाएंगे। तो उसने एक खेत तैयार करवाया; उसकी भूमि तैयार करवाई; उसकी मिट्टी बदलवाई; उसके कंकड़-पत्थर दूर किए; उस पर घास-पात ऊगता था, उसे फिंकवाया; उसमें पुराने पौधों की जड़ें थीं, उनको दूर किया; और जब भूमि तैयार हो गई तो उसने वह अनाज उसमें बो दिया।
कोई तीन वर्ष बाद पिता वापस लौटा। बड़े लड़के ने तिजोड़ी खोल कर बता दी, वहां राख का ढेर था, और कुछ भी नहीं।
पिता ने कहाः मैंने तुम्हें जीवित दाने दिए थे, जिनमें बड़ी संभावना थी, जो विकसित हो सकते थे और हजारों गुना हो सकते थे तीन वर्षों में। लेकिन तुमने उन सारे दानों को मिट्टी कर दिया। जो जीवित थे, वे मृत हो गए; जो

संभावना थी, वह समाप्त हो गई; जो विकास हो सकता था, वह नहीं हुआ। राज्य देकर तुम्हें मैं क्या करूंगा? उस राज्य की भी यही दशा हो जाएगी।
दूसरे युवक से पूछाः कहां हैं दाने?
वह उस पथरीली जमीन पर ले गया, जहां उसने दाने फिंकवा दिए थे। वहां न तो कोई पौधे पैदा हुए थे, न कोई फसल आई थी। और न ही इन तीन वर्षों में वह कभी देखने गया था कि वहां क्या है। वहां तो घास-पात खड़ा हुआ था, वहां तो जंगल था।
उसके पिता ने पूछाः कहां हैं दाने?
उसने कहाः मैंने तो बो दिए थे। उसके बाद मुझे कोई भी पता नहीं।
पिता ने पूछाः कैसी जमीन पर बोए थे?
उसने कहा कि यह भी मुझे कुछ पता नहीं, इसी जमीन पर फिंकवा दिए थे। सोचा था, जब जमीन पर बिना बोए इतने पौधे पैदा होते रहते हैं, इतने वृक्ष, इतना घास-पात भगवान पैदा करता है, तो क्या मेरे दानों पर थोड़ी सी कृपा नहीं करेगा? इतनी बड़ी जमीन है, इतना सब पैदा होता है, तो मेरे दानों पर भगवान कृपा नहीं करेगा?
लेकिन भगवान ने कोई कृपा नहीं की। वे दाने सड़ गए होंगे, दब गए होंगे, उनमें अंकुर भी नहीं आए होंगे। और हो सकता है अंकुर भी आए हों, तो उनकी जड़ें न पहुंच सकी होंगी जमीन तक, पत्थरों ने रोक ली होंगी। हो सकता है उनकी जड़ें भी पहुंच गई हों, तो वे घास-पात में कहां खो गए होंगे, किसको क्या पता था! न उनकी पहले से भूमि तैयार की गई थी और न पीछे उनकी कोई रक्षा की गई थी। उसके पिता ने कहाः राज्य तुझे भी देने में मैं असमर्थ हूं। क्योंकि
जो बीज बोने के पहले यह भी नहीं देखता कि भूमि तैयार है या नहीं, वह राज्य के साथ क्या करेगा, यह भी मैं विचार कर सकता हूं।
उसने अपने तीसरे लड़के को पूछा कि क्या हुआ?
लड़का उसे खेत पर ले गया। जितने दाने पिता दे गया था, तीन वर्षों में हजारों गुना फसल हो गई थी। फेर बड़ा से बड़ा होता गया था। हर वर्ष जितना पैदा हुआ था, उसको उसने फिर बीज के रूप में प्रयोग किया था।
पिता देख कर हैरान हो गया। एक लहलहाता खेत खड़ा हुआ था, जिसमें जिंदगी थी, हवाएं जिसकी सुगंध को दूर तक ले जा रही थीं। सूरज की रोशनी जिसके ऊपर चमक रही थी और प्रसन्न हो रही थी। उसके खेत को देख कर पिता का हृदय भी उतना ही हरा हो उठा और उसने कहाः राज्य को तू ही सम्हाल सकेगा। क्योंकि जो छोटे- छोटे बीजों को भी नहीं सम्हाल सकते, वे इतनी बड़ी विराट संभावनाओं को सम्हालने के मालिक नहीं हो सकते। वह राज्य उस छोटे लड़के को दे दिया गया। यह कहानी मैं क्यों कहता हूं? यह इसलिए मैं कहता हूं कि परमात्मा भी
हम सबके पास बीज-रूप में बड़ी संभावनाएं देता है। वह परमात्मा भी हमें एक बड़ा राज्य देने के लिए उत्सुक है। उसकी भी बड़ी गहरी आकांक्षा है कि हमारे जीवन में हरियाली हो, जीवन हो, किरणें हों, खुशी हो, आनंद हो। और हम सबको वह बराबर संपत्ति दे देता है कि तुम इसे बढ़ाओ और विकसित करो।
लेकिन हम भी तीन लड़कों की भांति सिद्ध होते हैं। हममें से कुछ लोग तो
उस संपत्ति को तिजोड़ियों में बंद कर देते हैं, और मरते वक्त तक वह राख होकर समाप्त हो जाती है। हममें से कुछ उसे बोते हैं, लेकिन खेत की, भूमि की कोई फिकर नहीं करते। तब वह बोई तो जाती है, लेकिन कोई परिणाम नहीं आता। बहुत थोड़े से लोग हैं हमारे बीच, परमात्मा जो हमें देता है उसकी फसल को काटते हैं, उसे विकसित करते हैं। जन्म के साथ उन्हें जो मिलता है, मृत्यु के साथ उससे हजार गुना वे परमात्मा को वापस कर देते हैं। जो आदमी, जन्म के साथ जो कुछ लेकर आता है, मृत्यु के समय अगर हजार गुना वापस करने के लिए उसकी तैयारी नहीं है, तो वह समझ ले कि उसके जीवन में कोई सार्थकता का, कोई कृतार्थता का, कोई आनंद का विकास नहीं होगा। और वह समझ ले, उसने एक बड़े दायित्व से, एक बड़ी रिस्पांसिबिलिटी से पीठ मोड़ ली। और इसके परिणाम में उसे दुख झेलना होगा, पीड़ा और चिंता झेलनी होगी।
हम सबको भी जीवन विकास करने को उपलब्ध होता है। लेकिन हम उसके साथ क्या करते हैं? तो आज की सुबह, जैसा कल रात मैंने कहाः मन को बनाना है एक दर्पण, मन को बनाना है एक मंदिर, मन को बनाना है कुछ ऐसा कि परमात्मा उसमें फलित हो सके, प्रतिफलित हो सके, दर्शन पा सकें हम उसके जो जीवन का सत्य है,

उपलब्ध हो सकें उसे जो जीवन का सौंदर्य है, प्राण हमारे निनादित हो सकें उससे जो जीवन का संगीत है। उसके लिए पहली बात, जैसे किसान खेत की भूमि तैयार करता है, वैसे ही हमें अपने मन को भी तैयार करना होगा। हमें भी अपने मन की भूमि को तैयार करना होगा। और तैयारी में पहली बात जो करनी होगी वह यह कि मन से सारे कंकड़-पत्थर अलग कर देने होंगे। मन से घास-पात अलग कर देना होगा। मन से उखाड़ फेंकनी होंगी वे सब जड़ें जो न मालूम कितने दिनों से हमारे मन में घर किए हुए हैं, ताकि नई फसल हो सके।
इसलिए पहला काम साधक के समक्ष मन की सफाई का है। निश्चित ही यह काम निगेटिव है, नकारात्मक है। कुछ उखाड़ फेंकना है, कुछ हटा देना है, कुछ जला देना है, कुछ मिटा देना है। निश्चित ही पहला काम नकारात्मक है, निषेधात्मक है। कोई मकान बनाता है, पुराने मकान को गिरा देना पड़ता है।
तो जो आदमी भी एक नये मन को जन्म देने के लिए उत्सुक हुआ हो, उसे हिम्मत करनी होगी कि वह पुराने मन को मिटाने में, नष्ट करने में समर्थ हो सके, साहसी हो सके। जो आदमी पुराने मन को ही लेकर इस ख्याल में हो कि मैं परमात्मा तक पहुंच जाऊंगा, वह गलती में है। नया मन चाहिए--ताजा, जीवंत, जिससे सारी व्यर्थ की चीजें अलग कर दी गई हों--तब मन की भूमि तैयार होती है और उसमें फिर बीज बोए जा सकते हैं। छोटे-छोटे किसान भी इस बात को भलीभांति जानते हैं, लेकिन बड़े से बड़े मनुष्य भी इस बात को नहीं जानते हैं।
मन में कौन सी चीजों की जड़ें हैं जो परमात्मा के बीजों को अंकुरित नहीं होने देती हैं और जिनको हटा देना जरूरी है? और हटाना इसलिए बहुत कठिन है, मालूम होगा, क्योंकि जो चीजें बाधा हैं परमात्मा के आने में, हमने उन्हीं को सहयोगी समझ रखा है। जो द्वार नहीं है, दीवाल है, उसी को हमने द्वार समझ रखा है। और जो मार्ग नहीं है, बाधा है, उसी को हमने मार्ग समझ रखा है। इसलिए हटाने में बड़ी कठिनाई प्रतीत होगी। लेकिन वह कठिनाई आसान हो जाती है, अगर यह दिखाई पड़ जाए कि जिसे हमने सहयोग समझा था, वह विरोध था। और जिसे हमने सहारा समझा था, वह बंधन था। और जिसे हमने स्वतंत्रता समझा था, वह परतंत्रता थी।
तो आज की सुबह उन थोड़ी सी कुछ बातों से आपको परिचित कराने की कोशिश करूंगा, जो हमारे मन में परमात्मा की तरफ सबसे बड़ी बाधाएं हैं। लेकिन हजारों वर्षों से किसी बुनियादी भूल के कारण हम उनको बाधाएं नहीं समझ कर सहयोगी समझते रहे हैं।
जैसे, पहली बात, और उससे बड़ी कोई दूसरी बाधा नहीं है। पहली बात, ज्ञान सबसे बड़ी बाधा है। थोड़ा सुन कर हैरानी और कठिनाई होगी। जिसे हम ज्ञान जानते हैं, वह परमात्मा की दिशा में सबसे बड़ी बाधा है। क्योंकि जिस मनुष्य को यह ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं, उसके जानने के द्वार बंद हो जाते हैं। उसकी आगे की खोज बंद हो जाती है। वह ठहर जाता है, रुक जाता है। उसके मन की यात्रा समाप्त हो जाती है। इसलिए पंडित कभी भी सत्य को नहीं जान पाते हैं। नहीं जान सकेंगे। आज तक किसी पंडित ने सत्य को नहीं जाना है और कभी नहीं जान सकेगा। यह ख्याल पैदा हो जाना कि मैं जानता हूं, इससे बड़ा और कोई अहंकार नहीं है। इससे बड़ी और कोई ईगो, इससे बड़ी और कोई अस्मिता, इससे बड़ा और कोई दंभ नहीं है।
सुकरात बूढ़ा हो गया था। कुछ लोगों ने आकर सुकरात को कहाः एथेंस के लोग कहते हैं, सुकरात महाज्ञानी है, परम ज्ञानी है, क्या यह सच है? सुकरात से लोगों ने पूछा।
सुकरात ने कहाः जब मैं छोटा था और जब मुझे जीवन का कोई अनुभव नहीं था,
और जब मैंने जीवन को जाना नहीं था और जीवन से मैं परिचित न हुआ था, तब मुझे भी यह भ्रम था कि मैं जानता हूं, जब मैं छोटा था, बच्चा था। फिर मैं युवा हुआ, जीवन की बहुत ठोकरें मैंने खाईं, और जीवन के बहुत अंधेरे रास्तों पर मैं भटका, तब धीरे-धीरे मुझे पता चला कि मैं कितना कम जानता हूं! लेकिन तब भी मुझे यह ख्याल बना रहा कि थोड़ा-बहुत मैं जानता हूं। फिर मैं बूढ़ा हुआ, और अनुभव की वर्षा मेरे ऊपर हुई, और नये-नये अनजान, अपरिचित तथ्य मेरी आंखों में उभरे, और धीरे-धीरे मेरे ज्ञान का भवन गिरता गया। अब जब कि मैं मरने के करीब पहुंच गया हूं, मैं अत्यंत स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूंः मुझसे बड़ा अज्ञानी शायद ही कोई हो, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। और जाओ

एथेंस के मेरे लोगों को कह देना कि वे ये भूल भरी बातें किसी को न बताएं। वे मुझे प्रेम करते हैं, यह तो ठीक है, लेकिन यह न कहें कि मैं परम ज्ञानी हूं।
वे मित्र वापस गए, और उन्होंने एथेंस के समझदार लोगों को कहा कि तुम
तो कहते हो कि सुकरात परम ज्ञानी है, लेकिन उसने खुद कहा है कि मैं तो परम अज्ञानी हूं। और उसने कहा है कि जाओ और उनसे कह देना, ऐसी झूठ बात वे न कहें। तो वे वृद्धजन हंसने लगे एथेंस के और उन्होंने कहाः जो अपने को परम अज्ञानी कहता है, उसी के लिए तो परम ज्ञान के द्वार खुल जाते हैं। इसीलिए तो हम कहते हैं कि सुकरात परम ज्ञानी है।
जो इस तथ्य को जानने में समर्थ हो गया है कि मैं कुछ भी नहीं जानता, उसका हृदय एकदम सरल और शांत हो जाता है। उसके हृदय की सारी जटिलता विलीन हो जाती है। उसका अहंकार शून्य हो जाता है। वह मिट जाता है एक अर्थों में। उसके मन में तब कोई ख्याल और विचार नहीं रह जाते, तब कोई सिद्धांत और शास्त्र नहीं रह जाते, तब उसके भीतर कोई दावा नहीं रह जाता कि मैं जो कहता हूं वही सही है और दूसरे जो कहते हैं वह गलत है। तब वह कोई दावा नहीं करता। तब वह कोई घोषणा नहीं करता। तब वह कोई विवाद नहीं करता। तब वह कोई तर्क नहीं करता। बल्कि इस शांत अवस्था में कि मैं नहीं जानता हूं, उसका मन मौन हो जाता है। और उसी मौन में वह जान पाता है।
स्टेट ऑफ नोइंग, जानने की दशा, और स्टेट ऑफ नॉट नोइंग, न जानने की दशा--
दो अवस्थाएं हैं चित्त की। एक चित्त की दशा है, जब हमें लगता है कि हम जानते हैं। क्या जानते हैं लेकिन हम? क्या जानते हैं हम? आदमी क्या जानता है? कौन सा ज्ञान है आदमी के पास? विश्व की सत्ता के संबंध में कौन सी समझ है हमारी? दूर है विश्व की सत्ता, अपने ही संबंध में हम क्या जानते हैं? क्यों होता है जन्म? क्यों आ जाती है मृत्यु? क्या जानते हैं? क्यों चलती हैं श्वासें और क्यों बंद हो जाती हैं? क्या जानते हैं? क्यों हैं हम? हमारे होने की अर्थवत्ता और प्रयोजन क्या है? क्या जानते हैं? जो घर के द्वार पर पौधा लगा है, वृक्ष लगा है, वह भी क्यों है? आकाश में जो बादल उठते हैं, वर्षा करते हैं; सूरज ऊगता है, डूबता है; रात आती है, दिन आते हैं, क्यों हैं ये सब? क्या जानते हैं? क्या है हमारा जानना इस सारे विश्व के प्रति? इस विराट के प्रति?
लेकिन अपने संबंध में भी जो मनुष्य कुछ नहीं जानता, वह भी यह ख्याल करता है कि मैं ईश्वर के संबंध में जानता हूं। अपने संबंध में भी जिसे कोई पता नहीं, वह भी यह दावा करता है कि मोक्ष के संबंध में मैं जानता हूं, स्वर्ग और नरक के संबंध में जानता हूं। और न केवल यह दावा करता है कि मैं जानता हूं, बल्कि यह भी दावा करता है कि दूसरे जो जानते हैं वे गलत हैं, जो मैं जानता हूं वही सही है। न केवल दावा करता है, बल्कि तलवारें निकाल कर निर्णय भी करता है कि अगर... हिंदू और मुसलमान, ईसाई और जैन, सिक्ख और पारसी क्या करते रहे हैं? न केवल हम सही हैं, बल्कि अगर कोई और कहता है कि तुम, और भिन्न बात कहता है, तो वह गलत है। न केवल वह गलत है, बल्कि इसका निपटारा हत्या से करने की कोशिश भी हम करते हैं। अदभुत है हमारा ज्ञान!
कहना चाहिए अदभुत है हमारा अज्ञान! जीवन के बाबत कुछ भी ज्ञात नहीं है, लेकिन उस अज्ञात सत्य के संबंध में भी हम कल्पनाएं कर लेते हैं और कल्पनाओं पर लड़ते हैं। अनुमान कर लेते हैं, अनुमानों पर लड़ते हैं, हत्याएं करते हैं। सिद्धांतों और शास्त्रों के नाम पर कितने मनुष्यों की हत्या हुई है, कोई हिसाब है? धर्मों के नाम पर कितना खून हुआ है, कोई गणना है? मंदिर और मस्जिदों के नाम पर कितनी आगजनी हुई है, कोई हिसाब है? किसने की है यह? यह जानने वाला आदमी जिसको यह भ्रम है कि मैं जानता हूं! जिसे यह ख्याल है कि मैं जो जानता हूं वह सत्य है! खुद के प्राणों का कोई पता नहीं है और हम दूर के सत्यों के निर्णायक बन जाते हैं।
यह जो जानने का भ्रम है, जब तक न छूट जाए, तब तक जानने के द्वार खुलते
ही नहीं। ज्ञान के द्वार केवल उसी के लिए खुलते हैं, जो उस द्वार पर बिल्कुल अज्ञानी की भांति खड़ा हो जाता है। और जो कहता हैः मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूं, मुझे तो कुछ भी पता नहीं है, मुझे तो जीवन के अ ब स का भी कोई अनुभव नहीं है, मैं तो निपट न जानने वाला हूं।

कभी आपने सोचा, कभी आपको यह ख्याल आया है कि आप कुछ भी नहीं जानते हैं? अगर आया है ख्याल, तो आपके जीवन में धर्म की शुरुआत की संभावना है। और अगर आपको यह ख्याल है कि मैं जानता हूं, तो आपके द्वार बंद हो गए। आपकी भूमि तैयार नहीं है। और जानते क्या हैं? सिवाय शब्दों के और क्या जानते हैं? अगर गीता पढ़ ली है, अगर कुरान पढ़ लिया है, या बाइबिल पढ़ ली है, या और शास्त्र पढ़ लिए हैं, जो कि ढेर सारे हैं जमीन पर, जिनकी कोई कमी नहीं है। प्रति सप्ताह कोई पांच हजार ग्रंथ नये छप जाते हैं सारी जमीन पर। प्रति सप्ताह पांच हजार ग्रंथों का प्रकाशन होता है सारी दुनिया में। कोई कमी नहीं है। उन सबको आपने पढ़ लिया, उन सबके शब्द सीख लिए, सूत्र सीख लिए, उनको आप बोलने में समर्थ हो गए, बताने में समर्थ हो गए, तो क्या आप सोचते हैं, ज्ञान उपलब्ध हो गया? बात अगर ऐसी होती, तो सारी दुनिया ज्ञानी हो गई होती। लेकिन शास्त्र तो बढ़ते जाते हैं, साथ ही साथ अज्ञान भी बढ़ता जाता है। यह बड़ी हैरानी की, बड़ी दुविधा की बात मालूम होती है। आदमी का ज्ञान बढ़ता जाता है और हम देखते हैं कि आदमी के भीतर का अज्ञान भी साथ में बढ़ता जाता है। यह कैसे हो रहा है?
यह जानने के भ्रम से हो रहा है। जानने का जितना भ्रम होता जाता है, उतना आदमी जटिल और कठोर होता जाता है। उतनी उसकी सरलता, उसकी सिंप्लीसिटी, उसकी ह्युमिलिटी, उसकी विनम्रता, सब खोती चली जाती है। पंडित से ज्यादा अहमन्य और कौन होता है? जिसे यह ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं, उसके अहंकार का कोई अंत नहीं है। और इसीलिए तो दो पंडित मिलने को भी राजी नहीं हो पाते हैं। दो बड़े साधुओं को मिलाना कठिन है, दो पंडितों को मिलाना कठिन है। उनके अहंकार बड़े पैने हैं। एक-दूसरे के साथ खड़ा होना कठिन है। आज तक दुनिया को पंडितों के सिवाय और किसने लड़ाया है? किसने तोड़ा है? किसने आदमी आदमी के बीच दीवालें खड़ी की हैं? कौन है इसके लिए जिम्मेवार? ये जानने वाले लोग!
और बड़े मजे की बात है, ज्ञान क्या तोड़ने वाला हो सकता है? ज्ञान तो जोड़ेगा। अज्ञान तोड़ता है। तो ज्ञान के नाम से हम जिसका पोषण करते हैं, वह बहुत गहरा अज्ञान है। शास्त्र पढ़ लेने से, शब्द सीख लेने से, सिद्धांतों को स्मरण कर लेने से ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, केवल अज्ञान ढंक जाता है। जैसे कोई अपने फोड़े को फूलों से ढांक ले, तो क्या फोड़ा समाप्त हो जाएगा? जैसे कोई अपने रुग्ण शरीर को सुंदर-सुंदर वस्त्रों से ढांक ले, तो क्या शरीर स्वस्थ हो जाएगा?
नहीं, बल्कि उसके स्वस्थ होने की संभावनाएं थीं, वे भी समाप्त हो जाएंगी। क्योंकि न केवल दूसरों को धोखा पैदा होगा कि वह आदमी स्वस्थ है, दूसरों का धोखा देख कर उसे खुद भी धोखा पैदा होगा कि मैं स्वस्थ हूं। एक आदमी अपने फोड़े को छिपा ले, दूसरों को दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा कि उसका फोड़ा नहीं है। दूसरों को देख कर उसको खुद को यह भ्रम पैदा होना शुरू हो जाएगा कि शायद मेरा फोड़ा मिट गया, क्योंकि कोई उसकी चर्चा नहीं करता। और तब फोड़ा भीतर-भीतर बढ़ेगा और सारे प्राणों पर छा जाएगा।
हम अपने अज्ञान को छिपा लेते हैं शब्दों और शास्त्रों की सीख से, सिखावन से। उससे अज्ञान मिटता नहीं, भीतर-भीतर सुलगता रहता है, फैलता रहता है। और इसीलिए तो हमारा ज्ञान एक तरफ होता है, हमारा जीवन दूसरी तरफ होता है। क्योंकि ज्ञान ऊपर का होता है, जीवन भीतर का होता है। इसलिए रोज झंझट खड़ी रहती है। रोज हम कहते हैं कि मैं जानता तो हूं कि ठीक क्या है, लेकिन जब करने का सवाल उठता है, तो वह कर लेता हूं जो गलत है।
अगर कोई आदमी जानता है कि ठीक क्या है, तो क्या यह संभव है कि वह गलत कर सके? नहीं, यह असंभव है। जो ठीक को जानता है, वह गलत को नहीं कर सकता। लेकिन हम ठीक को जानते हैं और गलत को करते हैं। यह किस बात की सूचना और खबर है? यह इस बात की सूचना है कि हमारा जानना धोखे का है, झूठा है, शब्दों का है, सत्य का नहीं है। शब्दों को जान लेना बहुत आसान है। किताब पढ़ लेनी कोई कठिन बात है? किताब को याद कर लेना कोई कठिन बात है? स्मृति को भर लेना कोई कठिन बात है? छोटे-छोटे बच्चे सारी दुनिया में क्या कर रहे हैं? स्कूलों में क्या हो रहा है? बातें सिखाई जा रही हैं। एक बच्चा गणित की बातें याद कर लेता है, एक बच्चा भूगोल याद कर लेता है, एक दूसरा बच्चा गीता

याद कर लेता है। इन तीनों में कोई फर्क है? लेकिन भूगोल को जानने वाले के हम पैर नहीं छूते और न उसे ज्ञानी कहते हैं। हम जानते हैं कि यह थोड़ी सी इनफार्मेशन इसने सीख ली भूगोल की, इसने इतिहास थोड़ा सा पढ़ लिया, तो ठीक है। लेकिन वही बच्चा गीता याद कर ले, तो ज्ञानी हो जाता है। और गीता याद करने में और इतिहास याद करने में कोई फर्क है? कोई भेद है? कोई अंतर है?
कोई भी अंतर नहीं है। जो स्मृति इतिहास याद करती है, वही स्मृति गीता याद कर लेती है। लेकिन इतिहास वाले को हम ज्ञानी नहीं कहते, तो गीता जानने वाले को ज्ञानी कैसे कहने लगे? इतिहास भी एक किताब है, और गीता भी, और कुरान भी, और बाइबिल भी। किताबें पढ़ लेने से ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, केवल स्मृति परिपक्व होती है, स्मृति में कुछ बातें बैठ जाती हैं। स्मृति बिल्कुल यांत्रिक है, मेकेनिकल है, उसमें कुछ भी डाल दो।
अब ये टेप रिकार्ड कर रहे हैं, मैं बोल रहा हूं तो टेप कर रहे हैं। मैं अगर यहां भजन गाऊं, तो भजन टेप हो जाएगा; गालियां दूं, तो गालियां टेप हो जाएंगी; अच्छी बातें कहूं, तो वे टेप हो जाएंगी; बुरी बातें कहूं, तो वे टेप हो जाएंगी। टेप एक मशीन है, उसे इससे कोई फर्क नहीं कि मैं क्या कहता हूं, उसका काम है वह रिकार्ड कर लेगा।
आदमी की स्मृति एक यंत्र है। आप इतिहास पढ़ें, तो इतिहास याद हो जाएगा; गीता पढ़ें, गीता याद हो जाएगी; भजन पढ़ें, भजन; फिल्म का गीत पढ़ें, तो फिल्म का गीत याद हो जाएगा। स्मृति ज्ञान नहीं है, स्मृति तो केवल संग्राहक यंत्र है। इस संग्राहक यंत्र को जो ज्ञान समझ लेता है, उसके रास्ते बंद हो गए, उसकी आगे की खोज बंद हो गई। और यह जो सारा ज्ञान है, यह फिर उसके ऊपर बोझ की भांति बैठ जाता है। उसके मस्तिष्क को बोझिल कर देता है, भारी कर देता है, विवादग्रस्त कर देता है, तर्क से भर देता है, उपद्रव से भर देता है। उसके भीतर की शांति चली जाती है, उसके भीतर की चैन चली जाती है। और उसके भीतर अज्ञान मौजूद बना रहता है। और उसे यह भी भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं।
बंगाल में एक बहुत बड़ा तर्कशास्त्री हुआ। कहते हैं बंगाल ने वैसा दूसरा बुद्धिमान आदमी पैदा नहीं किया। तर्क में बड़ी उसकी कुशलता थी। शास्त्रों में बड़ी उसकी गति थी। शायद ही कोई ऐसा महत्वपूर्ण शास्त्र हो, जो उसे कंठस्थ न हो। और शायद ही कोई ऐसी बात हो, जिसके पक्ष में वह खड़ा हो जाए, तो उसे हराना आसान हो। वह एक दिन सुबह-सुबह ही गांव के तेली की दुकान पर तेल खरीदने गया था। तो तेल खरीदा, तेली के पीछे ही कोल्हू चल रहा था, उसका बैल चल रहा था, तेल को पेर रहा था। कोई उसे चला नहीं रहा था, बैल अपने आप चल रहा था। तो उस तर्कशास्त्री पंडित ने पूछा उस तेली कोः बड़े आश्चर्य की बात है, यह बैल अपने आप चल रहा है! कोई इसे चलाता नहीं?
उस तेली ने कहाः देखते नहीं हैं, गले में घंटी बांध दी है। जब तक घंटी बजती रहती है, मैं जानता हूं कि बैल चल रहा है। जब घंटी बंद हो जाती है, मैं उठ कर फिर हांक देता हूं।
तर्कशास्त्री पंडित बोलाः बड़ी हैरानी की बात है, बैल बड़ा नासमझ है। खड़े होकर सिर को क्यों नहीं हिलाता कि घंटी बजती रहे?
उस तेली ने कहाः महाराज! यह पंडित नहीं है, सीधा-सादा बैल है। इसे न शास्त्रों का पता है, न तर्कशास्त्र का कोई पता है। और आप कृपा करें और जल्दी यहां से चले जाएं। आपकी छाया भी खतरनाक हो सकती है। हो सकता है यह बैल भी खड़े होकर घंटी बजाने लगे। तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा। मनुष्य के जीवन की सारी सरलता उसके पांडित्य और ज्ञान ने छीन ली। इसीलिए तो सारी दुनिया में आदमी खड़े होकर घंटी बजा रहा है। कोई कोई काम नहीं करना चाहता है। तो खड़े होकर, उसको पता हो गया, खड़े हो जाओ और घंटी बजाते रहो। घंटी बजती रहेगी, समझा जाएगा कि काम हो रहा है।
जीवन की सब दिशाओं में हमारे ज्ञान ने हमें बड़ी हैरानी में डाल दिया।
और यह ज्ञान बिल्कुल ज्ञान नहीं है। और यह ज्ञान बिल्कुल ही यांत्रिक शिक्षण है। इस यांत्रिक शिक्षण को ज्ञान समझ लेना, और इसको मान्यता देनी, इससे बड़ी और कोई बाधा नहीं है। कुछ भी हम जानते नहीं हैं। और जो भी हमारी अटकलबाजियां हैं--और हमारी पूरी फिलासफी अटकलबाजियों के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जमीन का हमें पता नहीं है, आकाश के हमने हिसाब लगा लिए। भगवान के

कितने चेहरे हैं, यह भी हमने पता लगा लिया। भगवान कहां हैं, कैसे रहते हैं, इसका भी हमने सब हिसाब लगा लिया। हमने भगवान की मूर्तियां और फोटो भी बना लिए। और सारी दुनिया पर हर आदमी स्वतंत्र है खोज कर लेने को, बना लेने को, कल्पना कर लेने को। सारी दुनिया में न मालूम कितनी कल्पनाएं खड़ी हो गई हैं। उन्हीं कल्पनाओं को हम धर्म समझ रहे हैं--उन्हीं अटकलबाजियों को, अंधेरे में टटोली गई बातों को। और फिर उनको सीख लेते हैं, और उनको पकड़ लेते हैं, और उनको पकड़ कर जड़ हो जाते हैं। सोच-विचार भी खो जाता है, चेतना का जागरण भी खो जाता है।
एक बात इसलिए सबसे पहली जान लेनी जरूरी है, बड़ी उलटी मालूम पड़ेगी, जिसे सचमुच ज्ञान की दुनिया में प्रवेश करना हो, उसे इस तथाकथित ज्ञान को, यह जो सो-काल्ड नॉलेज है, जो किताबों और शब्दों से मिलती है, इसे छोड़ देने की हिम्मत करनी होगी। यह पत्थर है, इसे निकाल फेंकना होगा। यह घास-पात है, जिसे खेत से अलग कर देना होगा।
यह क्यों है ज्ञान झूठा?
यह झूठा इसलिए है, क्योंकि यह उधार है, बारोड है। जो मेरा ज्ञान नहीं है, वह ज्ञान नहीं हो सकता। किसी और ने जाना हो, उसके लिए ज्ञान होगा। लेकिन उसके शब्द मेरे लिए ज्ञान नहीं हो सकते, वे मेरे लिए केवल स्मृति होंगे। उसके लिए होगी नॉलेज, मेरे लिए होगी मेमोरी। उसके लिए होगा ज्ञान, मेरे लिए होंगे शब्द, स्मृति। और मैं भ्रम में पड़ जाऊंगा। महावीर ने जाना होगा; बुद्ध ने जाना होगा; कृष्ण ने जाना होगा; क्राइस्ट ने जाना होगा। लेकिन उनके शब्द मेरे लिए ज्ञान नहीं बन सकते। आप जानते होंगे। लेकिन आपके शब्द मेरे लिए ज्ञान नहीं बन सकते।
ज्ञान वैसा ही है जैसी मृत्यु है। आप मर जाएं, मुझे मरने का कोई अनुभव नहीं होता। मैं मर जाऊं, आपको मरने का कोई अनुभव नहीं होता। मृत्यु जैसे वैयक्तिक है, एकदम इंडिविजुअल है। एक आदमी मरता है, वही जानता है कि क्या होता है। वैसा ही ज्ञान भी वैयक्तिक है। एक आदमी जानता है, वही जानता है कि क्या है। और जब दूसरे से कहता है, तो दूसरे के पास पहुंचते हैं शब्द--थोथे और खाली। जैसे खाली कारतूस, जिसके पीछे कोई गोली नहीं है, ऐसे खाली शब्द पहुंच जाते हैं दूसरों के पास। और दूसरे उनको इकट्ठा कर लेते हैं। और इकट्ठा करने में रस लेने लगते हैं। और जितने खाली शब्द उनके पास बहुत हो जाते हैं, उतना उनको लगने लगता है कि मैं जानता हूं। शब्द बिल्कुल खाली हैं।
मैंने सुना है, एक महाकवि समुद्र के किनारे था। सुबह जब वह समुद्र के किनारे पहुंचा, सूरज को उगते उसने देखा। बड़ी सुखद और शांत सुबह थी। और समुद्र की लहरें थीं, और उन लहरों पर तैरती आती हुई हवा थी--बड़ी शीतल, बड़ी आनंददायी, बड़ी आह्लाद से भरने वाली। उसके मन में हुआ--उसकी प्रेयसी दूर, हजारों मील दूर एक अस्पताल में बीमार पड़ी थी--उसके मन में हुआ कि ये सुंदर, सुखद हवाएं थोड़ी सी एक डिब्बे में बंद करके मैं अपनी प्रेयसी के पास पहुंचा दूं। उसने एक बड़ी खूबसूरत संदूक बनवाई, उसमें समुद्र की हवाओं को बंद किया और ताला लगाया और एक पत्र लिखा और पेटी को भिजवाया हवाई जहाज से अपनी पत्नी, अपनी प्रेयसी के पास। और पत्र में लिखा कि मैंने जानीं इतनी सुंदर हवाएं, कि मेरा मन हुआ कि तुम्हें भी भागीदार बनाऊं। और तुम हो दूर, और तुम हो बीमार, तुम्हें तो समुद्र तक लाना संभव नहीं है, इसलिए मैं समुद्र की हवाएं ही तुम्हारे पास पहुंचाए देता हूं।
उसकी प्रेयसी ने बड़ी खुशी से, बड़ी आतुरता से वह पेटी खोली, लेकिन क्या पाया? वहां तो कुछ भी न था! वह तो पेटी खाली थी!
समुद्र की हवाएं बंद करके नहीं भेजी जा सकतीं। यह तो हो सकता है कि हम समुद्र के पास चले जाएं और उसकी ताजी हवाओं को जानें; यह नहीं हो सकता कि उसकी ताजी हवाओं को पेटियों में बंद करके हमारे पास लाया जा सके। यह तो हो सकता है कि परमात्मा के किनारे हम पहुंच जाएं और उसको जान लें; यह नहीं हो सकता कि जो परमात्मा को जाने वह शब्दों में बंद करके खबरें हमारे पास भेज दे, और हम उन शब्दों को पकड़ लें और जान लें, यह नहीं हो सकता। ऐसा उधार ज्ञान पाने का कोई रास्ता नहीं है। परमात्मा निजी अनुभव है। एकदम निजी

अनुभव है। एकदम वैयक्तिक। कोई लेन-देन नहीं हो सकता। कोई किसी को दे नहीं सकता उस अनुभव को।
लेकिन शब्द हम दे सकते हैं। और शब्दों को देने से यह भ्रम पैदा हो जाता है, जिसके पास शब्द हो जाते हैं, उसे लगता है कि मैंने जाना। शब्द एक इल्युजन पैदा कर देते हैं, एक भ्रम पैदा कर देते हैं। शब्दों से ज्यादा मायावी और कुछ भी नहीं है। शब्दों से बड़ा जादू और कुछ भी नहीं है। शब्द हम सीख लेते हैं और सोचते हैं कि बस हो गई बात, हो गई बात, बात खतम हो गई। शब्दों पर बात खतम नहीं होती। और जो आदमी शब्दों पर रुक रहता है, उसकी जिंदगी जरूर व्यर्थ हो जाती है। शब्दों पर कोई बात खतम नहीं होती है। और जहां तक जीवन की असलियत का संबंध है, वहां हम सब भलीभांति इतने होशियार हैं कि वहां हम शब्दों से राजी नहीं होते। लेकिन जहां सत्य, अनुभूतियों और परमात्मा का संबंध है, वहां हम शब्दों से राजी हो जाते हैं। बड़ी हैरानी की बात है! अगर कोई आपसे धन की बातें करे, तो आप कहेंगेः हो चुकी बातचीत, धन कहां है? अगर कोई आपसे महलों की बातचीत करे, तो आप कहेंगेः हो चुकी बातचीत, लेकिन महल कहां है? बातचीत से क्या होगा? जहां तक पदार्थ, जहां तक संसार का संबंध है, हम सब बहुत होशियार हैं, और हम शब्दों से धोखे में नहीं आते हैं। लेकिन जहां तक परमात्मा का संबंध है, हम बड़े अजीब लोग हैं, हम एकदम शब्दों के धोखे में आ जाते हैं। और हम कहीं नहीं पूछते कि ठीक है, यह तो शब्द हो गया, यह गीता तो ठीक, कुरान तो ठीक, लेकिन परमात्मा कहां है?
एक सम्राट के द्वार पर एक कवि आया, और उस कवि ने उस सम्राट की प्रशंसा में बहुत गीत कहे। बड़े मधुर थे वे गीत; और बड़े मीठे थे शब्द; और बड़ी स्तुति थी उनमें। सम्राट हुआ बहुत प्रसन्न। और उसने सारे गीत सुन कर कहा अपने वजीर कोः कल दस हजार स्वर्णमुद्राएं भेंट कर देना इस कवि को, अदभुत है यह कवि। और कवि से कहाः बहुत हुआ आनंद, बहुत हुआ आनंद, कल आना और दस हजार स्वर्णमुद्राएं भेंट कर दूंगा।
कवि तो आसमान में उड़ गया। वह तो नाचता हुआ घर लौटा। दस स्वर्णमुद्राएं मिल जातीं तो भी खुश होता। दस हजार स्वर्णमुद्राएं! रात सो नहीं सका, रात भर सपने उठते रहे। रात भर बुनता रहा, हिसाब करता रहा--क्या करूंगा, क्या नहीं करूंगा। दस हजार स्वर्णमुद्राओं की तो कल्पना भी न थी। मुंह अंधेरे ही, सूरज भी नहीं निकलता था, वह राजा के द्वार पर पहुंच गया। द्वार खुले, तो वह बाहर खड़ा हुआ था।
राजा ने उससे पूछाः कैसे आए?
वह थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहाः आप भूल गए क्या? कल आपने कहा था, दस हजार स्वर्णमुद्राएं देंगे।
राजा हंसने लगा, उसने कहाः बातों-बातों में तुमने मुझे प्रसन्न किया था, बातों-बातों में मैंने भी तुम्हें प्रसन्न किया। इसमें लेने-देने का कहां संबंध है? तुमने कुछ अच्छी बातें कही थीं, मैं खुश हुआ। मैंने एक अच्छी बात कही, ताकि तुम खुश हो जाओ। इसमें रुपये कहां आते हैं? इसमें रुपयों का क्या वास्ता है? तुमने भी कविता कही, हमने भी कविता कही। हम जरा शब्दों की कविता नहीं कर सकते, हम रुपयों की कविता करते हैं। तो हमने भी एक कविता कही। वह भी एक पोएट्री थी। तुम भी कवि हो, हम भी कवि हैं। तुम शब्दों के कवि हो, हम रुपयों और धन के कवि हैं। तो बात खतम हो गई, उसके आगे लेने- देने का क्या संबंध है?
लेकिन कवि को यह तो दिखाई पड़ गया कि रुपयों की बात कविता हो तो उसको भी धक्का लगा। लेकिन उसको खुद शायद ही यह कभी दिखाई पड़ा होगा कि उसकी कविताएं भी कोरी और थोथी शब्दों से ज्यादा नहीं हैं, उनमें भी कुछ नहीं है।
हम शब्दों के व्यामोह में पड़ते हैं और उसे ज्ञान समझ लेते हैं। यह ज्ञान नहीं है। यह पहली शर्त है, इस ज्ञान को थोथा और भ्रामक समझना जरूरी है जो हमने दूसरों से सीख लिया है। और हमने सब तो दूसरों से सीखा हुआ है! अगर मैं पूछूंः ईश्वर है? और आप कहेंः है। तो क्या आप सोचते हैं, आपने ईश्वर को जाना? सुना है, सीखा है। लोग कहते हैं कि है, आप भी कहते हैं कि है। हिंदू से पूछें, तो वह कुछ और कहता है। मुसलमान से पूछें, वह कुछ और कहता है। बौद्ध से पूछें, वह कुछ और कहता है। जैन से पूछें, वह कुछ और कहता है। क्या वे सब जानते हैं? नहीं, जो उन्होंने सुना है, वह कहते हैं।

क्योंकि उन्होंने भिन्न बात सुनी है, इसलिए वे भिन्न बात कहते हैं। आपने भिन्न बात सुनी है, आप भिन्न बात कहते हैं।
रूस में चले जाएं, वहां के लड़कों से पूछेंः ईश्वर है? वे कहते हैंः नहीं है। क्या वे जानते हैं कि ईश्वर नहीं है? नहीं, उनकी हुकूमत उनको यही समझा रही है कि नहीं है। वे यही सुनते हैं, यही कहते हैं। रूस के बच्चे कहते हैंः ईश्वर नहीं है। हिंदुस्तान के बच्चे कहते हैंः ईश्वर है। हिंदू का बच्चा कहता हैः पुनर्जन्म है। ईसाई का बच्चा कहता हैः पुनर्जन्म नहीं है। यह ज्ञान है या कि शिक्षा है? सिखाई गई बातें हैं।
जो बातें बचपन से दोहराई जा रही हैं, वे हम सीख लेते हैं। उन्हीं के आधार पर हम अपने ज्ञान को खड़ा करते चले जाते हैं। यह सारा ज्ञान का भवन झूठा है। इसके आधार झूठे हैं। जो चीज सिखाई जाती है, वह झूठी होती है। जो बात जानी जाती है, वह और होती है। जानना और सीखने में फर्क है।
विज्ञान सिखाया जा सकता है, धर्म सिखाया नहीं जा सकता। इसलिए विज्ञान
के कालेज हो सकते हैं, युनिवर्सिटी हो सकती है; धर्म का कोई कालेज, कोई युनिवर्सिटी नहीं हो सकती। विज्ञान सिखाया जा सकता है, क्योंकि विज्ञान बाहर के जगत से संबंधित है। जो बाहर के जगत से संबंधित है, वह सिखाया जा सकता है। वह हमसे बाहर है, हम सब उसे देख सकते हैं, हम सब उस पर निरीक्षण कर सकते हैं, हम सब उस पर प्रयोग कर सकते हैं। हम सबके लिए वह कॉमन ऑब्जेक्ट है। हम सबके लिए सबके बीच सामूहिक पदार्थ है। लेकिन धर्म सिखाया नहीं जा सकता, क्योंकि वह आंतरिक है। और सबके समक्ष सामने खड़ा नहीं किया जा सकता, सामूहिक रूप से प्रयोग नहीं हो सकता, सामूहिक परीक्षण नहीं हो सकता, सामूहिक निरीक्षण, ऑब्जर्वेशन नहीं हो सकता। धर्म है नितांत गूढ़ और आंतरिक। उसे कोई स्वयं तो जान सकता है, लेकिन कोई दूसरा इशारा नहीं कर सकता कि यह है। परमात्मा की तरफ अंगुली नहीं उठाई जा सकती, पदार्थ की तरफ अंगुली उठाई जा सकती है। परमात्मा को पकड़ कर मौजूद नहीं किया जा सकता, पदार्थ को पकड़ कर मौजूद किया जा सकता है।
इसलिए परमात्मा को सिखाया नहीं जा सकता, जाना जा सकता है। और बड़ा मजा
यह है कि जो लोग परमात्मा को सीख लेते हैं, वे जानने से वंचित रह जाते हैं। क्योंकि सिखावन होगी उधार, दूसरों की। और उसको ही अगर उन्होंने पकड़ लिया, तो वे उसको ही सत्य मान कर रुक जाएंगे। और तब उस ज्ञान तक कैसे पहुंचेंगे जो उनके भीतर है और कभी बाहर से नहीं आता है?
इसलिए आज की सुबह पहली जो बुनियादी बात आपसे मैं कहना चाहता हूं, वह यहः आपने सुना होगा, दूसरे लोग ज्ञान सिखाते हैं, मैं अज्ञान सिखाता हूं। ज्ञान छोड़ना चाहिए। स्टेट ऑफ नॉट नोइंग जो है, अज्ञान की जो सरल अवस्था है, वह बड़ी अदभुत है, बड़ी क्रांतिकारी है।
एक अनाथालय में मैं गया था। वहां के बच्चों को वे धर्म की शिक्षा देते हैं। तो मैंने उनसे पूछाः क्या सिखाते होंगे? क्योंकि मैं तो समझ ही नहीं पाता कि धर्म सिखाया जा सकता है। असंभव है यह बात। सिखाया जा सकता होता, तो पांच हजार साल हो गए, अब तक आदमी धार्मिक हो गया होता। और हमने सब बातें तो सिखा दी हैं। एक-एक आदमी जानता है कि ईश्वर है, आत्मा है, मोक्ष है, फलां है, ढिकां है, कर्म है, यह है, वह है, हर आदमी जानता है। लेकिन कोई आदमी धार्मिक नहीं हो गया इस वजह से। बल्कि यह जो इस तरह की बातें जानने वाले लोग हैं, बड़े खतरनाक हैं। इस तरह के जानने वाले लोग हमेशा उपद्रव में ले जाते हैं, अधर्म में ले जाते हैं। जो आदमी रोज गीता पढ़ता है, कल वह मस्जिद जलाने की सलाह दे सकता है। जो आदमी रोज मस्जिद में नमाज पढ़ता है, वह कल मंदिर में आग लगाने की सलाह दे सकता है। बड़े खतरनाक लोग हैं। इनका यह जो ज्ञान है, यह ज्ञान कोई प्रेम नहीं लाता दुनिया में। यह ज्ञान कोई दुनिया में शांति नहीं लाता; युद्ध लाता है, हिंसा लाता है। तो यह ज्ञान तो धार्मिक बनाता नहीं किसी को, फिर भी आप क्या सिखाते हैं?
तो उन्होंने कहाः आप आएं और बच्चों से पूछ लें।
मैं गया। उन्होंने खुद ही पूछाः ईश्वर है?
उन सारे बच्चों ने हाथ उठा दिए।
उनको सिखाया था। उनको परीक्षा देनी थी। उनको बताया गया था, जब हम पूछें--ईश्वर है? तो तुम कहना--हां, ईश्वर है। उन्होंने हाथ उठा दिए। वे

हाथ बिल्कुल झूठे हैं। उन बच्चों को कोई भी पता नहीं कि ईश्वर है या नहीं है। लेकिन वे हाथ उठा रहे हैं। बुनियाद रखी जा रही है असत्य की। इसी बुनियाद पर उनके जीवन भर का भवन खड़ा हो जाएगा। यह बुनियाद झूठी है। इन बच्चों को कोई भी पता नहीं। और इतना बड़ा असत्य जिन बच्चों को हम सिखा रहे हैं, हम अगर आशा करें कि जीवन में वे सत्यवादी हो जाएंगे, तो निहायत नासमझी की बात है। इतना बड़ा असत्य हम उन बच्चों को सिखा रहे हैं! जिनको कोई पता नहीं, उनको हम कह रहे हैं, ईश्वर है। और जो कह रहा है, बड़ा मजा यह है, उसे भी कोई पता नहीं, उसे भी किसी ने सिखाया है।
मैंने उनके अध्यापक के कान में पूछाः तुम्हें पता है ईश्वर के होने का?
वे कहे कि मुझे तो नहीं, लेकिन हां, है तो जरूर, क्योंकि सब कहते हैं।
इन बच्चों को भी सिखा दिया।
आत्मा है?
उन बच्चों ने कहाः है।
कहां है?
उन्होंने अपने हृदय पर हाथ रख दिए, यहां।
मैंने एक छोटे बच्चे से पूछा कि हृदय कहां है?
उसने कहाः यह तो हमें बताया नहीं गया। जो बताया गया, वह हम बता सकते हैं। जो नहीं बताया गया, वह हम कैसे बता सकते हैं?
हृदय कहां है, यह उसे पता नहीं; लेकिन आत्मा कहां है, तो वह कहता है, यहां है। यह हाथ कितना झूठा है! लेकिन यह सीख लिया जाएगा, और जिंदगी भर, जब भी प्रश्न उठेगा और जिज्ञासा पैदा होगी और इंक्वायरी पैदा होगी कि आत्मा कहां है, यह झूठा हाथ मशीन की तरह यहां चला जाएगा और कहेगा, यहां। यह गेस्चर बिल्कुल झूठा है। यह हाथ का उठना बिल्कुल झूठा है।
हम सबके हाथ भी उठेंगे, अगर मैं आपसे पूछूंः आत्मा कहां है? तो आप कहेंगेः यहां। यह हाथ भी वही हाथ है, जो बच्चे का उठा कर लगा दिया गया था। बूढ़े हो जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। बचपन में सीखी गई आदतें काम करती रहती हैं। आपसे पूछेंः आत्मा कहां है? कहेंगेः यहां। आपने जाना है यहां क्या है? कोई पता नहीं उसका कि यहां क्या है, लेकिन हाथ उठता है और चला जाता है।
ये जो सारी तरकीबें हैं, ये शिक्षाएं नहीं हैं, बल्कि इस अहसास के कारण कि मुझे पता है, आत्मा यहां है, कभी आप आत्मा को खोजते भी नहीं। क्योंकि जिसे यह ख्याल पैदा हो गया कि मुझे मालूम है, वह खोजेगा क्यों? हमारी खोज बंद हो गई है सारी दुनिया में धर्म की, इस कारण से नहीं कि नास्तिक बढ़ गए हैं, इस कारण से नहीं कि विज्ञान बढ़ गया है, इस कारण से नहीं कि लोग बुरे हो गए हैं, कलियुग आ गया है। ये सब निहायत बेवकूफी की बातें हैं। बल्कि इस कारण कि धार्मिक लोगों ने शिक्षा दे-दे कर हमारे मन इतने ज्ञान से भर दिए हैं कि हमारी खोज बंद हो गई, हमारी इंक्वायरी बंद हो गई। इसका जिम्मा नास्तिकों पर नहीं है, न भौतिकवादियों पर है। इसका जिम्मा धार्मिक शिक्षकों पर है, रिलीजस टीचर्स पर है। जो सिखाए जा रहे हैं कि यह है, यह है, यह है। और जो यह भी सिखाते हैं कि संदेह मत करना, नहीं तो भटक जाओगे; विश्वास कर लेना, हम जो कहते हैं, उस पर।
ये जो सिखा रहे हैं लोग, ये जो ज्ञान देने वाले लोग हैं, ये हैं शत्रु मनुष्य-जाति के। इन्होंने हमारे हृदय को, हमारे मस्तिष्क को ऐसे थोथे शब्दों से भर दिया है जिनकी कोई प्रतीति हमें नहीं है। और तब हम एकदम उधार आदमी हो गए हैं, बारोड। अपनी कोई आत्मा नहीं है जिनके पास। होगी कैसे? जिसके पास अपना कोई ज्ञान नहीं है, उसके पास अपनी कोई आत्मा, अपना कोई बल होता है? जिसका सब ज्ञान दूसरों से आता हो, वह भीतर एकदम सत्वहीन हो जाता है, इंपोटेंट हो जाता है। उसके भीतर कोई बल नहीं रह जाता। वह कुछ भी नहीं जानता है। उसकी सारी दीवालें ज्ञान की खींची जा सकती हैं, और उसको पता चलेगा कि यह तो मैं नहीं जानता हूं।
धोखा अपने को दिया जा सकता है ऐसे ज्ञान से। लेकिन ऐसे ज्ञान से न कभी कोई मुक्त होता है, न कभी कोई सत्य को जानता है।

तो मैंने कहाः इन बच्चों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार, बड़ा अनाचार कर रहे हो। आज तक अधिक मां-बाप और शिक्षकों ने यह किया है। बच्चों के धार्मिक होने की सारी संभावनाएं बंद कर दी हैं। इसके पहले कि उनकी जिज्ञासा पैदा हो, हम उनको शब्द पकड़ा देते हैं, वे शब्द से तृप्त हो जाते हैं। वह तृप्ति झूठी है, और उस तृप्ति की वजह से फिर उनकी खोज बंद हो जाती है, उनकी प्यास समाप्त हो जाती है।
क्या करें? शब्दों को हटा दें अपने मन से। आपके भीतर एक लपटती हुई प्यास पैदा होगी जानने की। ज्ञान को हटा दें और आपका अज्ञान आपके प्राणों के भीतर एक प्यास बन जाएगा कि मैं जानूं! क्या है, मैं जानूं!
ज्ञान का भ्रम टूट जाए, तो ज्ञान की यात्रा शुरू होती है। और जो ज्ञान
के खूंटों से बंधे रहते हैं, उनकी कभी यात्रा शुरू नहीं होती।
तो पहला निषेधात्मक काम हैः ज्ञान से छुटकारा। यह बड़ा कठिन है। क्योंकि अज्ञान से कोई कहे छूट जाओ, तो हमको खुशी होती है। क्योंकि अज्ञान से छूटने में हमारे अहंकार की तृप्ति होगी। और मैं कहता हूं, ज्ञान से छूट जाओ, तो बड़ी घबड़ाहट होती है। क्योंकि ज्ञान तो हमारा अहंकार है। अहंकार से छूटने में बड़ी बेचैनी होती है। कि अगर मैंने ज्ञान छोड़ दिया, मैं हो गया अज्ञानी। कल चार लोग कहते थेः पंडितजी, आप जानते हैं। और मैं खुद ही कहूं कि मैं कुछ नहीं जानता, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। कल चार लोग पैर छूते थे, कहते थेः तपस्वी हैं, ज्ञानी हैं। वही कहेंगे कि अरे, ये तो खुद ही नहीं जानते। सारी कठिनाई वहां अहंकार की है।
तो ज्ञान छोड़ने वाले को साहसी होना पड़ेगा, इस दंभ को छोड़ने का। और एक क्षण में यह हो सकता है, इसके लिए कोई पहाड़ नहीं खोदने पड़ेंगे। यह बोध आ जाए कि सच मैं जो जानता हूं, उसमें मेरा कितना है जो मैंने जाना है? इसकी थोड़ी सी परख, और सारा भवन गिर जाएगा, जैसे ताश के पत्तों का भवन हवा के एक झोंके में गिर जाए। उससे ज्यादा श्रम नहीं पड़ेगा। क्योंकि भवन के नीचे कोई बुनियाद नहीं है, कोई आधार नहीं है, अधर में लटका हुआ भवन है। तरकीब है मन को कंडीशन करने की, जो हजारों साल से धर्मगुरु, राजनीतिज्ञ उपयोग कर रहे हैं और आदमी को गुलाम बनाए हुए हैं।
पावलफ हुआ रूस में एक वैज्ञानिक। उसने जिंदगी भर कुत्तों के ऊपर कुछ प्रयोग किए। एक कुत्ते को वह रोज रोटी देता। रोटी सामने आती, तो कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगती। स्वाभाविक है। रोटी सामने हो, कुत्ता भूखा हो, लार टपकेगी। लेकिन वह साथ ही साथ जब रोटी खिलाता, तो साथ में एक घंटी भी बजाता जाता। पंद्रह दिन बाद, रोटी तो नहीं दी उसने, सिर्फ घंटी बजाई, कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी।
अब घंटी बजने से और कुत्ते के मुंह से लार टपकने का कोई प्राकृतिक संबंध नहीं है। रोटी के साथ तो प्राकृतिक संबंध है, लेकिन घंटी के साथ क्या संबंध है? लेकिन पंद्रह दिन में संबंध स्थापित हो गया। एक फाल्स रिलेशन, एक झूठा संबंध पैदा हो गया। रोटी दी जाती थी, साथ में घंटी बजती थी, दोनों के बीच संयोग हो गया कुत्ते के मन में। रोटी और घंटी साथ-साथ ख्याल में आ गए। अब रोटी मिलती थी तो घंटी बजती थी, तो घंटी बजेगी तो रोटी मिलेगी, ऐसा मन में संबंध हो गया। पंद्रह दिन बाद घंटी बजती है, कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी। घंटी के साथ रोटी का ख्याल संयुक्त हो गया।
इसको पावलफ ने कहा... यह बड़ी क्रांतिकारी खोज थी। इसके इंप्लिकेशंस, इसके अंतर्गर्भित अर्थ बहुत गहरे हैं।
एक छोटे से बच्चे को ले जाते हैं आप एक मंदिर में और कहते हैंः ये भगवान हैं। बच्चे को कोई भगवान वहां दिखाई नहीं पड़ता। अगर बच्चे को दिखाई पड़ता होता, तो आपको बताने की कोई जरूरत न पड़ती। आप हाथ जोड़ते हैं और बच्चे से कहते हैंः हाथ जोड़ो। अगर बच्चे को भगवान दिखाई पड़ रहे होते, तो वह खुद ही हाथ जोड़ लेता। बच्चे को तो दिख रहा है कि पत्थर की एक मूर्ति रखी है। बच्चे को तो सचाई दिख रही होगी, आपको भला भगवान दिख रहे हों। बच्चा आपकी तरह अभी बेईमान नहीं हो गया है। बच्चा आपकी तरह चालाक भी नहीं है, बच्चा अभी कंडीशंड भी नहीं है, अभी उसके दिमाग को कुछ पता नहीं है। सीधा-साफ उसको तो दिखाई पड़ रहा होगा कि एक पत्थर की मूर्ति रखी है। और अगर आप बाधा न दें तो हो सकता है पत्थर की मूर्ति उठा कर घर ले आए, खेल-खिलौना बना ले। बच्चे

को कोई कठिनाई नहीं होगी, सीधी-सीधी बात है। लेकिन आप कहते हैं कि भगवान हैं। पिता को बच्चा मानता है बड़ा, आदरणीय। वे जो कहते हैं, जरूर ठीक कहते होंगे। जो जानते हैं, जरूर ठीक जानते होंगे। क्योंकि उनकी बात पर शक करने का मतलब पिट जाना, परेशान होना है। तो ठीक है। ताकतवर हैं, वे ठीक ही कहते होंगे। फिर जब उनको हाथ जोड़ते देखता है, और गांव के लोगों को हाथ जोड़ते देखता है, वह भी हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता है। यह हाथ जोड़ना उसके चित्त में बिल्कुल झूठी घटना है। इसका उसके प्राणों से कोई संबंध नहीं है। इसका उसके अनुभव से कोई नाता नहीं है। फिर रोज-रोज यह क्रिया चलती है। पच्चीस वर्ष का वही जवान उस मंदिर के सामने से निकलता है तो उसके हाथ उठ जाते हैं। यह वही घटना है, जो कुत्ते के मुंह से लार टपक गई घंटी बजते देख कर। इसमें कोई फर्क नहीं है, इसमें कोई भेद नहीं है। यह कंडीशनिंग है। ये चित्त को बांधने की तरकीबें हैं, और कुछ भी नहीं। इसमें न भगवान के प्रति हाथ उठ रहे हैं, न कोई भगवान से संबंध है इस बात का। कोई नाता नहीं है इससे भगवान का, इसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। यह तो सिर्फ पच्चीस वर्ष की शिक्षा, संयोग, अब वह भयभीत हो गया।
मेरे एक मित्र हैं, मुझसे बात करते थे, उनको बात समझ में आ गई। तो जिस मंदिर के सामने से निकल कर वे रोज नमस्कार करते थे, उनको बात समझ में आ गई होगी, तो वे एक दिन बिना नमस्कार किए निकल गए। सांझ को मेरे पास आए और बोलेः बड़ी मुश्किल हो गई। बीस-पच्चीस कदम तो मैं हिम्मत करके चला गया कि न करूं नमस्कार, लेकिन बीस-पच्चीस कदम के बाद मुझे एकदम पसीना आने लगा और हृदय घबड़ाने लगा--कि आज तीस वर्षों से निरंतर नमस्कार करता था, कहीं भगवान नाराज न हो जाएं! और मैं भी कहां के चक्कर में पड़ गया! किस बात में पड़ गया! और फिर मैंने कहा कि कौन देखता है! और आपको पता भी क्या चलेगा कि मैंने किया कि नहीं! मैं वापस लौटा, मैंने धीरे से नमस्कार किया, और फिर दफ्तर चला गया--निश्चिंत, शांत होकर।
मैंने उनसे कहाः मैंने कभी कहा नहीं कि तुम छोड़ देना नमस्कार करना। मैंने तो यह कहा कि तुम समझ लेना कि यह नमस्कार करना है क्या। और अगर यह ख्याल में आ जाएगा, तो तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि यह कब छूट गया है।
यह इस भांति हमारा जो चित्त है, उसको हम समझ रहे हैं कि यह ज्ञान और धर्म को जान लिए वाला चित्त है। इसने कुछ भी नहीं जाना हुआ है। इसी भांति हमने शब्द सीख लिए, शास्त्र सीख लिए, मंदिर सीख लिए, प्रार्थनाएं, पूजाएं सीख लीं--सारी झूठी। इनका हमारे प्राणों के अंतस से कोई संबंध नहीं है। इसका हमारी आत्मा से कोई संबंध नहीं है। और इसीलिए तो हम झूठे आदमी की तरह जमीन पर खड़े हुए हैं।
तो पहली बातः शब्द से, शास्त्र से, ज्ञान से, जो सिखाया गया है उससे, उसके प्रति यह बोध जग जाना चाहिए, वह ज्ञान नहीं है, वह सत्य नहीं है, वह केवल शिक्षा है--उधार, बासी, दूसरों की। उसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है। और अगर यह स्मरण आ जाए कि उसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है, तो दीवालें गिर जाएंगी, वह भवन गिर जाएगा। और तब नये भवन को खड़े करने की जगह खाली हो जाएगी।
मैं नहीं जानता हूं, यह जानना पहला सूत्र है। मैं नहीं जानता हूं सत्य को, स्वयं को, सर्व को, कुछ भी नहीं जानता हूं। टोटल इग्नोरेंस है, पूरा अज्ञान है, कुछ भी नहीं जानता हूं, यह बोध पहली सीढ़ी है। फिर इसके बाद कुछ हो सकता है इस बोध के ऊपर। क्योंकि सत्य है यह बोध, निश्चित तथ्य है यह, यह हमारी वास्तविक दशा है, तो यह आधार बन सकता है, फिर इसके ऊपर कुछ भवन खड़ा किया जा सकता है। फिर हम पूछ सकते हैं कि मैं कैसे जानूं? फिर हम पूछ सकते हैं कि मैं क्या करूं कि जानना हो सके? अभी तो नहीं जानता हूं।
वेजनर एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ। उसके पास एक युवा संगीतज्ञ आया और वेजनर से बोलाः प्रभावित हुआ हूं तुम्हारी कला से मैं, और तुम्हारे निकट रह कर संगीत सीखना चाहता हूं।
वेजनर ने कहाः मित्र, पहले तो कहीं और संगीत नहीं सीखा है?
उसने कहाः मैंने सीखा है, पांच वर्षों से अभ्यास करता हूं, इसलिए आपको कठिनाई भी कम होगी मुझे सिखाने में।

वेजनर ने कहाः तुम गलती में हो, कठिनाई ज्यादा हो गई। तुमने जो सीखा है, पहले उसे भुलाना पड़ेगा। इसलिए फीस दुगुनी होगी। जो लोग बिल्कुल अनसीखे आते हैं, उनसे जितनी फीस लेता हूं, उससे दुगुनी तुमसे लूंगा। क्योंकि पहली तो मुसीबत यह हो गई कि तुमने जो सीखा है, वह भुलाना होगा, वह अनलर्न करना होगा, उसे साफ करना होगा। क्योंकि इधर हम जो संगीत सिखाते हैं, वह सिखाने वाली चीज नहीं है।

अपने माहिं टटोल
तीसरा प्रवचन

चित्त मौन हो

शब्दों से, विचारों और शास्त्रों से मुक्त होना, सत्य की या परमात्मा
की खोज में जरूरी है, यह मैंने आपसे कहा। उस संबंध में दो-तीन प्रश्न पूछे गए हैं।

एक तो पूछा है कि यदि शब्दों से सत्य नहीं जाना जा सकता तो फिर आप शब्दों का उपयोग क्यों कर रहे हैं?

साधारण सोचने पर जरूर ऐसा प्रश्न उठेगा। लेकिन थोड़ा जल्दी सोचने पर ऐसा उठेगा और थोड़ा विचार करेंगे तो नहीं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मैं जो कह रहा हूं उससे आपको सत्य का ज्ञान हो जाएगा। मेरे शब्द आपके लिए सत्य का ज्ञान नहीं बन सकते। किसी के भी शब्द नहीं बन सकते हैं। तो फिर शब्द की क्या उपादेयता है?
शब्द की उपादेयता, जैसा मैंने सुबह कहा, शब्द की उपादेयता निषेधात्मक है, निगेटिव है। आपके पैर में एक कांटा लगा हो तो दूसरा कांटा उस कांटे को निकाल सकता है। लेकिन दूसरे कांटे को निकालने के बाद निकालने वाले कांटे की भी कोई उपादेयता नहीं रह जाती, वह भी व्यर्थ हो जाता है। और कोई अगर यह सोच कर कि इस दूसरे कांटे ने बड़ी कृपा की है, इस दूसरे कांटे की पूजा शुरू कर दे, तो नासमझी होगी। यह सोच कर कि यह दूसरा कांटा बड़ा हितकारी है, इसने एक कांटे को पैर से निकाला और अपने घाव में इस दूसरे कांटे को रख ले, तो बड़ी मूढ़ता होगी। इस दूसरे कांटे का उपयोग इतना है कि यह पहले कांटे को निकाल दे। इससे ज्यादा नहीं।
शब्द हमारे मन पर इकट्ठे हैं कांटों की तरह। उनको शब्दों से निकाला
जा सकता है। लेकिन इससे केवल शब्द ही निकल पाएंगे। इन शब्दों से सत्य उपलब्ध नहीं हो जाएगा। इसलिए इन शब्दों की पूजा की कोई जरूरत नहीं है। और शब्द मन पर न हों तो मन के शांत और शून्य होने की दिशा में आपके कदम पड़ सकेंगे। और जिस दिन मन पूरी तरह सीमाओं का अतिक्रमण कर लेगा, सभी शब्दों की, उस दिन सत्य का अनावरण होगा स्वयं के भीतर। सत्य तो स्वयं के भीतर है। शब्दों और सिद्धांतों ने उसे घेरे में बांध रखा है। तो एक निषेधात्मक काम शब्दों से हो सकता है। वह शब्दों को तोड़ने की बुद्धि और विवेक उनसे पैदा हो सकता है। लेकिन सत्य उनसे नहीं मिलेगा। सत्य तो भीतर है। वह तो मिलेगा उसी क्षण जिस दिन मन सब भांति शून्य और शांत हो जाएगा।

इसी प्रश्न के साथ उन्होंने यह भी पूछा हैः तो और धर्म-प्रवर्तकों ने
जो शब्दों का प्रयोग किया और सिद्धांत प्रतिपादित किए, क्या उन्होंने भूल की?

तो मैं उनसे यही निवेदन करूंगाः आज तक किसी धर्म-प्रवर्तक ने सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किए हैं। सिद्धांत प्रतिपादित करने वाले और ही लोग हैं। धर्म-प्रवर्तकों ने तो निरंतर शब्दों और सिद्धांतों से मुक्त होने की आकांक्षा और अभिप्राय जाहिर किया है। उन्होंने तो हर भांति यह कोशिश की है कि आपका मन सब तरह के बंधनों से मुक्त हो जाए।
लेकिन धर्म-प्रवर्तक और धर्म-संगठक, ये दो वर्ग हैं। और हमें निरंतर
यह भूल होती रही है।
एक व्यक्ति को, मैंने सुना है, एक कहानी सुनी है, एक व्यक्ति को सत्य उपलब्ध हो गया। तो शैतान के शिष्यों ने शैतान को जाकर खबर दी कि एक आदमी को सत्य उपलब्ध हो गया है।
शैतान ने कहाः तुमने बड़ी देर कर दी। पहले तुम खबर करते तो हम उसे विचलित करते और परेशान करते ताकि वह सत्य को उपलब्ध न हो पाता। अब क्या

होगा? लेकिन अभी भी एक उपाय बाकी है। तुम घबड़ाओ मत। गांव-गांव में जाकर ढोल पीट दो और खबर कर दो कि फलां आदमी को सत्य उपलब्ध हो गया है।
शैतान के शिष्यों ने कहाः यह तो और उलटी बात हो जाएगी। हमें तो कोशिश करनी चाहिए कि किसी को पता न चले। नहीं तो सत्य की ज्योति में शैतान का अंधकार विलीन हो जाएगा, हमारा राज्य नष्ट होगा।
शैतान ने कहाः तुम देर मत करो। हमेशा का मेरा अनुभव यह है कि जैसे ही किसी को सत्य उपलब्ध हो, लोगों को खबर कर दी जाए। लोग उसके पास इकट्ठे हो जाते हैं। और उनमें जो बहुत चालाक होते हैं, वे संगठन बनाना शुरू कर देते हैं, संप्रदाय बनाना शुरू कर देते हैं, शास्त्र लिखना शुरू कर देते हैं। और तब, जिसको सत्य मिलता है, वह भीड़ में खो जाता है। और जो उसके आस-पास संगठन करने वाले होशियार और चालाक लोग होते हैं, वे प्रमुख हो जाते हैं। बहुत जल्दी धर्म-संस्थापक भूल जाता है और धर्म-संगठक प्रमुख हो जाते हैं और आगे हो जाते हैं। और धर्म-संगठक से हमें कोई, कोई खतरा नहीं है।
फिर उन्होंने यही किया। उन्होंने गांव-गांव में खबर कर दी। भीड़ पर भीड़ इकट्ठी होने लगी। और जो बहुत चालाक, शब्दों के खिलाड़ी थे, सिद्धांतों के आदी थे, तर्क कर सकते थे, विवाद कर सकते थे, वे पंडित इकट्ठे हो गए और उन्होंने उस आदमी की बातों पर व्याख्याएं करनी शुरू कर दीं, टीकाएं करनी शुरू कर दीं। वह आदमी भीतर चिल्लाता रह गया। आस-पास एक घेरा खड़ा हो गया पादरी-पुरोहितों का और एक संस्था और एक संगठन का जन्म हो गया। और वह आदमी जिसको सत्य मिला था, उसका लोगों से सारा संबंध टूट गया। उसके बीच में दलाल खड़े हो गए जिनसे लोगों का संबंध था और वे बताने लगे कि उसका क्या अर्थ है, वह क्या कहता है, उसका क्या अर्थ है। उसकी सैद्धांतिक व्याख्या और विवेचना करने लगे।
अगर आज महावीर लौट आएं तो आप विश्वास करते हैं कि महावीर के पीछे पंडितों का जो वर्ग खड़ा है उसकी बात और महावीर की बात एक ही होगी? अगर आज कृष्ण वापस आ जाएं तो जिन लोगों ने गीता पर टीकाएं लिखी हैं उनकी बात और कृष्ण की बात एक ही होगी?
कृष्ण के ऊपर कोई हजार टीकाएं हैं, गीता की। क्या कृष्ण के बोलते समय
एक हजार अर्थ रहे होंगे? एक हजार विरोधी अर्थ रहे होंगे? तो या तो दिमाग खराब रहा हो कृष्ण का तो एक हजार अर्थ हो सकते हैं। लेकिन दिमाग उनका खराब नहीं था। उनका अर्थ तो बहुत सुनिश्चित रूप से एक ही रहा होगा जो वे कहना चाहते थे। ये हजार अर्थ और हजार अर्थ करने वाली टीकाएं कहां से आ गईं? ये किसने बनाईं?
यह बीच में हमेशा सत्य की व्याख्या करने वाले पंडितों का एक वर्ग है
जो टीका लिखते हैं, टीकाओं पर टीकाएं लिखते हैं और धीरे-धीरे सत्य खो जाता है और टीकाएं हमारे हाथ में रह जाती हैं। सारी दुनिया में, जैन धर्म महावीर का खड़ा किया हुआ नहीं है और न बौद्ध धर्म बुद्ध का और न क्राइस्ट धर्म क्राइस्ट का। जिन लोगों ने ये धर्म खड़े किए वे बहुत दूसरे हैं। यह ज्योति तो इन लोगों में पैदा हुई, लेकिन इस ज्योति के आस-पास जो भीड़ खड़ी की गई है, वे बहुत दूसरे लोग हैं जिन्होंने की है। और उन दूसरे लोगों को धर्म का कोई भी पता नहीं है।

आज तक यह निरंतर हुआ है। दुर्भाग्य होगा, आगे भी यह हो सकता है। क्योंकि जब भी कोई किरण प्रकट होती है तो उस किरण का शोषण करने के लिए संगठन करने वाले लोग एकदम इकट्ठा हो जाते हैं। कोई सोचता हो कि ये धर्म के सहयोगी हैं तो गलती में है। ये धर्म के व्यवसायी हैं और जहां भी इन्हें आशा दिखती है कि व्यवसाय हो सकता है वहां ये पहुंच जाते हैं। हर ज्योति के आस-पास धंधे करने वाले लोग इकट्ठे हो जाते हैं। वह ज्योति तो बुझ जाती है उस आदमी के साथ, लेकिन यह धंधा करने वालों की जो गद्दी है वह कायम हो जाती है और हजारों साल तक चलती है। वह चल रही है। नहीं तो दुनिया में इतने धर्म नहीं हो सकते थे। धर्म की ज्योति तो एक ही है। लेकिन जहां-जहां ज्योति प्रकट हुई वहीं-वहीं गद्दियां खड़ी हो गईं, वहीं-वहीं संगठन खड़े हो गए। और फिर इन सब संगठनों के आपस में स्वार्थ टकराते हैं, क्योंकि बाजार इनका एक

ही है जहां से इनको ग्राहक खरीदने पड़ते हैं। तो वहां इनके स्वार्थ टकराते हैं, इसलिए मंदिर-मस्जिद टकराते हैं, इसलिए हिंदू-मुसलमान टकराते हैं। कल्पना में भी न रहा होगा महावीर और बुद्ध के कि वे जिन बातों को कह रह रहे हैं वे झगड़े के बायस बन जाएंगी, झगड़े के कारण बन जाएंगी। बुद्ध ने कहा थाः मेरी कोई मूर्ति न बनाए। लेकिन आज जमीन पर जितनी बुद्ध की मूर्तियां हैं, और किसी की भी नहीं हैं। किसी की इतनी मूर्तियां नहीं हैं जितनी बुद्ध की हैं। और बुद्ध जीवन भर कहते रहे कि मेरी कोई मूर्ति न बनाए। क्योंकि मूर्ति से क्या प्रयोजन है? मैं कोई भगवान नहीं हूं, इसलिए मेरी पूजा का भी कोई कारण नहीं है। लेकिन जितनी पूजा बुद्ध की होती है उतनी किसी और की नहीं। चीन में तो एक मंदिर है--एक मंदिर--जिसका नाम हैः दस हजार बुद्धों का मंदिर। दस हजार मूर्तियां हैं एक ही मंदिर में! पूरा पहाड़ का पहाड़ खोद कर दस हजार मूर्तियां बनाई गईं एक ही मंदिर के लिए। कोई साढ़े तीन सौ वर्षों में पूरा मंदिर बन कर तैयार हुआ। दस हजार बुद्धों का मंदिर है। अरबी और उर्दू में तो बुत शब्द मूर्ति का अर्थवाची हो गया। बुत बुद्ध
का बिगड़ा हुआ रूप है। इतनी मूर्तियां बनीं बुद्ध की कि बुद्ध यानी बुत, बुत यानी मूर्ति हो गया, बुद्ध यानी मूर्ति ही हो गया। और इस बुद्ध ने कहा था कि मेरी मूर्तियां बनाना मत। तो किसने ये मूर्तियां बनाईं? कौन मिल गए इन मूर्तियों को बनाने वाले लोग? किन्होंने ये पूजाएं गढ़ीं?
जरूर कुछ और लोग भी पीछे काम कर रहे हैं--जरूर कुछ और लोग भी पीछे काम
कर रहे हैं।
धर्म की ईजाद और धर्म का अनुभव जिन्हें होता है, वे ही धर्म के संगठक नहीं हैं। सचाई तो यह है कि अगर उनकी बात चले तो दुनिया में धर्म का कोई संगठन नहीं होना चाहिए। क्योंकि संगठन से धर्म का क्या संबंध! महावीर को जो ज्ञान उपलब्ध होता है वह तो अकेले में उपलब्ध होता है। समूह में तो उपलब्ध नहीं होता, भीड़ में तो उपलब्ध नहीं होता। बुद्ध को जो ज्ञान उपलब्ध होता है वह भी एकांत में उपलब्ध होता है। कोई सेना और फौज बना कर तो उपलब्ध नहीं होता। क्राइस्ट को या मोहम्मद को भी जो ज्ञान उपलब्ध होता है वह भी नितांत एकांत और तनहाई में उपलब्ध होता है।
आज तक दुनिया में जिनको भी ज्ञान उपलब्ध हुआ है वह एकांत में, अकेले में, मौन में उपलब्ध हुआ है। भीड़ से उसका क्या संबंध? संगठन से उसका क्या संबंध? शायद हमको यह पता भी नहीं है कि सभी संगठन घृणा के लिए खड़े होते हैं, कोई संगठन प्रेम के लिए कभी खड़ा नहीं होता। संगठन के पीछे होती है हेट्रेड, घृणा, शत्रुता, हिंसा। प्रेम का कभी कोई संगठन देखा है? प्रेमियों की कोई संस्था देखी है? कोई देखी है उनकी भीड़? कोई उनके मंदिर? प्रेमियों का आज तक कोई संगठन नहीं है। क्योंकि जिसे प्रेम करना है वह अकेला ही प्रेम करने में समर्थ है। लेकिन जिसे घृणा करनी है, हिंसा करनी है, वह अकेले करने में समर्थ नहीं है। उसे भीड़ चाहिए। इसलिए दुनिया में जितने बड़े पाप हुए हैं वे अकेले आदमियों ने नहीं किए हैं, वे भीड़ और संगठनों ने किए हैं। अकेला आदमी बहुत कमजोर है, बड़े पाप नहीं कर सकता। लेकिन अकेला आदमी बहुत ताकतवर है, बड़ा प्रेम कर सकता है। एक आदमी इतना प्रेम कर सकता है कि उसकी बांहों में सारी जमीन के लोग समा जाएं। आदमी प्रेम करने में विराट है, घृणा करने में बहुत छोटा है। इसलिए घृणा के लिए इकट्ठा करना होता है और लोगों को। ये जितनी जातियां खड़ी हुई हैं, जितने धर्म और जितने राष्ट्र, ये सब घृणा के संगठन हैं। और इसलिए जितने जोर से घृणा पैदा होती है, संगठन उतना ही मजबूत हो जाता है।
हिंदुस्तान पर हमला हो जाए पाकिस्तान का या चीन का, फिर देखें कैसी एकता पैदा हो जाती है! हम सब मालूम होने लगते हैं कि इकट्ठे हो गए। ऐसा लगता है कि हम बड़े एक-दूसरे के प्रेम करने वाले हो गए। हम सब संगठित हो जाते हैं। वह संगठन इसलिए नहीं है कि हमारे भीतर प्रेम है, बल्कि इसलिए है कि हमारे सामने एक शत्रु है और जिसके प्रति हमारे मन में गहरी घृणा पैदा हो रही है। इस घृणा के लिए हम इकट्ठे हो जाएंगे। शत्रु हट जाएगा, हमारा संगठन भी ढीला हो जाएगा।
हिटलर ने तो अपनी आत्मकथा में लिखा हैः अगर किसी भी कौम को संगठित होना हो तो या तो उसके सामने सच्चे दुश्मन चाहिए जिनके प्रति घृणा पैदा हो

जाए; और अगर सच्चे दुश्मन न हों तो झूठे दुश्मन ईजाद कर लेना चाहिए तो कौम इकट्ठी हो जाती है, संगठित हो जाती है। झूठे दुश्मन खड़े कर लेने चाहिए। जिन्ना ने नारा दे दियाः हिंदुस्तान में इस्लाम खतरे में है। एक झूठा दुश्मन खड़ा कर लिया, मुसलमान इकट्ठे हो गए। कोई खतरा नहीं था, कोई बात न थी, लेकिन एक नारे ने धीरे-धीरे लोगों को ख्याल दे दिया कि इस्लाम खतरे में है। एक खतरे का भाव पैदा हो गया, दुश्मन खड़ा हो गया--काल्पनिक दुश्मन था, जो कहीं भी नहीं था--लेकिन जब वह एक दफा खड़ा हो गया तो मुसलमान इकट्ठे हो गए। और फिर चीजें तो एक चक्रीय रूप में काम करती हैं। जब लोग इकट्ठे हो जाएं तो फिर उनको घृणा करने का मौका चाहिए। घृणा करने का मौका हो तो वे इकट्ठे होते हैं। इकट्ठे हो जाएं तो फिर घृणा करने का मौका चाहिए, नहीं तो संगठन आगे चल नहीं सकता। तो ये दुनिया के जो संगठन आपको दिखाई पड़ते हैं-- हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन--ये कोई प्रेम के संगठन नहीं हैं, ये सब घृणा के संगठन हैं, दूसरे की शत्रुता में खड़े हुए हैं। और इसलिए जब तक शत्रुता मजबूत होती है, तब तक संगठन मजबूत होता है। जब शत्रुता ढीली हो जाती है, संगठन ढीला हो जाता है। इसलिए नये संगठन ज्यादा मजबूत होते हैं, क्योंकि नई शत्रुता ताजी होती है। घृणा नई, ताजी होती है। पुराने संगठन ढीले हो जाते हैं।
इस्लाम सबसे ज्यादा तगड़ा संगठन है। उसकी उम्र चौदह सौ साल की है। हिंदुओं का संगठन सबसे ढीला है। उसकी उम्र पांच हजार साल की है। इसकी और कोई वजह नहीं है। इसकी कुल वजह इतनी है कि वह घृणा अभी नई है। और यह घृणा बहुत पुरानी हो गई है। यह ढीली पड़ गई है। इसकी जड़ें कमजोर हो गई हैं, यह बूढ़ी हो गई है। वह अभी जवान है। दुनिया में जो संगठन जितना नया होता है उसमें उतना बल होता है, क्योंकि घृणा और जहर नये होते हैं। फिर धीरे-धीरे वे शिथिल हो जाते हैं।
लेकिन कोई भी संगठन मरने का नाम नहीं लेता एक दफा पैदा हो जाए तो। और दुनिया में संगठन बढ़ते चले जाते हैं। और वे एक-दूसरे की शत्रुता में जीते हैं। इसलिए हम यह कितना ही कहें कि दुनिया के सब धर्म भाई-भाई हैं, दुनिया के धर्म कभी भाई-भाई नहीं हो सकते। क्योंकि जिस दिन वे भाई-भाई हुए, उसी दिन उनके संगठन गए। उनके संगठन का प्राण इसमें है कि वे दुश्मन हैं एक-दूसरे के, तो ही वे जिंदा रह सकते हैं, नहीं तो जिंदा नहीं रह सकते। इसलिए लाख कहो अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम, कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। अल्लाह अलग हो नाम, राम अलग हो, तो ही खड़े हो सकते हैं ये दोनों। क्योंकि इन दोनों के खड़े होने की सारी ताकत और बल हिंसा से आता है, घृणा से आता है, विरोध से आता है। अगर ये दोनों एक ही हैं तो मामला खत्म हो गया। फिर इनका सारा बल समाप्त हो जाएगा, सारी ताकत चली जाएगी।
तो यह जिन लोगों ने धर्म को जन्म दिया है वे और हैं और जिन लोगों ने धर्म संगठित किए हैं ये बिल्कुल और हैं। न केवल और बल्कि उनके शत्रु हैं जिन्होंने धर्म को जन्म दिया। और हर धर्म को जन्म देने वाले के आस-पास उसके शत्रु मित्र की शक्ल में इकट्ठे हो जाते हैं और धीरे-धीरे उस ज्योति को बुझा डालते हैं और राख कर देते हैं।
एक बहुत अदभुत कहानी है। क्राइस्ट ने अपने मरने के कोई अठारह सौ साल बाद सोचा कि अठारह सौ साल पहले मैं जेरुसलम में आया, तो मुझे मानने वाला, मेरी बात को स्वीकार करने वाला कोई भी न था। मैं अकेला उतरा था। तो जो मंदिरों के पुरोहित थे, चलते हुए मंदिरों के, वे मेरे दुश्मन हो गए, उन्होंने मुझे फांसी पर लटका दिया। लेकिन अब तो सारी जमीन पर मेरा संगठन सबसे बड़ा है। एक अरब लोग ईसाई हैं। लाखों लोग मेरे भिक्षु, मेरे पादरी और पुरोहित हैं। केवल कैथलिक पादरियों की संख्या बारह लाख है। आज तो सारी दुनिया में मेरा सबसे बड़ा संगठन है। मुझे मानने और पूजने वाले लोग सर्वाधिक हैं। तो मैं चलूं और एक बार देखूं कि अब मेरा दुनिया में स्वागत कैसा होता है!
तो क्राइस्ट अठारह सौ साल बाद जेरुसलम में वापस उतरे। जेरुसलम में क्राइस्ट का जलसा मनाया जा रहा था। क्रिसमस के दिन थे। लाखों लोग सारी दुनिया से यात्रा को आए हुए थे। सड़कें सजी थीं और चर्च उत्सव का केंद्र बना हुआ था। क्राइस्ट बीच बाजार में उतर कर एक झाड़ के नीचे खड़े हो गए। जिन

लोगों ने भी देखा वे चौंके और सोचा, यह कौन आदमी अभिनय कर रहा है क्राइस्ट का? भीड़ वहां इकट्ठी हो गई और लोग मजाक करने लगे कि गजब का काम किया है आपने, बिल्कुल क्राइस्ट मालूम पड़े रहे हैं।
क्राइस्ट ने कहाः मालूम नहीं पड़ रहा हूं, मैं क्राइस्ट हूं!
तो लोग हंसने लगे और कहा कि एक पागल और पैदा हुआ।
क्राइस्ट ने कहाः मैं पागल नहीं हूं। तुम तो वही भाषा बोलते हो जो अठारह सौ साल पहले उन लोगों ने बोली थी जब मैं जेरुसलम आया था। वे भी मुझसे बोले थे, यह आदमी पागल है। और तुम तो मुझे मानते हो, तुम भी मुझे नहीं पहचानते?
वे लोग हंसने लगे, उन्होंने कहाः हम भलीभांति पहचान गए। ऐसा पागलपन
कई लोगों के दिमाग में चढ़ जाता है कि मैं क्राइस्ट हूं, मैं फलां हूं। आप कृपा करके जल्दी भाग जाइए। कहीं अगर बड़े पादरी को पता चल गया तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे।
क्राइस्ट ने कहाः लेकिन वह पादरी तो मेरा है। और मेरा क्रॉस कंधे पर लटकाए हुए है।
और तभी भीड़ ने खबर कर दी और बड़ा पादरी चर्च के बाहर आया। भीड़ उसको नमस्कार करके दूर हट गई। क्राइस्ट बहुत हैरान हुए--मुझे कोई भी नमस्कार नहीं कर रहा है, मैं क्राइस्ट हूं! और मेरा यह आदमी जो मेरा नाम लेकर धंधा किए हुए है पूरा का पूरा, इसको लोग रास्ता छोड़ दिए, पैर में झुक गए! पर क्राइस्ट ने मन में सोचा कि और कोई पहचाने न पहचाने, मेरा यह पादरी तो मुझे पहचान ही लेगा।
पादरी करीब आया और उसने कहाः उतर बदमाश! नीचे उतर! यह क्या कर रहा है? क्राइस्ट एक दफे हुआ, अब दुबारा नहीं हो सकता। नीचे उतरो!
तो क्राइस्ट तो बहुत घबड़ा गए कि यह तो वही भाषा बोल रहा है जो दो हजार साल पहले, अठारह सौ साल पहले दूसरों के पादरियों ने बोली थी। वे तो अपने न थे तो ठीक भी था उनका बोलना, लेकिन यह तो अपना आदमी है।
क्राइस्ट ने कहाः तुम मुझे पहचाने नहीं?
उसने एक हाथ का झटका दिया और उसने कहाः मैं भलीभांति पहचानता हूं। नीचे उतरो!
क्राइस्ट तो घबड़ा कर नीचे उतर आए। उसने चार आदमियों से कहाः पकड़ो इसको और कोठरी में बंद करो!
यही तो पहले भी हुआ था। क्राइस्ट बहुत हैरान हुए। यह अपना आदमी!
वे कोठरी में बंद कर दिए गए। रात आधी गए वह पादरी दरवाजा खोल कर कोठरी में गया, उनके पैरों पर गिर पड़ा और कहाः मैंने पहचान लिया था कि आप ईशु मसीह, हमारे महाप्रभु क्राइस्ट हो। लेकिन क्षमा करो, बीच बाजार में तुम्हारे आने की दुबारा कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि तुम हमेशा के उपद्रवी हो। जब भी आओगे, हमारा सब धंधा खराब कर दोगे। तो हम एकांत में तुम्हें पहचान सकते हैं, लेकिन भीड़ में नहीं पहचान सकते। और जिन यहूदी पादरियों ने तुम्हें फांसी दी थी, अगर तुमने उनसे कहा होता, अकेले में वे भी पहचान लेते, वे भी नासमझ नहीं थे। और अगर तुमने ऐसा बीच बाजार में आने की कोशिश की, यद्यपि हमें बहुत दुख होगा, लेकिन हमें फिर फांसी देनी होगी। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। तुम जैसे लोग हमेशा के उपद्रवी हो, तुम हमेशा के रिबेलियस हो। तुम जो कुछ भी कहोगे उससे बनी हुई सब व्यवस्था गड़बड़ हो जाती है, सब टूट-फूट हो जाता है। तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है अब। सब काम बिल्कुल ठीक चल रहा है। हम अठारह सौ साल में बड़ी मुश्किल से क्रिश्चिएनिटी को ईजाद कर पाए हैं। सब बिल्कुल ठीक चल रहा है। आप कृपा करो, परम पिता के साथ विश्राम करो स्वर्ग में। आपकी जमीन पर आने की कोई जरूरत नहीं है। हम सब ठीक से सम्हाले हुए हैं। तो हम आपको अकेले में पहचान सकते हैं, लेकिन भीड़-भाड़ में नहीं। मुर्दा हालत में पहचान सकते हैं, लेकिन जिंदा हालत में नहीं। आपकी मूर्ति की पूजा कर सकते हैं, लेकिन आपकी नहीं। आप कृपा करो, आप जाओ।
क्राइस्ट ने कहाः मैं तो बहुत हैरान हूं। मैं तो सोचता था कि तुम सब मेरे लोग हो, लेकिन मैं तो पाता हूं सारी व्यवस्था वही की वही है।

जिन लोगों ने क्राइस्ट को सूली दी थी, उन्हीं तरह के लोगों ने क्राइस्ट की क्रिश्चिएनिटी भी खड़ी कर ली है। वह वही टाइप है आदमी का। उस आदमी में कोई फर्क नहीं है। जिन्होंने क्राइस्ट को सूली दी थी, उसी तरह के लोगों ने क्रिश्चिएनिटी भी ईजाद कर ली है। वे वही लोग हैं, उनमें कोई फर्क नहीं है। जिन लोगों ने महावीर के कान में कीले ठोंके होंगे, वे ही महावीर के भक्त हैं, उन्होंने महावीर का धर्म भी खड़ा कर लिया है। वे वही लोग हैं, उनमें कोई फर्क नहीं है। सिर्फ इससे भ्रम में पड़ जाने की जरूरत नहीं है कि वे महावीर की पूजा करते हैं इसलिए महावीर के मित्र हैं। महावीर के मित्र होना बड़ी क्रांति से गुजरना है और महावीर की पूजा करना कोई क्रांति नहीं है। महावीर का मित्र होना अत्यंत कठिन बात है, क्योंकि उसके लिए पूरा हृदय क्रांति से गुजर जाना चाहिए। हां, महावीर की पूजा करना बिल्कुल आसान बात है। एकदम आसान है। क्योंकि पूजा से झूठी और क्या बात हो सकती है? कुछ भी तो नहीं करना पड़ता है पूजा में। कुछ भी नहीं करना होता है। मंदिर बना लेना बहुत आसान है, धार्मिक होना बहुत कठिन है। क्योंकि धार्मिक होने में एक आग से गुजरना पड़ेगा, पूरी जिंदगी बदल लेनी होगी। और मंदिर बनाने में कौन सी कठिनाई है? कौन सी अड़चन है?
तो इस भ्रम में कोई न रहे। जिन लोगों ने धर्म को अनुभव किया है, उन लोगों ने सिद्धांत नहीं दिए हैं, उन्होंने शब्द नहीं दिए हैं। उन्होंने तो क्रांति के इशारे किए हैं। क्रांति की दिशा में अपने जीवन को ज्योति की तरह सामने रखा। लोगों के भीतर प्यास पैदा की, सिद्धांत नहीं दिए। आग पैदा की। लोगों के भीतर जो सोई हुई प्यास है, वह जग सके, इसकी कोशिश की। और उस तरफ इशारे किए कि कौन सी बाधाएं हैं जो अलग हो जाएं तो आदमी धार्मिक जीवन को उपलब्ध हो सकता है।
सिद्धांतवादिता, ये जो थिअरीटीशिएंस हैं, ये बहुत और तरह के लोग हैं।
ये शब्दों को गूंथने और जाल में बुनने वाले लोग हैं। ये जो फिलासफी खड़ी करने वाले लोग हैं, ये सब जाल, शब्द बुनने वाले लोग हैं। इनका धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन ये इकट्ठे हो जाते हैं हमेशा वहां जहां कोई धार्मिक ज्योति पैदा होती है। और इकट्ठे होकर हत्या कर देते हैं उस धार्मिक ज्योति की। पर हजारों साल का संबंध है इनका, हजारों साल का संबंध है इनका। और धीरे-धीरे हम यह भूल गए हैं कि ये दोनों कोटियां बिल्कुल अलग हैं। और शत्रु हैं आपस में और मित्र नहीं। इसलिए आपको ऐसा ख्याल पैदा होता है।
अगर महावीर और बुद्ध का वश चले तो कोई संगठन कभी खड़ा न हो। न होना चाहिए। क्योंकि संगठन से कोई धर्म का संबंध ही नहीं है। धर्म का संबंध है साधना से। संगठन का संबंध होगा राजनीति से। धर्म से क्या संबंध हो सकता है संगठन का? धर्म का संबंध तो साधना से है, और साधना है एकांत में, अकेले में भीतर जाना। और संगठन है बाहर और दूसरों के साथ होना। संगठन हमेशा भीड़ का साथ है और साधना हमेशा अपना। ये दोनों बातें बिल्कुल उलटी हैं। संगठन का मतलब है भीड़ के साथ और साधना का मतलब है अपने साथ। और जिसे अपने साथ होना है उसे बहुत से मामलों में दूसरों के साथ से मुक्त होना पड़ता है। दूसरों का साथ एक गहरे अर्थ में बंधन है। संगठन लेकिन दूसरों का साथ है, और साधना अपना साथ है।
एक फकीर था जर्मनी में, इकहार्ट। एक पहाड़ी के पास एक जंगल में अकेला
एक वृक्ष के नीचे बैठा था। उसके गांव के कुछ मित्र पिकनिक को आए होंगे। उन्होंने इकहार्ट को देखा तो सोचा कि अकेले बैठे ऊब गया होगा, चलें, इसे थोड़ा साथ दें, इसे कंपनी दें। वे गए और उन्होंने इकहार्ट को हिलाया--वह आंख बंद किए बैठा था--और कहा कि मित्र, हमने सोचा कि तुम अकेले बैठे हो, चलो तुम्हें साथ दें।
इकहार्ट हंसने लगा और उसने कहाः तुम्हारी बड़ी कृपा होगी कि तुम अपने रास्ते पर जाओ। जितनी देर मैं अकेला था, अपने साथ था। और तुमने आकर मेरा खुद से साथ तुड़वा दिया। तुम जाओ, तुम अपने रास्ते पर जाओ। और यह मत सोचो कि मैं अकेला हूं। मैं अपने साथ हूं। और जो आदमी अपने साथ है वह तो परमात्मा के साथ है, वह अकेला कहां है!

वे मित्र शायद ही समझे होंगे कि उसने क्या कहा। धार्मिक आदमी वह नहीं
है जो आपके साथ है। धार्मिक आदमी वह है जो अपने साथ है। अपने साथ होकर वह परमात्मा के साथ हो जाता है। एक बहुत गहरे अर्थों में वह आपके साथ भी हो जाता है। लेकिन वह बड़ा आत्मिक अर्थ है। वह संगठन नहीं है, वह सम्मिलन है। संगठन में हम अलग-अलग होते हैं और किसी घृणा के सूत्र से बंधे होते हैं। जो आदमी अपने साथ होता है वह आपके साथ हो जाता है सम्मिलन के अर्थ में। क्योंकि वह पाता है, आपकी आत्मा और उसकी आत्मा अलग नहीं है। तब संगठन का कोई सवाल नहीं है। संगठन तो जहां अलग-अलग हम हैं वहां होता है। वह तो पाता है, एक ही हैं हम भीतर कहीं। वह सम्मिलन है।
धार्मिक आदमी सर्वसत्ता से सम्मिलन को उपलब्ध होता है। अधार्मिक आदमी घृणा के कारण संगठन को उपलब्ध होता है। संगठन धर्म नहीं है। ऑर्गनाइजेशन धर्म नहीं है। और संगठन खड़े करने के सूत्र अलग हैं। सूत्र ही अलग हैं।
पहला सूत्र तो यह है कि घृणा पैदा करो, शत्रु पैदा करो, खतरा पैदा करो, घबड़ाहट पैदा करो, फियर पैदा करो लोगों में, तो वे संगठित होंगे, नहीं तो वे संगठित नहीं होंगे। और धार्मिक होने का सूत्र यह हैः अभय पैदा करो, भय खत्म करो लोगों का। क्योंकि जो भयभीत है वह कभी धार्मिक नहीं हो सकता। अभय! घृणा खत्म करो, प्रेम पैदा करो। क्योंकि जो घृणा से भरा है वह धार्मिक कैसे हो सकता है? शत्रुता मिटाओ, उसके मन से वैर समाप्त करो, तब वह धार्मिक हो सकता है।
धार्मिक होने के लिए जरूरी हैः घृणा न हो, शत्रुता न हो, भय न हो। और संगठन के लिए जरूरी हैः भय हो, घृणा हो, शत्रुता हो। ये तो दोनों बुनियादी विरोधी बातें हैं। इसलिए जो संगठक है, ऑर्गनाइजेशन करने वाला है, वह कभी धार्मिक नहीं होता। धार्मिक होना तो बात ही अलग है। और ही दुनिया की बात है।
और ये सारी किताबें और शास्त्र खड़े होते हैं, यह कोई इस भूल में न रहे
कि ये सब, जिन लोगों के जीवन में धर्म की ज्योति पैदा होती है, उनसे ये पैदा होते हैं। जरूर उनसे वाणी पैदा होती है, जरूर उनसे वाणी निकलती है, जरूर उनका प्रेम शब्दों में प्रकट होना शुरू होता है, जरूर उन्होंने जो जाना है उनकी करुणा कहती है कि उसे कह दें, इस बात को जानते हुए भी कि कहना बहुत कठिन है। लेकिन उनकी करुणा नहीं मानती। उनका हृदय नहीं मानता। और वे सोचते हैं कि शायद कोई इंगित, कोई इशारा, शायद किसी हृदय तक कोई धक्का पहुंच जाए। तो वे पूरी कोशिश करते हैं इस बात की। लेकिन उनको इस बात का पूरा अनुभव होता है कि वे जो कह रहे हैं उसमें और वे जो जान रहे हैं, दोनों में बहुत बुनियादी फर्क है। वे इस बात को भलीभांति जानते हैं। इसलिए वे निरंतर कहते हैं कि शब्दों को मत पकड़ लेना। हमारा जो इशारा है, उसे समझना। जापान में बुद्ध का एक मंदिर है। उस मंदिर में बुद्ध की कोई प्रतिमा नहीं है, बल्कि बुद्ध के हाथ का एक चित्र बना हुआ है, एक मूर्ति बनी हुई है सिर्फ हाथ की अंगुली की। और ऊपर कोने में एक चांद बना हुआ है। और बुद्ध की एक बहुत पुरानी घटना पर वह आधारित है। बुद्ध ने एक बार कहा था, एक गांव में मैं गया। मैंने अपनी अंगुली उठा कर गांव के लोगों को बताया कि देखो, वह चांद! लेकिन बहुत कम लोगों ने चांद की तरफ देखा, अधिक लोग मेरी अंगुली की तरफ देखने लगे। और तब से मुझे निरंतर यह अनुभव होता है कि जब भी कोई बताता है भगवान की तरफ, भगवान की तरफ तो कोई नहीं देखता, बताने वाली अंगुली को पकड़ लेता है। अंगुली में क्या रखा हुआ है, चाहे वह बुद्ध की हो, चाहे किसी की हो! उसमें कुछ भी नहीं है। तो बुद्ध ने कहाः इशारों को पकड़ लेते हैं लोग, शब्दों को पकड़ लेते हैं, अंगुलियों को पकड़ लेते हैं और उनकी पूजा शुरू कर देते हैं। और जिस तरफ इशारा किया था, उस तरफ देखते भी नहीं।
शास्त्र अंगुलियों को पकड़ने से पैदा होते हैं। इसलिए जो शास्त्र को बनाने वाला, निर्मित करने वाला, शास्त्र का आग्रही है, वह यह हिम्मत नहीं कर सकता कहने की कि शास्त्र में सत्य नहीं है। वह तो कहेगा, यही है सत्य। और अगर कोई कहता हो कि नहीं है, तो आ जाए और गर्दन कटवाने के लिए तैयार हो जाए। लेकिन जो लोग सत्य को जानते हैं, वे ऐसा आग्रह नहीं करते कि यही है सत्य। वे कहते हैं, इशारा है एक, और बहुत कमजोर इशारा है, बहुत धीमी झलक है

उसमें। क्योंकि सत्य है बहुत बड़ा, शब्द है बहुत छोटा, उसमें समाता नहीं है, उसमें बंधता नहीं है। लेकिन आदमी की मजबूरी है, कमजोरी है, उसके पास कहने का और कोई उपाय नहीं है। इसलिए शब्दों का उपयोग करता है। शब्द बहुत धीमी सी ध्वनि ले जाते हैं। वह आप तक पहुंचते-पहुंचते समाप्त हो जाती है। इसलिए शब्द में तो कोई सत्य नहीं है। जो सत्य को जानता है वह निरंतर सचेत करेगा। जरथुस्त्र हुआ। जरथुस्त्र जिस दिन विदा होने लगा अपने मित्रों से, तो उसके मित्रों ने पूछा कि हमें कुछ और अंतिम संदेश?
जरथुस्त्र ने कहाः एक अंतिम संदेश मुझे देना है। वह मैंने आखिरी दिन
के लिए बचा रखा है, वह मैं आज तुम्हें दूंगा। वह उठ खड़ा हुआ जाने के लिए पहाड़ पर। वह अपने मित्रों से विदा ले रहा था हमेशा के लिए। फिर उस पहाड़ से वह कभी वापस नहीं लौटेगा। वहीं उसकी चिर-समाधि बनेगी। उसे जो कहना था, उसने कह दिया। उसे जो समझाना था, उसने समझा दिया। उसके प्राणों में जो ज्योति जगी थी, वह उसने बांट दी। अब वह जाने को है, उसकी अंतिम घड़ी आ गई। उसके सैकड़ों, हजारों मित्र रो रहे हैं। और जरथुस्त्र ने कहाः अंतिम मेरी बात सुन लो और मैं जाऊं। आंसू पोंछ लो, क्योंकि आंसुओं से भरी हुई आंखें सुन न सकेंगी। दुख छोड़ दो, क्योंकि दुख से भरा हुआ मन समझ न पाएगा। और जो मैं कह रहा हूं वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जो मैंने आज तक तुमसे कहा था। दो छोटे से शब्द उसने कहे, बड़े अदभुत। उसने कहाः बिवेयर ऑफ जरथुस्त्र! जरथुस्त्र से सावधान रहना!
वे कुछ भी न समझे कि यह क्या कह रहा है। उन्होंने कहाः हम समझे नहीं।
तो जरथुस्त्र ने कहाः मैंने जो कुछ कहा उसको पकड़ मत लेना। मुझे मत पकड़ लेना, मेरी पूजा मत करने लगना। अब मैं जाता हूं, मुझसे सावधान रहना। नहीं तो मैं ही तुम्हारा शत्रु हो जाऊंगा और मित्र न हो पाऊंगा।
इस आदमी ने जाना होगा कुछ। कितना प्यारा और अदभुत आदमी रहा होगा, जिसने कहाः मुझसे सावधान! मुझे पूजने मत लगना! नहीं तो मैं ही तुम्हारे हाथ में रह जाऊंगा और मैंने जो चाहा था उस तक तुम्हारी आंखें न उठ पाएंगी। तुम मुझे छोड़ देना, मुझे भूल जाना, ताकि उस तरफ तुम्हारी आंखें उठ सकें जिसके लिए मैं एक इशारे से ज्यादा नहीं था। और जब वह तुम्हें दिख जाएगा, तो मेरी क्या जरूरत रह जाएगी! मैं समाप्त हो गया, मुझे भूल जाना।
लेकिन हो गई है बात उलटी। होना था महावीर से सावधान, होना था कृष्ण से सावधान, होना था बुद्ध से सावधान। लेकिन नहीं, उनकी हम पूजा कर रहे हैं। वही हमारे हाथ में पकड़ गए हैं और जिस तरफ उनका इशारा था वह खो गया।
तो जिसने कभी सत्य को जाना है, उसने कभी पूजा नहीं चाही है। उसने कभी आग्रह नहीं किया कि वह जो कहता है वही सत्य है। लेकिन जिन्होंने संगठन खड़े किए हैं, वे कहते हैं, यही सत्य है। और यह वे न कहेंगे तो संगठन खड़ा नहीं हो सकता। अगर वे यह कहें कि हां, दूसरों के पास भी सत्य है, तो संगठन के प्राण निकल जाएंगे। तो उनका तो दावा यही होगा, जैसे सभी दुकानदारों का होता है कि असली चीजें यहीं मिलती हैं और नकली चीजें दूसरी जगह मिलती हैं। असली चीजों की दुकान यही है। यह तो हर दुकानदार कहेगा। वही हर धर्म के ठेकेदार कह रहे हैं। तो वे मेरे लिए दुकानदारों से ज्यादा नहीं हैं। और सत्य की कोई दुकान नहीं होती। धर्म की दुकानें हैं, तो ये धर्म जरूर असत्य होंगे। सत्य फिर कोई और ही धर्म होगा, जिसकी न कोई दुकान है, न कोई संगठन है। इसलिए मैंने जो यह कहा, इस तरफ सोचने की कोशिश करनी जरूरी है। क्या होता रहा है मनुष्य के जीवन में? बातें उठी हैं, जिन्होंने जाना है उन्होंने कुछ कहा है। जिन्होंने जाना है वे एक ढंग से जीए हैं। लेकिन हमारे लिए उनसे इशारे तो नहीं मिले, हमारे लिए उनसे जड़ पूजा के आधार मिल गए। हमारे भीतर उनके कारण विवेक तो नहीं जाग्रत हुआ, बल्कि हमारे भीतर श्रद्धा और पत्थर की भांति अडिग हो गई। अगर विवेक जग जाए इस शब्दों की चोट से तब तो ठीक, लेकिन अगर श्रद्धा मजबूत हो जाए तो बहुत गलत। क्योंकि श्रद्धा अंधी है और विवेक आंख है। श्रद्धा से संगठन खड़े हो जाते हैं, विवेक से संगठन खड़ा नहीं होता। विवेक से व्यक्ति निर्मित होता है। और व्यक्ति की ऊर्जा और गरिमा है धर्म। व्यक्ति के भीतर छिपे हुए बीजों का फूल बन जाना है धर्म।

दुनिया प्रतीक्षा कर रही है अभी पांच हजार वर्षों से उस धर्म की जो संगठन न बने। क्योंकि जो-जो धर्म संगठन बन गए वे अधार्मिक हो गए और उन्होंने दुनिया में धर्म को नहीं बढ़ाया, अधर्म को बढ़ाया। अब एक ऐसी प्रतीक्षा है जगत को उस धर्म की जो संगठन न हो। उस धर्म की जो व्यक्तिगत गरिमा और ज्योति हो। समूह, भीड़, ऑर्गनाइजेशन नहीं। जिसके पंडे-पुरोहित और पादरी न हों। जिसे प्रेम करने वाले लोग हों, लेकिन जिसकी कोई दुकान न हो। आ रहा है वक्त करीब। क्योंकि संगठन वाले धर्मों से हम ऊब चुके हैं। संगठन वाले धर्मों से हम परेशान हो चुके हैं। आ रहा है वक्त कि व्यक्तिगत चेतना जगे और दुनिया में धर्म तो हो, लेकिन धर्मों के लिए कोई जगह न रह जाए। धर्मों के लिए कोई जगह नहीं रह जानी चाहिए, तो ही धर्म के लिए जगह बन सकती है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई और जैन को विदा हो जाना चाहिए। चले जाना चाहिए, हट जाना चाहिए, ताकि जो शेष रह जाए विशेषण से शून्य, बिना नाम का, सत्य की खोज और जिज्ञासा का आंदोलन--वह है सबके भीतर--वह बिना नाम का शेष रह जाए तो न मालूम कितने लोगों के जीवन में क्रांति हो सकती है। संगठन और संप्रदाय उस क्रांति को रोक रहे हैं।
यह जो मैंने सुबह आपको कहा वह इसी दृष्टि से कहा। इन सभी शब्दों, सिद्धांतों और विचारों से मुक्त होने की समझ आपके भीतर कुछ पैदा कर देगी जो आपका होगा।

मुझसे उसी प्रश्न में दूसरा प्रश्न पूछा हुआ है कि मैं भी जो बोल रहा हूं वह भी मैंने सुना होगा, पढ़ा होगा। वह कहां से आया? और अगर मैं यह बोल रहा हूं तो मैं दूसरों को क्यों रोकता हूं कि आप न पढ़ें, न सुनें?

मैंने कब रोका? अगर मैं रोकता होता तो मैं आपके सामने बोलता कैसे? मैंने कब कहा कि न पढ़ें, न सुनें? मैंने यह कहा, जो भी पढ़ें और जो भी सुनें, उसे ज्ञान न समझ लें। पढ़ें, सुनें, समझें, लेकिन जानते रहें निरंतर कि जो भी बाहर से आया है वह ज्ञान नहीं है। तो फिर यह बाहर से आया हुआ आपके लिए बंधन नहीं बनेगा। फिर यह आपके प्राणों पर दीवाल नहीं बनेगा। आप इसके होते हुए भी मुक्त अनुभव करोगे। बंधन तो वहां से शुरू होता है जब हम इसे ज्ञान समझ लेते हैं। तब कठिनाई शुरू हो जाती है। नहीं तो इसका कोई बंधन नहीं है। अगर यह स्मरण में हो कि जो भी बाहर से आता है वह ज्ञान नहीं है, तो फिर इस बाहर से आए हुए का कोई बंधन पैदा नहीं होता। बंधन पैदा होता है इसको ज्ञान समझ लेने से।
तो मैंने यह नहीं कहा कि आप कान बंद कर लें और आंखें फोड़ लें, न देखें
और न सुनें, मैंने यह नहीं कहा। मैंने तो यह कहा है कि जो भी आप सुनते हैं, सीखते हैं, इतना स्मरण रखें कि वह सीखा हुआ धर्म नहीं हो सकता, सत्य नहीं हो सकता। बस इतना स्मरण रहे तो उस सीखे हुए की भूल में कभी आप नहीं पड़ेंगे। और आपके भीतर वह खोज जारी रहेगी उसकी जो अनसीखा हुआ आता है। जो कभी सीखना नहीं पड़ता। वह खोज बंद न हो, इतनी बात है। निश्चित ही, बाहर के जीवन में बहुत कुछ सीख लेने को है, बाहर के जीवन में बहुत कुछ सीख लेने को है। लेकिन जो सीखा जाता है वह आत्मा नहीं है, परमात्मा नहीं है। जो सीखा जाता है वह संसार के संबंध में है। जो सीखा जाता है वह संसार के उपयोग के लिए है। भाषा बाहर से सीखी जाती है। असल में भाषा बाहर के उपयोग के लिए है। भीतर भाषा का क्या उपयोग है? जब आप अकेले हैं तो भाषा का क्या उपयोग है? जब आप किसी के साथ हैं तो भाषा का उपयोग है। इसलिए भाषा बाहर की है और बाहर के उपयोग के लिए है। मैं भी जो बोल रहा हूं वह सब बाहर से सीखा हुआ है, वह सब भाषा है, सब शब्द हैं। लेकिन जब मैं अकेला हूं, अगर उस वक्त भी वह भाषा मेरे भीतर चलती रहे तो मैं पागल हूं। क्योंकि अकेले में भाषा का क्या उपयोग है? लेकिन आप जब अकेले बैठते होंगे तब भी भाषा चल रही है। तब आप किससे बातें कर रहे हैं? तब तो वहां कोई नहीं है, आप अकेले हैं। तो यह मस्तिष्क रुग्ण है जो एकांत में भी बोले चला जा रहा है। हां, जब किसी से बोलना है तो भाषा का उपयोग है। लेकिन जब किसी से नहीं बोलना है तब? तब मौन और शांति का उपयोग है।

जो आदमी अकेले में मौन होने में समर्थ है, मैं कहता हूं, वही हकदार है दूसरों के सामने बोलने के लिए, नहीं तो हकदार नहीं है। क्योंकि जो अकेले में बोलने में विक्षिप्त है, अकेले में मौन नहीं हो सकता और बोले चला जाता है, सबके सामने भी उसका बोलना उसके एक पागलपन के सिवाय और कुछ भी नहीं है। बोलना उसकी मजबूरी है। वह बोले चला जा रहा है। वह बिना बोले नहीं रह सकता। लेकिन अगर अकेले में आप मौन होने में समर्थ हैं, साइलेंस में जाने में समर्थ हैं, तो आप हैरान हो जाएंगे, उस साइलेंस में, उस मौन में आपको ऐसे बहुत कुछ सत्यों का आविर्भाव होगा जो बाहर शब्दों से कभी नहीं मिले।
यद्यपि, उनको पाकर भी जब आप बोलने जाएंगे तो बाहर के शब्द काम देंगे, क्योंकि भाषा बाहर की है।
तो भाषा अभिव्यक्ति बन सकती है, लेकिन भाषा ज्ञान का जन्म नहीं है। भाषा से कभी किसी ज्ञान का जन्म नहीं होता। ज्ञान का जन्म तो होता है वहां जहां भाषा नहीं होती, जहां सब मौन होता है। लेकिन उस मौन में जो जाना जाए, उस मौन में जो प्रतीत हो, एहसास हो, वह जो एक्सपीरिएंस हो, उसके लिए भी अभिव्यक्ति भाषा बनती है। और भाषा इसीलिए कमजोर अभिव्यक्ति सिद्ध होती है, क्योंकि जिसे शून्य में जाना जाता है उसे शब्द में कहना बड़ा कठिन हो जाता है। वह वैसा ही है, जैसे एक आदमी संगीत सुने--संगीत सुने और हम उससे कहें कि एक चित्र बनाओ, तुमने जो सुना उसे चित्र पर बना दो। तो कितना कठिन मामला हो गया! जो सुना था वह कान से सुना था, और चित्र बनते हैं आंख से। सुनी थी ध्वनि और चित्र बनाने हैं रूप और आकार के।
लेकिन फिर भी कुछ रास्ते निकाले गए हैं कि जो कान से सुना गया उसे हम कागज पर भी उतार सकें। म्यूजिक की भी लैंग्वेज है। कोशिश की है आदमी ने कि जो कान से सुना है उसे हम कागज पर भी उतार सकें। उसके लिए भी संकेत निर्मित किए हैं। आदमी कमजोर है, लेकिन कोशिश करता है कम्युनिकेशन की, जो उसके भीतर घटित होता है, दूसरे तक पहुंचाना चाहता है। लेकिन वह पहुंचाने में जानता है भलीभांति कि जो मैंने जाना था उससे बहुत कम पहुंच रहा है, ना-कुछ पहुंच रहा है।
रवींद्रनाथ मरने को थे, कोई दो घड़ी बाद उनके प्राण निकल गए। दो घड़ी पहले उन्हें होश आया और उनके एक मित्र ने पूछा कि आप तो तृप्त होंगे! आपका जीवन तो फुलफिलमेंट को उपलब्ध हो गया! आपसे बड़ा कवि जमीन पर दूसरा नहीं हुआ।
यूरोप के महाकवि शैली ने केवल दो हजार गीत लिखे हैं, रवींद्रनाथ ने छह हजार गीत लिखे। और छह हजार ऐसे गीत लिखे जो सब संगीत में बांधे जा सकते हैं। इतना बड़ा गीतकार दुनिया में कोई दूसरा नहीं हुआ।
उनके मित्र ने कहाः आप तो तृप्त हैं। आपको तो मृत्यु दुख न देगी, क्योंकि जीवन आपका पा सका जो पा सकता था। आपकी सारी संभावनाएं पूरी हो गईं।
रवींद्रनाथ ने क्या कहा? रवींद्रनाथ की आंखों में आंसू आ गए और उन्होंने कहाः क्षमा करो, मेरा अपना अनुभव बिल्कुल दूसरा है। मेरा अपना अनुभव तो यह है कि हे परमात्मा, अभी तो मैं अपने साज-संगीत की केवल व्यवस्था कर पाया था, अभी गीत गाया कहां था? अभी तो गीत गाने की तैयारी भी पूरी नहीं हो पाई थी और मैं विदा होने लगा! अभी तो मैंने ठोंक-पीट कर साज-संगीत तैयार किया था, मेरे सामान तैयार हो गए थे, अब मैं गाता। लोग भूल में हैं कि मैंने गाया, क्योंकि जो मैंने जाना, अभी मैं उसे प्रकट नहीं कर पाया। कोशिशें मैंने की हैं, लेकिन सब अधूरी। प्रयत्न मैंने किए हैं, लेकिन सब विफल। मेरी कोशिश तो पूरी थी, लेकिन शब्द छोटे पड़ गए, जो मैंने जाना उससे। तो अभी तक मैं एक विफल आदमी हूं। वह मैं नहीं कह पाया हूं जो मेरे प्राणों में उठा है। जो सुगंध मेरे भीतर आई है वह मैं पहुंचा नहीं पाया हूं। अभी तो मैं साज बिठा पाया था। अब गीत गाने का वक्त था और विदा होने का समय आ गया!
जिसने जाना है उसे ऐसा अनुभव होगा। जिसने नहीं जाना वह कहेगाः गा दिए मैंने गीत जो गाने थे। कह दी मैंने बात जो कहनी थी। उसके पास कुछ था ही नहीं इसलिए शब्द काफी पड़ गए। जिसके पास कुछ होता है उसे शब्द बहुत ना-काफी होते हैं। वह उस तौल पर निर्भर करता है, कितना हमारे पास देने को है। पंडित

को लगता है कि शब्द बहुत काफी हैं, क्योंकि उसके पास कुछ देने को तो होता नहीं, शब्द ही शब्द होते हैं। वह तृप्त हो जाता है किताबें लिख कर, बोल कर। कह दी बात, शब्द ही थे उसके पास, उसने कह दिए।
लेकिन जिसके पास अनुभूति है वह जानता है कि शब्द कितने कमजोर माध्यम हैं। उनसे कुछ भी नहीं होता, कुछ भी नहीं कहा जा पाता है। उनकी पीड़ा को भी हम अनुभव नहीं कर सकते जिनके ऊपर अनुभूति की वर्षा होती है। उनके प्राण कितने संकट में पड़ जाते हैं, यह भी हम अनुभव नहीं कर सकते। क्योंकि जो वे जानते हैं वह फैलना चाहता है, प्रकट होना चाहता है, बंट जाना चाहता है। और जो साधन होते हैं वे एकदम कमजोर होते हैं। विराट शक्ति उनके पास आ गई होती है और संकरी गलियों में से उस शक्ति को उन्हें प्रवाहित करना होता है। गंगा उनके घर में उतर आती है और छोटी-छोटी नालियां होती हैं जिनसे उसे बाहर पहुंचाना पड़ता है। कैसी पीड़ा और कैसा हार्दिक आंदोलन और हार्दिक प्रसव का बोध उनको होता होगा! जैसे कोई मां को बच्चा तो पेट में आ जाए और फिर वह पैदा न हो सके। तो उस मां पर जो भार... वर्ष-वर्ष बीत जाएं और बच्चा गर्भ में बड़ा होता जाए और पैदा न हो सके। ठीक वैसा भार महावीर, बुद्ध, कृष्ण जैसे लोग अनुभव करते हैं। कुछ उनके भीतर जन्म जाता है जो प्रकट होने में कठिन है। तो उसे शब्द से तो नहीं कहा जा सकता। तो फिर कोई और रास्ता भी है?
रास्ता है। लेकिन शब्द सामूहिक रास्ता है। फिर एक रास्ता और है-- साइलेंस का, मौन का। जो लोग मौन होने में समर्थ हैं, उनसे मौन के द्वारा भी कुछ कहा जा सकता है। अगर यहां इतने सारे लोग बैठे हैं, ये सब मौन होने में समर्थ हो जाएं तो यहां बैठ कर बिना बोले भी कोई बात कही जा सकती है। लेकिन तब प्राणों से प्राणों का सीधा संवाद होता है, तब बीच में शब्द नहीं होते। वह भी संभव है, वह भी हुआ है, वह भी होता है। लेकिन उसका होना बोलने वाले पर निर्भर नहीं रह जाता, उसका होना सुनने वाले पर निर्भर हो जाता है। वह जितना मौन हो जाएगा, उतना।
मौन होना अगर संभव हो जाए तो साइलेंस की भी अपनी लैंग्वेज है, मौन की
भी अपनी भाषा है। मौन में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। ऐसे हम भी थोड़ा-बहुत सारे लोग अनुभव करते हैं। जब हम किसी के प्रति बहुत प्रेम से भर गए होते हैं तो शब्द असमर्थ हो जाते हैं, कुछ भी कहते नहीं बनता। तब हम उसका हाथ अपने हाथ में ले लेते हैं, तब हम उसे अपने गले से लगा लेते हैं, तब हमारी आंखें उससे कुछ कहती हैं जिनमें कोई शब्द नहीं होते। और शायद दूसरी तरफ भी प्रेम हो तो बात समझी जाती है। हाथ हाथ से कुछ कह देते हैं, आंख आंख से कुछ कह देती है, हृदय हृदय से कुछ कह देता है। शायद थोड़े-बहुत प्रेम में हम इस बात को जान पाते हैं कि बिना शब्दों के भी कुछ बात कही जा सकती है।
प्रेम से भी बड़ी घटना है प्रार्थना। जब और गहरी शांति उपलब्ध होती है
तो उस शांति में और गहरे सत्य भी पहुंचाए जा सकते हैं। लेकिन वह बात सुनने वाले की तरफ बहुत--उसकी रिसेप्टिविटी, उसकी ग्राहकता पर निर्भर करती है। और जब तक वैसी कोई बात नहीं है तब तक शब्द के सिवाय कोई चारा नहीं है। लेकिन एक बात स्मरण रखनी जरूरी है, शब्द में सत्य नहीं है। इशारा हो भी सकता है। और इशारा तभी हो सकता है जब आप शब्द को न पकड़ लें। शब्द को तो छोड़ दें और उस शब्द से जो इंगित किया गया हो, उस तरफ आंखें उठाएं।
अब जैसे मैंने सुबह आपसे कहा कि शास्त्रों में तो कुछ नहीं है, तो आपने इसी को पकड़ लिया और प्रश्न बना लिया कि शास्त्रों में कुछ नहीं है तो सब शास्त्र व्यर्थ हैं?
आप इशारा चूक गए और शब्द को पकड़ लिया। यह प्रश्न आपका शब्द को पकड़ने
की सूचना देता है। जो मैंने चाहा था वह आपकी समझ में नहीं आ सका। मैं आपसे कह रहा हूंः शास्त्र को छोड़ दें तो शास्त्र में बहुत कुछ है; शास्त्र को पकड़ लें तो शास्त्र में कुछ भी नहीं है।
एक आदमी ने एक नौकर अपने घर में रखा। दो-चार दिन उसका काम देख कर वह आदमी परेशान हो गया और उसने उस नौकर को कहाः यह नौकरी चलेगी नहीं। अजीब आदमी हो, तीन अंडे बाजार से खरीदने होते हैं तो तुम तीन दफे बाजार जाते हो! तीन अंडे एक ही बार में खरीदे जा सकते हैं। क्या बात है? एक अंडा खरीदने गए, फिर दूसरा अंडा खरीदने गए। तीन अंडे लाने के लिए तीन दफे बाजार जाना?

यह नौकरी चल नहीं सकती। या तो अपने में सुधार कर लो या कल से समाप्त समझो नौकरी को।
उस आदमी ने कहाः मेरे मालिक, मैंने सुधार कर लिया, और ऐसी भूल दुबारा नहीं होगी।
आठ दिन बाद उसका मालिक बीमार पड़ गया। उसने कहाः जाओ, डाक्टर को बुला लाओ।
वह डाक्टर को बुला कर लाया, साथ में एक भीड़ और बुला लाया, न मालूम कितने लोगों को बुला लाया।
उसके मालिक ने पूछाः आ गए?
उसने कहाः मैं डाक्टर को लिवा लाया और बाकी लोगों को भी लिवा लाया।
मालिक ने कहाः ये बाकी लोग और कौन हैं?
उसने कहाः डाक्टर कहेगा कि दवा चाहिए, तो मैं दवा वाले को भी लिवा लाया हूं। और हो सकता है दवा काम न करे तो कब्र खोदने वाले लोगों को भी बुला लाया हूं। क्योंकि आपने ही कहा था कि तीन अंडे खरीदने के लिए तीन बार बाजार जाना जरूरी नहीं है।
वह आदमी शब्द को ठीक से पकड़ लिया। हम सबने भी शब्द इसी भांति पकड़ लिए हैं। इसलिए जिंदगी एक अजीब मूर्खता से भर गई है।
तो मैं जो कह रहा हूं उसको अगर शब्दों को पकड़ कर प्रश्न उठाएंगे, तो चूक जाएंगे उस बात से जो मैं आपसे कह रहा हूं। थोड़ा शब्दों को हटा कर, मेरे जो इंगित हैं, उन पर थोड़ा विचार करें, उन पर कुछ पूछें तो शायद कुछ और गहरे यात्रा हो सके। नहीं तो यात्रा छिछली हो जाएगी। वह शब्दों के इर्द-गिर्द हो जाएगी। प्राणों के निकट नहीं पहुंच पाएगी। और आमतौर से हमको शब्द ही सुनाई पड़ते हैं, इसलिए उन्हीं को हम पकड़ लेते हैं और उन्हीं पर विचार करने लगते हैं। शब्द पर विचार करना व्यर्थ है। उस पर विचार करें जिसकी ओर शब्द इशारा था--क्या कहना चाहा था? क्यों कहना चाहा था? क्या कारण रहा होगा? क्यों यह बात कही होगी?
नहीं, लेकिन इतना हम कहां सोचते हैं! हम तो बात सुनते हैं और हम कहते हैं, यह गलत, या सही। और फिर तब हमारा सब उसी के इर्द-गिर्द खड़ा हो जाता है। सोचना-विचारना तो हमारे भीतर है ही नहीं। हम तो गलत और सही का निर्णय ले लेते हैं जल्दी से कि यह गलत होनी चाहिए। अगर यह गलत नहीं है तो फिर महावीर गलत हैं, बुद्ध गलत हैं, फिर गीता गलत है, कुरान गलत है। तो या तो ये गलत हैं या फिर गीता गलत है। मामला बहुत जल्दी-जल्दी तय कर लिया। बहुत जल्दी-जल्दी तय कर लिया।
यह जीवन बहुत मिस्टीरियस है, बहुत रहस्यपूर्ण है। जीवन में विरोधी बातें भी सत्य हो सकती हैं। जीवन गणित नहीं है। जीवन बड़ा रहस्यपूर्ण है। उसमें बिल्कुल विरोधी बातें भी सत्य हो सकती हैं, क्योंकि विरोधी बातों से भी एक ही सत्य की ओर इशारा किया जा सकता है। महावीर ने कहाः आत्मा ही सत्य है और आत्मा के सिवाय, आत्मा से ऊंचा, आत्मा से बड़ा कोई भी सत्य नहीं है। आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा परम ज्ञान है। और ठीक उन्हीं दिनों में बुद्ध ने उन्हीं गांवों में कहाः आत्मा सबसे बड़ा असत्य है, आत्मा से बड़ा कोई अज्ञान नहीं है। और जो आत्मा को मानता है वह परम अज्ञानी है। ये दोनों आदमी एक ही समय में बिहार में थे। क्या बड़ी मुश्किल बात हो गई!
महावीर कहते हैंः जो आत्मा को जानता है वही ज्ञानी है, जो मानता है वही ज्ञानी है। बुद्ध कहते हैंः जो आत्मा को मानता है वही अज्ञानी है, आत्मा ही अज्ञान है।
और मैं आपसे कहता हूं, ये दोनों लोग एक ही बात कह रहे हैं। लेकिन इनके शब्दों को जो पकड़ लेगा वह मुश्किल में पड़ जाएगा। ये बिल्कुल एक बात कह रहे हैं। यह इशारा एक ही तरफ है, इस इशारे में कोई भी फर्क नहीं है। और ये शब्द बिल्कुल शत्रु हैं, एक-दूसरे के बिल्कुल शत्रु हैं शब्द। और इन्हीं शब्दों के ऊपर जैन खड़े हैं और बौद्ध खड़े हैं। और आज भी शत्रुता कायम है, आज भी कायम है। आज भी जैन मन में जानता है कि ये बुद्ध जो हैं अज्ञानी हैं, क्योंकि ये कह रहे हैं कि आत्मा अज्ञान है; और आत्मा, महावीर ने कहा है, परम ज्ञान है। और आज भी बौद्ध जानता है कि जैनी जो हैं अज्ञानी हैं, क्योंकि हमारे भगवान ने जो कहा है उससे बिल्कुल उलटी बात है। एक ही ठीक हो सकता है।

नहीं, जीवन बड़ा रहस्यपूर्ण है। इसमें हजार इशारे हो सकते हैं एक ही तरफ, हजार अंगुलियां एक ही तरफ जा सकती हैं और अंगुलियां बिल्कुल विरोधी हो सकती हैं। किसी की काली अंगुली हो, किसी की सफेद अंगुली हो, किसी की टूटी-फूटी अंगुली हो, किसी की बहुत अंगुली सुंदर हो, किसी की बिल्कुल कुरूप अंगुली हो। और अंगुलियां न मालूम किन-किन रास्तों से सूचनाएं कर सकती हैं।...
एकाध प्रश्न है जो आप सोच नहीं रहे हैं? यह भी आपने सुन लिया है, उनको पूछ रहे हैं। ये आपकी चिंता से जन्मते नहीं हैं, इनका आपसे कोई व्यक्तिगत संबंध नहीं है। इनसे आपके प्राणों का कोई लगाव नहीं है। ये प्रश्न आपको मथ नहीं रहे हैं, ये आपको परेशान नहीं कर रहे हैं, ये हवा में आ गए हैं और पूछ लेते हैं कि ऐसा कैसा है। यह बहुत ऊपरी बात हो गई। प्रश्न को भी पूछना चाहिए प्राणों की गहराई से, वह प्रश्न सच्चा होता है। और सच्चा प्रश्न हो तो ही उत्तर आपके प्राणों को छुएगा, नहीं तो नहीं छुएगा। क्योंकि मेरा उत्तर थोड़े ही छू सकता है। आपका प्रश्न ही आपको न छूता हो तो मेरा उत्तर आपको कैसे छुएगा? आपका प्रश्न ही उधार हो तो मेरा उत्तर कितनी दूर तक जा सकता है?
तो ये तो हमारे सब रेडीमेड प्रश्न हो गए हैं--कि भाग्य बड़ा है कि पुरुषार्थ? यह कोई प्रश्न है? ये आपने कभी सोचे हैं? आपकी जिंदगी में कोई इनमें उठाव आया है? आपने खोजा है इन्हें? नहीं, बस सुन लिया है। हवा में चलते हैं। हवा में चलते हैं तो पूछ लिया। तो मेरी बात फिर आपके भीतर नहीं पहुंचेगी। हां, अगर यही प्रश्न आपके जीवन में उठ रहा हो, फिर कोई फिकर नहीं है। फिर यह प्रश्न पूछें जरूर और तब इसमें भीतर जाया जा सकता है। और हो सकता है वह भीतर जाने की कोशिश आपके भीतर कोई पत्थर तोड़ दे तो झरना फूट आए। लेकिन यह बहुत बड़ी मात्रा में मुझ पर नहीं, आप पर निर्भर है। यह मैं आपसे कह दूं कि यहां की चर्चा में मेरा एक ही प्रतिशत हाथ है, निन्यानबे प्रतिशत आपका हाथ है। वह अंततः आप उसके निर्णायक हैं कि वह क्या होगी और कितनी गहरी जा सकेगी। इसलिए बहुत सोच कर, बहुत विचार कर, देख कर--कि इसका मेरा कोई प्राणों से संबंध है? मैं तो हिंदुस्तान भर में इतने झूठे प्रश्न सुन-सुन कर हैरान हो गया हूं कि मुझे हैरानी होती है कि कोई सोचता है या नहीं सोचता है! या कि हमको प्रश्न छपवा कर बांट दिए गए हैं तो हम पूछ लेते होंगे।
ऐसा भी हुआ है, एक गांव में मैं गया तो वहां एक छपा हुआ प्रश्न एक आदमी
ने मेरे हाथ में दिया। तीन प्रश्न छपे हुए थे। छपे हुए थे तो मैं हैरान हुआ। मैंने उनसे पूछा, उन्होंने कहा कि ये मेरे प्रश्न हैं और सभी से मुझे यही पूछने होते हैं इसलिए मैंने छपवा कर रख लिए हैं। जो भी आता है उसको मुझे यही पूछना है तो बार-बार लिखना क्या! मैंने ये छपवा लिए हैं। तो मैं यह बांट देता हूं कि कृपा करके इनके उत्तर दीजिए।
अब ऐसे आदमी का प्रश्न ही नहीं बदला। मैंने कहाः कितने दिन हो गए?
बीस साल से यही पूछ रहा हूं।
इसने तो एक जड़ता पकड़ ली है, इसके प्रश्न ने एक जड़ता पकड़ ली है। मैंने उनसे कहाः अगर यह जिंदा प्रश्न होता आपके भीतर तो बीस साल में बिना पूछे भी इसमें फर्क आ जाता। जिंदा चीज बदलती है। बिना पूछे भी फर्क आ जाता, अगर यह जिंदा रहती। जिंदा चीज खड़ी नहीं रहती है एक जगह, डाइनैमिक होती है। अगर आपका प्रश्न भी जिंदा है तो वही नहीं हो सकता जो पिछले साल था। एक साल में उसमें बदलाहट आ जाएगी। हर चीज बदलती है, उसमें ग्रोथ होती है और उसमें फर्क होता है। लेकिन मैं पिछली बार भी आया था और पिछली बार भी आपने वही पूछा था और इस बार भी आप वही पूछते हैं। मैं पक्की तरह जानता हूं यह प्रश्न मुर्दा है। और मुर्दा प्रश्नों को पूछने वाला खुद भी धीरे-धीरे मुर्दा हो जाता है, वह मर जाता है। उसकी जिंदगी में कोई ग्रोथ नहीं होती है, कोई विकास नहीं होता।
जिंदगी एक विकास है प्रश्नों का, जिज्ञासा का, खोज का। किसी दूसरे का प्रश्न मत पूछें कि ऐसा लोग पूछते हैं तो हम भी पूछते हैं। आपको कोई चोट लग रही है, कोई घाव, पीड़ा अनुभव हो रही हो, तो पूछें। तो आपका घाव उस प्रश्न को

जीवन देगा, अर्थ देगा, अभिप्राय देगा। और फिर, फिर अगर कोई झलक उसकी खोज से मिली तो आपके घाव को बदल देगी, आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। इतना निवेदन है।
दोपहर की बैठक पूरी हुई।

अपने माहिं टटोल
चौथा प्रवचन

जीवन का लक्ष्य

मेरे प्रिय आत्मन्!
बहुत से प्रश्न मेरे सामने हैं। उनमें से थोड़े से प्रश्नों पर अभी बात करूंगा।

सबसे पहले, एक मित्र ने पूछा हैः जीवन का लक्ष्य क्या है?

यह प्रश्न तो बहुत सीधा-सादा मालूम पड़ता है, लेकिन शायद इससे जटिल और कोई प्रश्न नहीं है। और प्रश्न की जटिलता यह है कि इसका जो भी उत्तर होगा, वह गलत होगा। इस प्रश्न का जो भी उत्तर होगा, वह गलत होगा। ऐसा नहीं कि एक उत्तर गलत होगा और दूसरा सही हो जाएगा। इस प्रश्न के सभी उत्तर गलत होंगे। क्योंकि जीवन से बड़ी और कोई चीज नहीं है जो लक्ष्य हो सके। जीवन खुद अपना लक्ष्य है। जीवन से बड़ी और कोई बात नहीं है जिसके लिए जीवन साधन हो सके और जो साध्य हो सके। और सारी चीजों के तो साध्य और साधन के संबंध हो सकते हैं, जीवन का नहीं। जीवन से बड़ा और कुछ भी नहीं है। जीवन ही अपनी पूर्णता में परमात्मा है, जीवन ही। वह जो जीवंत ऊर्जा है हमारे भीतर, वह जो जीवन है पौधों में, पक्षियों में, आकाश में, तारों में, वह जो हम सबका जीवन है, वह सबका समग्रीभूत जीवन ही तो परमात्मा है।
यह पूछना कि जीवन का क्या लक्ष्य है, यही पूछना है कि परमात्मा का क्या लक्ष्य है। यह बात वैसी ही है जैसे कोई पूछेः प्रेम का क्या लक्ष्य है? जैसे कोई पूछेः आनंद का क्या लक्ष्य है? आनंद का क्या लक्ष्य होगा? प्रेम का क्या लक्ष्य होगा? जीवन का क्या लक्ष्य होगा?
संसार में दो तरह की चीजें हैं। एक, जो अपने आप में व्यर्थ होती हैं। उनकी सार्थकता इसमें होती है कि वे किसी सार्थक चीज तक पहुंचा दें। उन चीजों को साधन कहा जाता है। वे मीन्स होती हैं। एक बैलगाड़ी है, उसका अपने में क्या लक्ष्य है? कुछ भी नहीं। लेकिन उसमें बैठ कर कहीं पहुंच सकते हैं। तो अगर पहुंचना लक्ष्य में हो, तो बैलगाड़ी साधन बन सकती है। एक तलवार का अपने आप में क्या लक्ष्य है? लेकिन अगर लड़ना हो, लड़ना लक्ष्य हो, तो तलवार साधन बन सकती है।
तो जीवन में एक तो वे चीजें हैं, जो साधन हैं। और कुछ करना हो, तो उनके द्वारा किया जा सकता है। और अगर न करना हो, तो बिल्कुल बेकार हो जाती हैं। जीवन में ऐसी चीजें भी हैं, जो साधन नहीं हैं। वे स्वयं ही साध्य हैं। उनका मूल्य इसमें नहीं है कि वे कहीं आपको पहुंचा दें, उनका मूल्य खुद उनके भीतर है, खुद उनमें ही छिपा है।
प्रेम ऐसा ही अनुभव है। प्रेम अपने आप में ही अपनी उपलब्धि है। उसे पा लेने के पीछे कुछ और नहीं पा लेने को बचता। और वह किसी और चीज का साधन भी नहीं है। आनंद, आनंद भी अपने आप में अपना साध्य है। जीवन तो परम साध्य है स्वयं में, उसके पार और उससे ऊपर कुछ भी नहीं है जिसे पाने के लिए वह माध्यम बन सके।
इसलिए यह पूछना कि जीवन का लक्ष्य क्या है, एकदम ही ऐसा प्रश्न पूछना
है कि इसके जो भी उत्तर दिए जाएंगे, वे सभी गलत होंगे। लेकिन हम पूछते हैं। और पूछना हमारा सप्रयोजन है, अर्थपूर्ण है। हम इसलिए पूछते हैं, क्योंकि हमें जीवन का पता ही नहीं कि वह क्या है। अगर हमें यह पता होता कि जीवन क्या है, तो हम कभी न पूछते कि उसका लक्ष्य क्या है। जिसने कभी प्रेम नहीं किया, वह पूछ सकता है कि प्रेम का लक्ष्य क्या है। और जिसने कभी आनंद नहीं जाना, वह पूछ सकता है कि आनंद का लक्ष्य क्या है। लेकिन जिसने प्रेम को जाना है, उसके जानने में ही उसके लक्ष्य को भी पा लेगा और नहीं पूछेगा कि प्रेम का लक्ष्य क्या है।
इसलिए जब कोई यह पूछता है कि जीवन का क्या लक्ष्य है, तो मैं जानता हूं
कि वह इसलिए पूछ रहा है कि उसे जीवन का ही पता नहीं। अगर जीवन का पता हो, तो

कोई उसका लक्ष्य नहीं पूछेगा। जीवन खुद है अपना लक्ष्य। लेकिन चूंकि हमें जीवन का ही पता नहीं है कि जीवन क्या है, इसलिए हम पूछते हैं कि जीवन का लक्ष्य क्या है? और जिसे हम जीवन जानते हैं, वह बिल्कुल जीवन नहीं है। हम किसे जीवन जानते हैं? जन्म ले लेने से मृत्यु लेने तक का जो उपक्रम है, उसे हम जीवन समझते हैं। वह जीवन नहीं है, वह धीरे-धीरे मरने का नाम है। उसका जीवन से क्या संबंध?
बच्चा पैदा होने के बाद मरना शुरू हो जाता है। आप जिसको जन्म-दिन कहते हैं, वह मृत्यु की घड़ी है, शुरुआत है मृत्यु की। सत्तर वर्ष बाद वह मरेगा, सौ वर्ष बाद मरेगा, मरना आकस्मिक नहीं है कि अचानक आ जाता है, रोज-रोज हम मरते जाते हैं, धीमे-धीमे मरते जाते हैं। मरने की लंबी क्रिया है, लंबी प्रोसेस है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हम मरते हैं। रोज मरते जाते हैं, थोड़ा- थोड़ा मरते जाते हैं। इसी मरने की लंबी क्रिया को हम जीवन समझ लेते हैं। यह जो लंबी ग्रेजुअल डेथ है, यह जो धीमे-धीमे मरते जाना है रोज-रोज, इसी को हम समझ लेते हैं कि जीवन है। कल और आज में आप थोड़ा मर चुके हैं, नहीं तो आप बूढ़े नहीं हो सकते थे। कल आप और थोड़े मर जाएंगे। रोज हम मर रहे हैं। इस मरने को हम जीवन समझते हैं। तो प्रश्न खड़ा हो जाता है कि इस जीवन का लक्ष्य क्या है? जिसमें हम पैदा होते, जन्मते और मरते, और रोज-रोज वही रिपीटीशन, वही दोहराना, वही सुबह उठ आना, वही सांझ सो जाना, वही भोजन, वही कपड़े, वही झगड़े, वही संघर्ष, यही सब रोज-रोज, इसका अर्थ क्या है? इसका प्रयोजन क्या है? तो हम पूछते हैं कि जीवन का लक्ष्य क्या है?
मैं आपसे पहली बात तो यह निवेदन कर दूं कि यह जीवन ही नहीं है जिसको आप जीवन कह रहे हैं। और इसका आप कोई भी लक्ष्य बना लें, वह कोई भी लक्ष्य इसको जीवन न बना सकेगा। यह जीवन है ही नहीं, यह तो लंबी मरने की प्रक्रिया है। और इसीलिए तो, इसे हम जीवन कहते हैं, लेकिन न तो इसमें हम आनंद को जान पाते हैं, न हम शांति को जान पाते हैं, न हम प्रेम को जान पाते हैं, न हम प्रकाश को जान पाते हैं। कोई सौंदर्य का अनुभव जीवन में नहीं हो पाता। होगा कैसे? मरने की प्रक्रिया में होगा कैसे? मरने में होगा दुख, मरने में होगी पीड़ा, मरने में होगी चिंता, मरने में होगा अंधकार। रोज बढ़ता हुआ अंधकार जीवन को घेरता चला जाता है।
इसीलिए तो लोग कहते हैं कि बचपन के दिन बड़े सुख के दिन थे। कैसी अजीब बात है! अगर जीवन विकसित हो रहा है, तो बुढ़ापे के दिन सबसे ज्यादा सुख के दिन होने चाहिए। बचपन के दिन क्यों? बचपन तो थी शुरुआत, बुढ़ापा है पूर्णता, तो दिन होने चाहिए सुख के बुढ़ापे के। अगर जीवन बढ़ा है, तो आनंद बढ़ना चाहिए। लेकिन हम सारे लोग तो गीत गाते हैं बचपन के कि बड़े खुशी के दिन थे। और हमारे कवि कविताएं लिखते हैं कि बड़े सुख थे बचपन में, बड़ा आनंद था बालपन में। निश्चित ही यह इस बात का सबूत है कि बचपन के बाद हम जिस यात्रा पर चल रहे हैं, वह जीवन की यात्रा नहीं, मृत्यु की यात्रा है। इसलिए दुख बढ़ता जाता है, मृत्यु की छाया बढ़ती जाती है, पीड़ा बढ़ती जाती है। और बचपन के दिन सुखद मालूम होते हैं।
ठीक कोई आदमी जीएगा और जीवन को अनुभव करेगा, तो रोज-रोज उसका आनंद बढ़ता जाना चाहिए। विकास का अर्थ यही होगा। तो यह विकास होता है जीवन में या पतन? हम नीचे उतरते हैं या ऊपर जाते हैं? बचपन की सुखद स्मृति गलत जीवन का सबूत है। जीवन ठीक से नहीं जीया गया, जाना नहीं गया, पहचाना नहीं गया। लेकिन इसको हम मान लेते हैं कि यह जीवन है। यह जीवन नहीं है। यह जीवन हो भी नहीं सकता। जीवन की हमें गंध भी नहीं है। जीवन के स्वरों का हमें कोई बोध भी नहीं है कि कहां जीवन का संगीत छिपा है।
बुद्ध के पास एक बूढ़ा भिक्षु आया। बुद्ध ने उस भिक्षु को पूछाः तेरी उम्र क्या है?
उस भिक्षु ने कहाः चार वर्ष।
वह बूढ़ा था। बुद्ध और उनके आस-पास के भिक्षु हैरान हुए! सोचा बुद्ध ने
कि शायद मेरे समझने में हो गई है भूल। पूछा फिरः मेरे मित्र, तेरी उम्र क्या है?
उस बूढ़े ने कहाः मैंने निवेदन किया, चार वर्ष।

बुद्ध ने कहाः बड़ी हैरानी में डाल दिया तुमने। प्रतीत होते हो कि कोई सत्तर वर्ष तुम्हारी उम्र होगी और कहते हो चार वर्ष! किस हिसाब से गणना करते हो?
उस बूढ़े ने कहाः चार वर्ष के पहले जो था, वह जीवन नहीं था। उसकी मैं गिनती नहीं करता। इधर चार वर्षों से जीवन की सुगंध मिलनी शुरू हुई। इधर चार वर्षों से चित्त हुआ शांत। इधर चार वर्षों से निर्विचार हुआ। इधर चार वर्षों से भीतर झांका, तो उसकी प्रतीति हुई जो जीवन है। बाहर तो थी मृत्यु, जीवन था भीतर। और मैं बाहर ही देखता रहा, देखता रहा। तो मैंने मृत्यु को जाना था चार वर्ष पहले। उस उम्र को कैसे जीवन की उम्र बताऊं? वह मेरी गणना में नहीं आती।
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहाः भिक्षुओ, सुन रखो मन में। इस आदमी ने जिंदगी को नापने की नई बात बताई है। और आज से मेरे भिक्षुओं की उम्र उसी दिन से नापी जाए, जिस दिन से उनको शांति मिले, वे जीवन को अनुभव करें। उसके पहले की उम्र को जोड़ने की अब कोई जरूरत नहीं है।
कौन सी बात भीतर दिखाई पड़ी होगी उस बूढ़े भिक्षु को? क्या दर्शन हुआ होगा? कौन है? क्या है भीतर?
कोई उसे आत्मा कहे, परमात्मा कहे, उचित तो यही है कि हम उसे जीवन कहें। जीवन है भीतर। जीवंत कोई धारा, कोई चेतना भीतर है। और उसके ऊपर एक खोल है शरीर की। शरीर मरणधर्मा है। शरीर को जो जीवन मान लेता है, वह मृत्यु को ही जीवन समझ कर जी लेता है। और तब होता है बहुत दुख और बहुत पीड़ा। और इस पीड़ा और दुख में वह पूछने लगता हैः क्या है लक्ष्य? क्योंकि इस दुख, पीड़ा में कोई लक्ष्य तो दिखाई पड़ता नहीं। इस दुख, पीड़ा में, इस रोज के दैनंदिन अंधकार में कोई अर्थ, कोई अभिप्राय, कोई मीनिंग तो दिखाई पड़ता नहीं। तो मन में प्रश्न उठने लगता हैः क्या है इस जीवन का अर्थ?
ठीक है पूछने वाला, लेकिन उसको निवेदन कर दें, पहली बात, यह जीवन ही नहीं है जिसका वह अर्थ पूछ रहा है। रह गया दूसरा जीवन, उसे हम जानते नहीं हैं। क्योंकि जो उसे जान लेता है, वह अर्थ नहीं पूछता। क्योंकि उसे पा लेना ही उसका अर्थ है। वह स्वयं साध्य है। उसके पार फिर पा लेने को कुछ भी नहीं है। उसे पा लेना, उस जीवन को जान लेना, उस जीवन के साथ एक हो जाना सब कुछ पा लेना है। क्योंकि उसके बाद मन में कोई अभाव नहीं रह जाता, कोई कामना नहीं रह जाती, कोई मांग नहीं रह जाती। मन सब भांति शांत और तृप्त और संतुष्ट हो जाता है। वह जो परम विश्राम और परम संतुष्टि है, वही उस जीवन को पाने से और जानने से मिल जाती है। तो जीवन का लक्ष्य है जीवन को पा लेना। जीवन का लक्ष्य है जीवन को पा लेना।
हम जीवित नहीं हैं। हम करीब-करीब मृत हैं। और हम जो भी करते हैं, जो भी श्रम करते हैं, जो भी मेहनत करते हैं इस जीवन को खड़ा करने की--जो कि झूठा है, जो कि सच्चा नहीं--उस सारी मेहनत और श्रम का सिवाय इसके कोई परिणाम नहीं होता कि हम रोज-रोज अपनी ही मेहनत से अपनी ही कब्र के करीब पहुंचते चले जाते हैं।
एक गांव के बाहर एक फकीर का झोपड़ा था। कुछ यात्री वहां आए और उन्होंने
उस फकीर से पूछाः गांव का रास्ता किधर है? बस्ती कहां है?
उस फकीर ने कहाः बस्ती? सच में ही बस्ती जाना चाहते हो या कि मरघट?
उन लोगों ने कहाः कैसे अजीब आदमी हो! हम कह रहे हैं कि हम बस्ती जाना चाहते हैं। इस बात को पूछने की क्या जरूरत है कि मरघट जाना चाहते हो? उसने कहाः मैं ठीक से पूछ लूं, ताकि ठीक जगह बता सकूं। क्योंकि कई लोग ऐसी भूल में हैं, कई लोग ऐसी भूल में हैं कि वे मरघट को बस्ती समझते हैं और बस्ती को मरघट। इसलिए मैंने पूछा, कहीं तुम भी तो उसी भूल में नहीं हो!
उन लोगों ने सोचा कि किसी पागल फकीर से मिलना हो गया है। लेकिन फिर भी, कोई और वहां नहीं था, रास्ता उसी से पूछना पड़ा। उसने कहाः बाएं तरफ चले जाओ। और देखो भूल कर भी दाएं तरफ मत जाना। दाएं तरफ मरघट, बाएं तरफ बस्ती। वे लोग बाईं तरफ गए। तीन मील चलने के बाद मरघट में पहुंच गए। वे बहुत हैरान और परेशान हुए। उन्होंने कहाः पहले ही शक हुआ था उस आदमी पर। अजीब पागल है, मरघट में पहुंचा दिया! वापस लौटे, बहुत गुस्से में थे। वह फकीर

वहां बैठा था। उससे उन्होंने कहा कि तुम पागल मालूम होते हो, हम बस्ती जाना चाहते थे, तुमने मरघट भेज दिया!
वह फकीर बोलाः बहुत दिनों बाद मुझे खुद यह अनुभव हुआ है, जिसको तुम बस्ती कहते हो, वह तो रोज उजड़ती है, उसमें तो कोई रोज मरता है, उसको मैं बस्ती कैसे कहूं? लेकिन जहां तक मरघट का सवाल है, वहां जो लोग बसे हैं, वे कभी भी वहां से जाते नहीं, वहीं बसे हैं। तो मैं मरघट को बस्ती कहता हूं। और बस्ती को मरघट कहता हूं, क्योंकि वहां तो टिकटें लगी हुई हैं मरने वालों की--एक आज मरेगा, दूसरा कल, परसों तीसरा, रोज वहां कोई मरेगा। तो जहां रोज कोई मरता हो, उसको कैसे बस्ती कहूं? मरघट से मैंने आज तक किसी को उजड़ते नहीं देखा, जाते नहीं देखा, मरघट से किसी को मरते नहीं देखा। जो मरघट में बस गया, बस गया सदा के लिए, हमेशा के लिए। तो उसको मैं बस्ती कहता हूं। शायद ही उनकी समझ में आई हो बात कि वह फकीर क्या कहता था। हो सकता है आपकी समझ में आ जाए कि वह क्या कहता था। बहुत मुश्किल से यह बात समझ में आती है। लेकिन यह बात सच है। जिसको हम बस्ती कहते हैं, वह क्या है? रोज-रोज मरघट में तो बदल जाती है हमारी बस्ती। जहां हम खड़े हैं वहां कितने लोग नहीं मर चुके हैं? असल में हम खड़े ही इसलिए हो सके हैं कि बहुत लोग मर गए हैं, नहीं तो हम खड़े भी नहीं हो सकते थे। हजारों लाशों पर एक-एक आदमी खड़ा है। अपने बाप की लाश पर बेटा खड़ा है। अपनी मां की लाश पर उसकी पुत्री खड़ी है। हम सब अपने मां-बाप की लाशों पर खड़े हैं। वे न मरें तो हम जिंदा नहीं रह सकते। वे मरते हैं, उजड़ते हैं, जगह खाली होती है, हम बसते हैं। और हम बस भी नहीं पाते कि हमारे बच्चे बसने को आ जाते हैं और हम विदा हो जाते हैं। ऐसा बदलता हुआ मरघट है, जिसको हम बस्ती कहते हैं! और ऐसी ही बदलती और मरती हुई हमारी जिंदगी है, जिसको हम जीवन कहते हैं! वह भी जीवन नहीं है। वहां भी रोज-रोज हमारे भीतर मरता जाता है कुछ।
वैज्ञानिक कहते हैं, शरीर में सैकड़ों कोष्ठ हैं, सैकड़ों सेल हैं, वे रोज मर रहे हैं। वे मर-मर कर बाहर निकल रहे हैं। सात साल में पूरा शरीर मर कर बदल जाता है, दूसरा शरीर आ जाता है। सात साल में आपके शरीर में कुछ भी नहीं बचता जो पुराना हो, सब मर जाता है। नई-नई चीजें उसका स्थान ले लेती हैं।
आप भी एक बस्ती की तरह हैं, जिसमें लोग मर रहे हैं और नये आ रहे हैं। करोड़ों कीटाणुओं से मिल कर आपका शरीर बना है, उसमें लोग मरते जा रहे हैं, नये कीटाणु आते जा रहे हैं। मुर्दा चीजें शरीर के बाहर निकल रही हैं। आपको ख्याल भी न होगा, आप बाल को काटते हैं, दर्द क्यों नहीं होता? हाथ को काटिए, दर्द होता है। नाखून को काटते हैं, दर्द क्यों नहीं होता? नाखून शरीर का मरा हुआ हिस्सा है, बाल मरे हुए हिस्से हैं। मरे हुए सेल हैं, वे निकल रहे हैं, इसलिए उनको काटने से कोई तकलीफ नहीं होती। वे मरे हुए हिस्से हैं, वे निकलते जा रहे हैं शरीर के बाहर, उनकी जगह नये हिस्से जगह लेते जा रहे हैं। शरीर भी खुद एक बस्ती है, जिसमें मरघट बना हुआ है। चौबीस घंटे कुछ चीज
मर रही है, नई चीज बन रही है। बड़ी बस्ती भी एक मरघट है, छोटा शरीर भी एक मरघट है।
और आपके चित्त में क्या है? कल जो विचार था, वह आज नहीं होगा; परसों जो ख्याल थे, वे आज नहीं हैं; मर गए वे, नये ख्याल आ गए। बचपन में जो सोचा था, वह आज है? कहां गए वे ख्याल? कहां गईं वे कामनाएं? कहां गए वे विचार? जवानी आते-आते सब बदल गया है। दूर है जवानी तो, आज रात जो सोचा है, वह सुबह साथ होता है? एक आदमी सांझ को तय करता हैः कल सुबह चार बजे उठेंगे। और चार बजे वही आदमी सोचता हैः क्या जरूरत है, फिर देखेंगे, सोए रहो। कहां गया वह विचार जिसने तय किया था कि चार बजे सुबह उठेंगे? और सुबह उठ कर वह सोचता है, फिर पछताता है कि कैसी बुरी बात मैंने की कि मैं आज नहीं उठा, कल जरूर उठूंगा। रात फिर सोता है और फिर सुबह चार बज जाते हैं और फिर वह सोचता है कि रहने भी दो आज, ऐसी क्या जल्दी है, ऐसी क्या जरूरत पड़ी है, नींद बहुत गहरी है, कल उठेंगे।
विचार प्रतिक्षण मरते हैं और बदलते हैं। मन बदलता है, शरीर बदलता है।
और बदलाहट तभी होती है जब कुछ मरता हो और नया आता हो, नहीं तो कोई बदलाहट नहीं होती। बदलाहट की प्रोसेस, बदलाहट की प्रक्रिया मृत्यु की प्रक्रिया

है, डेथ की प्रोसेस है। वही चीज बदलती है, जो मरती है। जो चीज नहीं मरती, वह बदल नहीं सकती। हम तो रोज बदल रहे हैं; शरीर बदल रहा है, मन बदल रहा है। इसमें कोई भी जीवन नहीं है। जहां-जहां बदलाहट है, वहां-वहां जीवन नहीं है। लेकिन आपको क्या पता है कि आपके भीतर कोई ऐसा बिंदु भी है जो नहीं बदलता? जो वही है जो है?
अगर उसका पता चल जाए तो जानना कि जीवन का पता चला, उसके पहले जीवन का कोई पता नहीं। बाकी सब मृत्यु है। भीतर अगर कोई ऐसा नित्य, शाश्वत, कुछ ऐसा जो सदा वही है जो है, जिसमें कोई बदलाहट नहीं, कोई परिवर्तन नहीं, ऐसा कोई बिंदु अगर उपलब्ध हो जाए, तो जानना कि उस दिन से जीवन की शुरुआत हुई। उसके पहले तो सब मृत्यु की सारी प्रक्रिया है। इस मृत्यु की प्रक्रिया में, इस मरने की धारा में, हम जो भी करेंगे--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप क्या करते हैं--आप दुकान करते हैं, कि नौकरी करते हैं, कि घर बसाते हैं, कि पत्नी और बच्चों को पालते हैं; या कि घर-द्वार छोड़ कर साधु हो जाते हैं, संन्यासी हो जाते हैं; या कि जीवन के सामान्य क्रम में जीते हैं या जीवन को छोड़ कर उलटे बहने लगते हैं जीवन के विरोध में, संन्यास में, संसार के विरोध में चलने लगते हैं; अधार्मिक हैं कि धार्मिक; मंदिर जाते हैं या नहीं; आस्तिक हैं या नास्तिक; गीता पढ़ते हैं या नहीं; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता--जो भी आप करेंगे इस जीवन की धारा में, वह सब आपको मृत्यु में ले जाएगा। चाहे मंदिर जाएं, चाहे न जाएं। जो भी करेंगे इस जीवन की मरणशील धारा में, वह सभी आपको मृत्यु में ले जाएगा। इसमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं। क्योंकि जो भी मनुष्य कर सकता है, वह सब मरणधर्मा होगा। जो भी हम कर सकते हैं, वह सब मृत्यु में ले जाएगा।
एक कहानी आपसे कहूं।
एक राजा ने एक रात सपना देखा। देखा स्वप्न में कि कोई अंधेरी छाया उसके कंधे पर हाथ रखे खड़ी है। उसने पूछाः कौन हो तुम?
उस छाया ने कहाः मैं हूं तुम्हारी मृत्यु। और यह सूचना करने आ गई हूं
कि आज सांझ सूरज ढलने के साथ-साथ ठीक जगह पर मुझे उपलब्ध हो जाना, मैं तुम्हें लेने आ रही हूं।
मौत की खबर सुन कर किसकी नींद न टूट जाएगी? उस राजा की नींद भी टूट गई। आधी रात थी, घबड़ा उठा, क्या अर्थ है इस स्वप्न का? राजधानी में बड़े-बड़े स्वप्न-विश्लेषक थे, ज्योतिषी थे, ज्ञानी और पंडित थे, शास्त्रों के जानने वाले व्याख्याकार थे, सबको खबर भेज दी गई कि शीघ्र चले आओ। आधी रात उठा लिए गए सारे ज्ञानी राजधानी के। आए, पूछा राजा सेः क्या अड़चन आ गई?
राजा ने कहाः ऐसा-ऐसा देखा है स्वप्न। मृत्यु कहती हुई दिखाई पड़ी है--
आज सांझ सूरज डूबने के साथ-साथ ठीक जगह मिल जाना, लेने आ रही हूं। क्या करूं? क्या है इस स्वप्न का अर्थ?
वे पंडित अपनी किताबें साथ ले आए थे, जैसा कि पंडित सदा ही करते हैं। क्योंकि उनकी आत्मा अपने में नहीं होती, अपनी किताबों में होती है। वे अपने शास्त्र बांध कर आ गए थे। उन्होंने अपने शास्त्र खोल लिए और अर्थ खोजने लगे। रात बीतने लगी। किसी ने एक अर्थ बताया, तो दूसरे पंडित ने उसका खंडन किया, जैसी कि पंडितों की आदत है। जैसे कुत्तों की आदत होती है एक-दूसरे पर भौंकने की, वैसे पंडितों की भी होती है। दस पंडित इकट्ठे रखना एक उपद्रव करवा लेना है। एक उपद्रव हो जाए, झगड़ा हो जाए, हत्या हो जाए, कुछ भी हो सकता है। वे सब एक-दूसरे का खंडन करने लगे। एक-दूसरे के शास्त्र की निंदा करने लगे। एक-दूसरे की व्याख्या को गलत बताने लगे।
राजा बड़ा परेशान हो उठा। सांझ बहुत जल्दी हो जाएगी, और इन पंडितों की व्याख्याओं का कोई अंत न दिखाई पड़ता था। इसमें से कोई निष्पत्ति, कोई निष्कर्ष निकलता हुआ दिखाई न पड़ता था। आखिर वह घबड़ा गया। सुबह हो गई, सूरज उगने लगा। और पंडितों का विवाद बढ़ता जाता था। जब उन्होंने बात शुरू की थी, तब तो कुछ साफ भी था, अब तो वह भी साफ न रहा था, और उलझ गया था मामला। क्या था अर्थ, कुछ तय करना मुश्किल था। उनके शब्दों में और सिद्धांतों में बात और खो गई।
राजा का एक वृद्ध नौकर था, उसने उसके कान में कहाः महाराज! इन पंडितों
को कयामत तक भी निष्कर्ष मिलेगा, इसकी कोई आशा नहीं है। दुनिया का अंत आ

जाएगा, ये निष्कर्ष न निकाल पाएंगे। आज तक पंडित कोई निष्कर्ष निकाल पाए हैं? आज तक किसी बात पर वे सहमत हो पाए हैं? आज तक कोई नतीजा मिल सका है उनकी चर्चाओं और विवादों से? लेकिन इनके विवाद तो लंबे चलेंगे, सांझ जल्दी हो जाएगी, देर नहीं है, सूरज उग आया! और जो सूरज उग आया है, उसके डूबने में देर कितनी लगेगी? क्योंकि जो ऊग आया है, वह डूब ही जाएगा। असल में उगने में ही डूबना शुरू हो गया है। सूरज ऊपर उठ रहा है। तो अच्छा होगा यह, इन्हें व्याख्या करने दें, आपके पास कोई तेज घोड़ा हो तो लेकर भाग निकलें, इस घर से जितनी दूर हो सके निकल जाएं। मौत ने संकेत स्पष्ट दिया है। इस घर में, जहां मौत की छाया पड़ी हो और जहां मौत ने आकर खुद सूचना दी हो कंधे पर हाथ रख कर, वहां रुकना एक क्षण भी उचित नहीं है।
राजा को बात समझ में पड़ी। पंडित अपना विवाद करते रहे। राजा भागा, उसके पास तेज घोड़ा था, तेज घोड़े पर बैठ कर उसने यात्रा शुरू की। भागा वह प्राणों को छोड़ कर। अपनी उस पत्नी को जिससे उसने बार-बार कहा था, तेरे बिना एक क्षण भी जीवन असंभव है, उसकी भी उसे याद न आई कि उससे विदा मांग ले। मौत के समय किसको किसकी याद रह जाती है? और वे वचन जो हमने मौत के अनजाने में दिए हों, उन वचनों का किसको स्मरण रह जाता है? जिन मित्रों से उसने कहा था, तुम मेरे प्राणों के प्राण हो, और तुम हो इसलिए मेरी जिंदगी में आनंद है, और तुम्हें छोड़ कर मैं एक क्षण भी न जी सकूंगा, उनकी भी कोई याद न आई। उनसे भी विदा लेने का कोई ख्याल न पैदा हुआ। मौत सामने हो तो कौन मित्र रह जाता है? भागा।
उस दिन न उसे प्यास लगी और न भूख; न उसने पानी पीने को घोड़ा रोका और न भोजन करने को। वह भोजन लाना भी भूल गया था। कुएं तो बहुत पड़े मार्ग पर, लेकिन उसे प्यास का ख्याल ही न था। और जिसे प्यास ही न हो, उसे कुएं से क्या मतलब? मौत थी सामने, मौत थी पीछे, मौत थी आगे, मौत थी ऊपर, मौत थी सब तरफ और निकल जाना था। जरूर था तेज उसके पास घोड़ा, इसलिए विश्वास बड़ा था कि निकल जाएगा। कोई साधारण आदमी का घोड़ा नहीं था, कोई खच्चर नहीं था, राजा का घोड़ा था। राजा बड़ा था, उसके पास घोड़ा भी बड़ा था। सोचा कि मेरा तेज घोड़ा अगर नहीं ले जा सकेगा, तो कौन ले जाएगा? इसलिए निश्चिंत था, हिम्मत से डटा था घोड़े पर। सांझ होते-होते वह सैकड़ों मील दूर निकल गया। सूरज ढलने को आ गया था। जो ऊगता है, वह ढलता भी है। उस दिन भी सूरज ढलता ही, ढलेगा ही। ऐसा तो कोई दिन होता नहीं कि सूरज न ढले, तो उस दिन भी ढला। राजा ने घोड़ा एक वृक्ष से बांधा एक बगीचे में, एक गांव के बाहर। सूरज की आखिरी किरण नीचे डूबने लगी। वह घोड़ा बांध भी नहीं पाया था कि उसे अहसास हुआ कि कोई उसके कंधे पर हाथ रखे खड़ा है। पीछे लौट कर देखा--वही छाया, वही सपना, वही रात की मौत खड़ी थी! वह तो घबड़ा गया, उसके तो प्राण कंप गए! क्या इतनी दौड़-धूप व्यर्थ हो गई? क्या यह दिन भर का परिश्रम और दिन भर की भूख-प्यास... सब उसे याद आ गई। और उसने कहाः तुम कौन हो?
मौत ने कहाः सुबह तुम्हें मिली थी, इतनी जल्दी भूल गए? रात ही तो खबर
दी थी मैंने। और खबर इसीलिए दी थी कि मैं खुद डरी हुई थी कि तुम इस बगीचे में इस झाड़ के नीचे तक आ सकोगे कि नहीं? यहां तुम्हारे मरने का समय और स्थान तय है। घोड़ा तुम्हारा तेज है, उसे मैं धन्यवाद देती हूं। ठीक वक्त पर तुम्हें ठीक जगह ले आया। मैं खुद घबड़ाई हुई थी कि कैसे होगा यह? तुम हो इतने दूर, कैसे आ पाओगे इस जगह? लेकिन घोड़ा, सच राजा, घोड़ा तुम्हारा तेज है। एक राजा का ही घोड़ा है! ठीक वक्त पर ठीक जगह ले आया। धन्यवाद है तुम्हारे घोड़े का।
जिससे दिन भर भागा था, सांझ उससे मिलना हो गया। जिससे भागा था, उससे ही मिलना हो गया। और भागना बन गया माध्यम पहुंचने का वहां, जहां से बचना था। यह कहानी कोई एक राजा की नहीं, सभी की कहानी है। बात दूसरी है, किसी के पास थोड़ा कमजोर घोड़ा है, किसी के पास थोड़ा तेज; कोई जरा धीमे दौड़ रहा है, कोई जरा तेजी से दौड़ रहा है; किसी की दौड़ उदयपुर तक है, किसी की दौड़ दिल्ली तक है, किसी की और आगे तक है; अपने-अपने घोड़े हैं, अपनी-अपनी दौड़ है। लेकिन एक बात तय है, और बड़े मजे की बात यह है कि सब घोड़े ठीक वक्त पर ठीक जगह पहुंचा देते हैं। और मौत ने सिर्फ राजा को धन्यवाद दिया शिष्टाचारवश,

क्योंकि आज तक किसी घोड़े ने कभी किसी को नहीं चुकाया। सब घोड़े ठीक वक्त पर ठीक जगह पहुंचा देते हैं। चाहे मौत सूचना दे और चाहे न दे।
हमारी सारी यात्राएं, जिसमें हम मौत और दुख से बचने में ही संलग्न रहते हैं, हमारे जीवन का सारा उपक्रम, हमारे जीवन की सारी चेष्टा क्या है? दुख से बचने की चेष्टा है। मृत्यु से बचने की चेष्टा है। सदा बने रहने की चेष्टा है। जीवन को पकड़े रहने की चेष्टा है। सारा जीवन-उपक्रम क्या है हमारा? हमारी आकांक्षा क्या है? दुख से बच जाएं; मृत्यु से बच जाएं; बुढ़ापे से बच जाएं; जीवन बना रहे सदा और सदा जीवन बना रहे; यही हमारी आकांक्षा है। लेकिन होता इससे उलटा है। पहुंचते हैं दुख में; पहुंचते हैं बुढ़ापे में; पहुंचते हैं मृत्यु में। यह हमारी आकांक्षा आकांक्षा ही रह जाती है। जो फलित होता है वह यह कि उस दरख्त के नीचे हम पहुंच जाते हैं जहां काली छाया कंधे पर हाथ रख देती है। जीवन भर की खोज का अगर यह परिणाम है और अगर जीवन भर की यह निष्पत्ति है, तो क्या इसे हम जीवन कहें? जिस जीवन में अंत में मृत्यु के फूल लग जाते हों, क्या उसे हम जीवन कहें?
बीज हमने बोए हों अमृत के और फल लगते हों मृत्यु के, तो क्या यह ख्याल नहीं आता कि वे बीज मृत्यु के ही रहे होंगे, अमृत के न रहे होंगे? आम के बीज हम बोएं और कड़वे विषाक्त फल लग जाएं, तो क्या यह ख्याल न आएगा कि हमारे बीज ही गलत रहे होंगे? क्योंकि जो फल में प्रकट हुआ है, वह अगर बीज में मौजूद न था, तो आएगा कहां से? वे बीज ही कड़वे रहे होंगे, वे बीज ही आम के न रहे होंगे, वे नीम के ही रहे होंगे और हमने बीज को समझने में ही भूल की होगी। फिर तो बीज जो होता है वही वृक्ष बनता है, वही फल लगते हैं।
तो जब जीवन के अंत में मृत्यु के फल लगते हैं, तो जिसे हमने जीवन कहा होगा, वहीं भूल हो गई, वह जीवन न रहा होगा, वे बीज मृत्यु के ही रहे होंगे। जन्म जीवन की शुरुआत नहीं, मृत्यु की शुरुआत है। जन्म जीवन का प्रारंभ नहीं, मृत्यु का प्रारंभ है। जन्म बीज नहीं है अमृत का, मृत्यु का ही बीज है। लेकिन जन्म को हम समझ लेते हैं जीवन का प्रारंभ, और तब सारी भूल हो जाती है।
तो आज की संध्या मैं आपसे निवेदन करूंः जन्म को जीवन मत समझ लेना। जन्म जीवन नहीं है। और न ही जन्म और मृत्यु के बीच जो सिलसिला है, वह जीवन है। यह स्मरण आ जाए कि यह जीवन नहीं है, तो आंखें उस तरफ उठाई जा सकती हैं जो कि जीवन है। उसको खोजा जा सकता है स्वयं में जो कि जीवन है। लेकिन जो इसे ही जीवन समझ लेंगे, वे कैसे खोज पाएंगे?
तो यह भ्रम टूट जाना चाहिए, यह इल्युजन टूट जाना चाहिए कि यह जीवन है। अगर यह टूट जाए, तो आज ही, इसी क्षण भी उस तरफ आंख जा सकती है। वह हमारे भीतर मौजूद है। हमारे भीतर कुछ मौजूद है, जिसका कोई जन्म नहीं है और कोई मृत्यु नहीं।
लेकिन मेरे कहने से वह मौजूद नहीं हो जाएगा, उपनिषदों के कहने से मौजूद नहीं हो जाएगा, गीता लाख चिल्लाए तो मौजूद नहीं हो जाएगा, दुनिया भर के शिक्षक समझाएं तो मौजूद नहीं हो जाएगा। मौजूद है कुछ, लेकिन वह आप ही आंख उठाएंगे तो ही मौजूद हो सकता है, नहीं तो मौजूद नहीं हो सकता। वह आपकी आंखों की प्रतीक्षा कर रहा है कि आप देखें, तो वह मौजूद हो जाए। वह है मौजूद। आपकी आंख देखने को तैयार होनी चाहिए। तो उसे देखते ही आपको पहली दफा जीवन का पता चलेगा। और जिस दिन आपको जीवन का पता चल जाएगा, उसी दिन, उसी क्षण, उसी के साथ आपका यह ख्याल मिट जाएगा कि जीवन का लक्ष्य क्या है। जीवन को पा लेना जीवन के लक्ष्य को भी पा लेना है। वह अपना लक्ष्य स्वयं है। जीवन के पार, ऊपर कुछ भी नहीं है। जीवन के आगे कुछ भी नहीं है। जीवन खुद ही है वह सागर--अनंत और असीम--जिसको कोई परमात्मा कहे तो कहे; कोई मोक्ष कहे तो कहे; कोई निर्वाण कहे तो कहे; नाम कोई और दे तो कहे। लेकिन "जीवन" सीधा-सादा सरल सा नाम है, बाकी सब नाम झगड़े के हैं।
आस्तिक और नास्तिक का झगड़ा खड़ा हो जाता है कि ईश्वर है या नहीं? लेकिन जीवन तो है। कोई आस्तिक-नास्तिक का झगड़ा भी नहीं है। जीवन है। आज तक किसी ने शक नहीं किया कि जीवन नहीं है। जीवन निर्विवाद अनुभव है कि जीवन है। निरपवाद, कोई ने कभी अपवाद में नहीं कहा कि जीवन नहीं है। जीवन है। और इस

जीवन की हम सबको तलाश है। लेकिन कठिनाई, सारी कठिनाई एक जगह रुक जाती है-- जिसे हम जीवन समझ लेते हैं, वह जीवन नहीं है। और तब सारी उलझन हो जाती है। इसलिए पहली तो बात इस संबंध में यही जानने की है कि यह जो भ्रामक, जिसे
हम जीवन कहते हैं, उसे जानना होगा कि यह जीवन नहीं है। बड़ी उदासी होगी तब तो, बड़ी चिंता सी मालूम होगी कि अगर यह जीवन नहीं है तो फिर क्या? फिर तो हम खाली छूट गए अधर में, फिर तो कोई रास्ता न रहा। यही तो हम जीवन जानते थे-- यही धन कमाने को; यश कमाने को; बड़ा मकान बनाने को।
मैं इनकी निंदा नहीं कर रहा हूं। मेरे मन में किसी चीज की कोई निंदा नहीं है। लेकिन इनको ही जीवन समझने को मैं गलती कह रहा हूं। जरूर मकान बनाएं, जरूर खोज करें जीवन की, जरूर, यह सब जो चल रहा है, लेकिन इसे जीवन न समझ लें। तो बस, अगर यह जीवन समझ में न आए, तो आपके भीतर एक खोज जारी रहेगी उसको खोजने की जो कि जीवन है। इसे हम जीवन समझ लेते हैं, इसलिए वह खोज बंद हो जाती है। अगर यह भ्रम टूट जाए कि यह जीवन है, तो उसकी खोज शुरू होगी। और वह खोज कैसे शुरू होगी? कैसे? और क्या हो सकता है? उसकी ही हम चर्चा कर रहे हैं। इधर आने वाले दो दिनों में उसकी ही बात होगी कि वह जीवन कैसे जाना जा सकता है?
तो इस प्रश्न के उत्तर में फिर से मैं दोहरा दूंः जीवन का कोई लक्ष्य नहीं जीवन के सिवाय। जीवन की पूर्णता, जीवन का पूरा अनुभव, जीवन का पूरा आनंद, जीवन का पूरा सौंदर्य विकसित हो जाए, जैसे कोई फूल खिल जाए, पूरा खिल जाए, तो लक्ष्य पूरा हुआ। वैसे ही जीवन पूरा खिल जाए, तो लक्ष्य पूरा हुआ, उसके पार और कोई लक्ष्य नहीं है। और कोई लक्ष्य नहीं है।
तो यह जीवन की, इस पूर्णता को खिलावट के लिए, इसके पूरे फूल के खिल जाने के लिए क्या किया जाए? उसकी तो हम बात करेंगे। एक बात तो यह की ही जाए जो मैंने कही कि खोज जारी रखी जाए कि जिसे हम जीवन समझ रहे हैं, कहीं वह झूठा सिक्का तो नहीं है? क्योंकि जो लोग झूठे सिक्के को असली समझ लेते हैं, उनके असली सिक्के की खोज बंद हो जाती है, वे झूठे को ही ढोते रहते हैं। एक बार ऐसा हुआ, दो साधु एक घने जंगल से निकलते थे। गुरु था और उसका शिष्य था, वृद्ध साधु था और एक युवा साधु था। वृद्ध साधु ने अपने कंधे पर एक झोली टांग रखी थी। कोई वजनी चीज उसमें लटकी हुई मालूम पड़ती थी। जंगल आ गया और रात उतरने लगी, अंधेरी रात, निर्जन वन, बीहड़ रास्ता, कोई मार्ग पर दिखाई न पड़े। तो उस वृद्ध गुरु ने अपने युवा शिष्य से पूछाः बेटे, जंगल में कोई डर तो नहीं है? कोई भय तो नहीं है?
उस युवक को बड़ी हैरानी हुई! आज तक कभी उसके गुरु ने यह न पूछा था कि कोई
भय तो नहीं! संन्यासी को भय कैसा? और जंगल में भी भय कैसा? मृत्यु भी आ जाए तो भय कैसा? फियर कैसा? क्या बात है? चिंतित हुआ! उसने कहा कि क्या भय की बात है? कोई भय की बात तो नहीं।
और आगे बढ़े, और रास्ता बीहड़ होता गया, रात और उतरती गई, और सन्नाटा, और सुनसान। वह गुरु ठिठक गया और उसने कहा कि कुछ पता लगाया तुमने? पूछ लिया था? कोई भय तो नहीं है?
वह युवक और हैरान हुआ! बहुत परेशान हुआ!
फिर वे एक कुएं के किनारे थोड़ी देर को हाथ-मुंह धोने के लिए रुके, पानी पीने को रुके। झोला निकाल कर उसके वृद्ध गुरु ने अपने शिष्य को दिया। उसे थोड़ा शक तो होने लगा था कि झोले में जरूर कुछ होना चाहिए। नहीं तो भय कैसा? झोले में हाथ डाला, देखा एक सोने की ईंट भीतर है। वह समझ गया कि भय कहां है। उसने उस ईंट को, गुरु जब तक पानी पीता था, फेंक दिया, उसकी जगह रख दिया उसी वजन के एक पत्थर को। गुरु ने पानी पीया, झोला जल्दी से लेकर कंधे पर टांगा, टटोल कर देखा, ईंट थी, आगे चल पड़ा। थोड़ी देर बाद घोड़ों की टाप की कहीं पास में आवाज आने लगी, तो उसने पूछा कि बेटे, कोई भय तो नहीं है यहां?
उस लड़के ने कहाः आप बिल्कुल निर्भय हो जाएं, भय को मैं पीछे फेंक आया हूं।
वह तो एकदम घबड़ा गया! उसने जल्दी से झोला देखा, ईंट निकाली, पत्थर रखा हुआ था वहां। लेकिन इतनी देर यह पत्थर भी भय देता रहा था। वह बूढ़ा हंसने लगा, उसने कहाः हद्द हो गई! इतनी देर मैं इस पत्थर को ढो रहा था और यह मुझे भय भी दे रहा था। और मैं भयभीत था और कंपित था। तूने ठीक कहा कि भय को तू

पीछे छोड़ आया। पर पागल, तूने उसी वक्त क्यों न बता दिया? मैं इतनी देर व्यर्थ ही इसको ढोता रहा और भयभीत रहा। यह इतनी देर का भय बिल्कुल व्यर्थ था।
उसका युवा शिष्य बोलाः अगर ठीक से समझें, तो पहले भी जो भय था, वह भी व्यर्थ था। वजन वह भी था, वजन यह भी है। लेकिन वह सोना दिखाई पड़ता था, इसलिए आप सोचते हैं वह सार्थक था? और यह ईंट दिखाई पड़ती है, इसलिए सोचते हैं व्यर्थ है? लेकिन अगर ईंट अभी भी दिखाई न पड़ती, तो यह पूरी रात भय से बीतती। और कौन जाने जिसे आपने सोना समझा, वह भी सोना है या मिट्टी? वह समझने पर सारा निर्भर है।
एक झूठी ईंट भय दे सकती है। एक झूठी जिंदगी भय दे सकती है। और एक झूठी ईंट को हम सम्हाल कर ढो सकते हैं और एक झूठी जिंदगी को भी सम्हाल कर ढो सकते हैं और पूछ सकते हैं--कोई भय तो नहीं है?
लेकिन जैसे ही दिखाई पड़ गया कि ईंट सोने की नहीं, पत्थर की है, उस बूढ़े
ने वह ईंट फेंक दी और फिर रात उसी जंगल में वे निश्चिंत होकर सो गए। फिर कोई भय न था, क्योंकि वह ईंट ही न थी, वह सोना ही न था। वे वही थे, सब कुछ वही था, जंगल वही था, रात वही थी, लेकिन भय समाप्त हो गया।
सब कुछ यही होगा, यही रातें, यही दिन, यही लोग, यही जमीन, यही सब कुछ होगा। लेकिन आपको अगर दिखाई पड़ जाए कि जिसे हम जिंदगी जानते थे वह जिंदगी नहीं है, तो सब बदल जाएगा, सब और हो जाएगा। और तब दिखाई पड़ेगा और ज्ञात होगा--क्या है जीवन! और तब उसका अर्थ और लक्ष्य भी दिखाई पड़ेगा और ज्ञात होगा। इस संबंध में इतनी ही बातें अभी कहूं, और तो हम और जीवन की खोज में विचार करेंगे।
एक-दो और छोटे प्रश्न हैं, उनकी चर्चा करूंगा।

एक और प्रश्न पूछा है मित्र ने। मैं कहता हूं, मौलिक चिंतन करना चाहिए, सोचना चाहिए। तो उन्होंने पूछा है कि क्या सभी लोग मौलिक चिंतन कर सकते हैं? क्या सभी लोग नये तरह से जीवन को सोच और देख और विचार कर सकते हैं? उन्हें तो अतीत के अनुभवों का आधार लेना पड़ेगा, उन्हें तो सहारा लेना पड़ेगा, उन्हें तो उधार विचारों को संपदा बनानी पड़ेगी, तो ही वे विचार कर सकेंगे।
तो उन्होंने पूछा है कि क्या सभी अतीत के विचारों का सहारा छोड़ना चाहिए? और क्या यह संभव है कि हम सभी मौलिक विचार कर सकें?

पहली बात आपसे कहूं, वह यहः जो भी व्यक्ति विचार कर सकता है, वह मौलिक विचार भी कर सकता है। जो भी व्यक्ति विचार कर सकता है, वह मौलिक विचार भी कर सकता है। जो उधार विचारों को अपना मान कर पकड़ कर बैठ सकता है, वह विचार करने में समर्थ है। नहीं तो उधार विचारों को पकड़ना भी असंभव था। विचार की सामर्थ्य है, इसीलिए तो दूसरों के विचारों को पकड़ लेता है। लेकिन दूसरों के विचारों को पकड़ लेने से, जो खुद के विचार की शक्ति थी, वह पंगु हो जाती है, विकसित नहीं हो पाती।
दुनिया में हर मनुष्य विचार करने में समर्थ है। और उसी मात्रा में उसके भीतर मौलिक विचार का जन्म हो सकता है, जिस मात्रा में वह बाहर के सहारों को छोड़ने की सामर्थ्य अर्जित कर ले, साहस अर्जित कर ले। मौलिक विचार संभव है प्रत्येक व्यक्ति को और प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह मौलिक विचार करे। जीवन के मिलने के साथ ही यह शक्ति भी मिल जाती है। मनुष्य होने के साथ ही यह संपदा भी मिल जाती है। यह स्वत्व है जीवन के साथ मिला हुआ। लेकिन हम उसका उपयोग ही न करें।...
समझ लें, एक ऐसा गांव हो जहां बच्चे पैदा हों और उनके पैरों को बांध दिया जाए और हाथ में लकड़ियां दे दी जाएं और उनसे कहें, चलो। तो वे लकड़ियों के सहारे बच्चे चलेंगे। फिर उस गांव के सब बच्चे ऐसा हजारों साल तक करते रहें कि बच्चे जब भी पैदा हों, उनको लकड़ियां पकड़ा दी जाएं, बैसाखियां दे दी जाएं और उन सबको चलने को कहा जाए। तो वे लकड़ियों के सहारे चलेंगे और उनके पैर पंगु हो जाएंगे। फिर हर पीढ़ी अपने बच्चों के साथ यही करती रहे। हजार, दो हजार साल बाद उस गांव में बिना बैसाखी के कोई भी नहीं चल सकेगा। और अगर

किसी दूसरे गांव से कोई आदमी भूला-भटका वहां आ जाए और वह कहेः पागलो, यह क्या कर रहे हो? बैसाखियों की क्या जरूरत है? अरे अपने पैरों से चलो! तो वहां के लोग पूछेंगेः क्या हर आदमी अपने पैरों से चल सकता है? क्या यह हो सकता है कि हर आदमी अपने पैरों से चल सके? हां, कभी-कभी ऐसा होता है, कोई अवतारी पुरुष पैदा हो जाता है, अपने पैरों से चलता है। वह अपवाद की बात है। यह सबके बस की बात नहीं। सब तो बैसाखियों से ही चलते रहे हैं हमेशा से। हमारे बाप-दादे भी चलते थे, उनके बाप-दादे भी, उनके बाप-दादे भी, यह तो हमेशा का क्रम है। तुम यह क्या कहते हो अनूठी बात कि हर आदमी अपने पैरों से चल सकता है?
जिन लोगों ने वर्षों तक पैरों का उपयोग न किया हो, उनको यह विश्वास आना कठिन है कि हर आदमी अपने पैरों से चल सकता है। लेकिन हम सारे लोग अपने पैरों से चल रहे हैं।
क्या आपको पता है, चीन में हजारों वर्ष तक स्त्रियों के पैर में लोहे
के जूते पहनाए जाते रहे। छोटा पैर सुंदर होता है, ऐसा उनका ख्याल था। हजार तरह की बेवकूफियां दुनिया में प्रचलित रही हैं। वह भी एक बेवकूफी थी, चीन में प्रचलित थी। फलानी चीज सुंदर होती है, बस यह ख्याल प्रचलित हो जाए, तो कोई सोचता तो है नहीं, सोचने का तो कोई सवाल नहीं। तो चीन में हजारों वर्ष तक, बच्चियां पैदा होंगी और उनके पैरों में लोहे के जूते पहना दिए जाएंगे, ताकि उनके पैर बड़े न हो सकें। छोटा पैर सुंदर और खूबसूरत होता है। फिर जितने बड़े घर की लड़की होगी, उतना ही छोटा जूता पहनाया जाएगा। क्योंकि गरीब घर की लड़की को थोड़ा चलना-फिरना पड़ता है, तो बहुत छोटे जूते नहीं पहनाए जा सकते, वह चल ही नहीं सकती। लेकिन बड़े घर की लड़कियों को तो कोई चलने-फिरने का सवाल नहीं है, तो उनके पैर के जूते और छोटे होते। राजा-महाराजाओं की जो लड़कियां होतीं, उनके पैरों का तो कहना ही क्या, वे तो चलने में और खड़े होने तक में असमर्थ हो जातीं, इतने छोटे जूते होते।
चीन भर की औरतों के पैर पंगु कर दिए गए, सिर्फ गरीब औरतों को छोड़ कर। गरीब औरतों का सौभाग्य था कि वे गरीब थीं, इसलिए उनके पैर तो ठीक रहे, बाकी अमीरों के सबके पैर छोटे हो गए। औरतें चलना मुश्किल हो गईं। चीनी औरत का चलना देखने लायक हो गया, उससे पैर ही रखते न बने। क्योंकि जिसका पैर लोहे में कसा हो बचपन से, उसका पैर छोटा रह जाए और शरीर बड़ा हो जाए, पैर का अनुपात छोटा पड़ जाए, तो वह पैर देखने लायक भर रह जाए, कि वह कुर्सी पर पैर रख कर बैठे, तो आप देखें, बाकी और किसी काम का न रह जाए। अगर उन स्त्रियों से कोई कहे कि सब स्त्रियों के पैर बड़े हो सकते हैं, सब स्त्रियां चल सकती हैं, तो वे हैरान होंगी। वे कहेंगीः सब! यह कैसे संभव है कि सब स्त्रियां चल सकें अपने पैरों से? तो वे कंधे पर हाथ रख कर चलती थीं। दो स्त्रियां साथ होंगी रानी के, वह कंधे पर हाथ रख कर चलेगी, खुद के पैर तो बड़े पंगु। और जब पहली दफा चीन में किन्हीं लोगों ने हिम्मत की और इसके खिलाफ विद्रोह खड़ा किया--इसके खिलाफ भी विद्रोह करना पड़ा कि औरतों के पैर में जूते नहीं पहनाएंगे--तो बड़े उपद्रव हुए, झगड़े हुए। ऐसे लोगों को कहा गयाः ये विद्रोही हैं, ये परंपरा के दुश्मन हैं, ये देश के अतीत को नष्ट कर रहे हैं। ये सारी बात बर्बाद कर देंगे, हमारी सभ्यता मिटा देंगे। हजारों साल से जो हमने नहीं किया, ये नास्तिक लड़के ऐसी बातें करने को कह रहे हैं कि स्त्रियों के पैर में जूते मत पहनाओ। यह कहीं हो सकता है कि स्त्रियां, खूबसूरत स्त्रियां और बड़े पैर की हों? यह नहीं हो सकता।
ऐसी ही हालत हमारे मस्तिष्क की भी हो गई है। हजारों साल से लोहे के जूते हमारे मस्तिष्क में कसे हुए हैं। हजारों साल से हमारे मस्तिष्क को और विचार को चलने की कोई स्वतंत्रता नहीं है। बैसाखी रखो और चलो। कृष्ण के कंधे पर हाथ रखो, महावीर के कंधे पर हाथ रखो, किसी को भी बैसाखी बना लो और चलो, लेकिन अपने पैर से मत चलना। हर आदमी कहीं अपने पैर से चल सकता है? यह तो कुछ थोड़े से सौभाग्यशाली लोगों का हक है कि वे अपने पैर से चलें। चूजन फ्यू, थोड़े से चुने हुए चुनिंदे लोग, जिन पर भगवान की कृपा है।
पता नहीं यह भगवान भी कैसा है कि कुछ लोगों पर कृपा करता है और कुछ लोगों पर नहीं करता! पता नहीं वहां भी कोई रिश्वत चलती है, क्या होता है! पता नहीं वहां भी खुशामद का बहुत प्रभाव होता है, क्या होता है! तो कुछ

चुने हुए लोग कर सकते हैं विचार, सब नहीं कर सकते। यह पागलपन सिखाया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि मस्तिष्क पंगु हो गए, चलने की सामर्थ्य विवेक ने खो दी।
तो निश्चित ही आज यह बात लगती है, आज हजारों साल के बाद अगर कोई कहे कि
हर आदमी मौलिक रूप से सोच सकता है, तो हमें विश्वास नहीं पड़ता। यह स्वाभाविक है। यह स्वाभाविक इसलिए नहीं है कि यह हमारा स्वरूप है, बल्कि इसलिए कि हजारों साल की हमारी आदत है। और आदत के खिलाफ सोचना बड़ी हिम्मत की बात है। कई कारणों से। क्योंकि आदत आसान होती है और तोड़ना कठिन होता है।
एक आदमी सिगरेट ही पीने लगता है तो तोड़ना मुश्किल होता है। एक बिल्कुल बेवकूफी की आदत है, जिसमें कोई भी मतलब नहीं है। एक रत्ती भर मतलब नहीं है। और कभी दुनिया अगर समझदार हुई, तो हैरान होगी कि ऐसे पागल लोग भी थे पहले जो मुंह में धुआं खींचते थे और निकालते थे। बड़ी हैरान होगी! और अरबों-करोड़ों रुपया खर्च करते थे इसमें, धुआं खींचने और निकालने में। तो बच्चे भविष्य में सोचेंगे कि हमारे मां-बाप या तो पागल थे या क्या खराबी थी? क्योंकि यह कल्पना भी उनके नहीं आ सकेगी कि ऐसे लोग भी थे जमीन पर जो धुआं पहले अंदर खींचते, फिर बाहर निकालते! और इसमें पैसा खर्च करते! और इससे बीमार होते, इससे परेशान होते, इससे अस्पताल में जाते, और उनके डाक्टर घोषणाएं करते कि कैंसर हो जाएगा, फलां हो जाएगा, वे सब सुनते और फिर भी पीते, और जो डाक्टर यह कहते, वे भी पीते! तो किसी न किसी दिन मनुष्य-जाति में कोई न कोई पीढ़ी यह विचार तो करेगी कि ये लोग कुछ गड़बड़ रहे होंगे, ये पागल रहे होंगे। क्या है इसमें? क्या होने जैसी बात है इसमें? लेकिन इसको भी छोड़ना कठिन है। इस निहायत एब्सर्ड, जिसमें कोई तुक, कोई संगति नहीं, कोई अर्थ नहीं, उसे छोड़ना भी कठिन है। प्राण निकल जाएं, उसे छोड़ना कठिन है। उत्तरी ध्रुव के पास उन्नीस सौ तीस में यात्री गए, पहले यात्री। उनका जहाज फंस गया और पंद्रह दिन तक निकल नहीं सका, तो उनका राशन चुक गया। लेकिन राशन के चुकने से कठिनाई न हुई, वे भूखे रहने को राजी थे। लेकिन सिगरेट चुक गईं। और तब एक तूफान आ गया उस जहाज में, बिना सिगरेट के रहना असंभव था। लोग सुस्त पड़ गए, लोग आंखें बंद करके पड़ गए, लोग रोने लगे, चिल्लाने लगे कि हमें कोई न कोई तरह... आखिर हालत यह हो गई कि जहाज की रस्सियां काट कर लोग पी गए। और कैप्टेन परेशान हो गया कि तुम जहाज की रस्सियां काटे दे रहे हो, कल जब हम निकलेंगे, तो जहाज चलने योग्य न रह जाएगा। उन्होंने कहाः कल की कल पर छोड़ो, अभी तो हमको धुआं चाहिए। अब बचें या मरें, लेकिन मरेंगे तो भी कम से कम धुआं पीते हुए मरेंगे, यह तो राहत रहेगी। अब हम रुक नहीं सकते। वे जहाज की रस्सियां काट कर पी गए। जहाज मुसीबत में पड़ गया। बड़ी मुश्किल से उस जहाज को लाया जा सका। क्योंकि जहाज के लोग ही रस्सियां चोरी से काट-काट कर पी रहे थे।
तो यह हमको हंसी आती है। और हमको हंसी इसलिए आती है कि शायद हमको ख्याल नहीं कि हम भी बहुत सी ऐसी आदतों के बीमार होंगे जिन पर दूसरों को भी ऐसी हंसी आए। यह हो सकता है कि आप सिगरेट न पीते हों इसलिए मजे से हंस रहे हों, सोचते हों कि बगल वाला अच्छा मुश्किल में पड़ गया जो पीता है। लेकिन आपकी भी ऐसी आदतें होंगी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सिगरेट पीते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
एक आदमी सुबह से बैठ कर भगवान के सामने घंटी बजाता है। सिगरेट पीने से कोई भिन्न आदत है? कोई फर्क है इसमें? कोई समझदारी है इसमें? कि आप एक घंटी बजा रहे हैं भगवान के सामने बैठे हुए? अगर थोड़ा निष्पक्ष होकर सोचेंगे तो हैरान हो जाएंगे--मैं यह कर क्या रहा हूं? इस घंटी बजाने से क्या संबंध? इससे क्या अर्थ? एक आदमी टीका लगा रहा है सुबह से। इसमें कोई अर्थ है? सिगरेट पीने से कोई भिन्न है बात? और टीका लगा कर समझ रहा है कि मैं धार्मिक हो गया। कम से कम सिगरेट पीने वाला यह तो नहीं समझता कि मैं धार्मिक हो गया। एक आदमी तिलक लगा लेता है, समझता है कि हम धार्मिक हो गए। एक आदमी जनेऊ बांधे हुए है, कमर से एक रस्सी बांधे हुए है, सोचता है कि हम धार्मिक हो गए। ये कोई भिन्न बातें हैं? अगर आपका जनेऊ तोड़ दिया जाए, तो ऐसा लगेगा जैसे प्राण निकल गए।

एक साधु से मैं बात कर रहा था। वे मुंह पर पट्टी बांधे हुए थे। मैंने उनकी पट्टी खींच ली। वे ऐसे घबड़ा गए कि जैसे मैंने उनकी आत्मा ले ली हो। मैंने उनसे कहाः हद्द हो गई! आप तो कहते हैं कि मैं शरीर नहीं, आत्मा हूं, और यह पट्टी के खींच लेने से आप इतने घबड़ा गए कि जैसे आपके प्राण निकल गए हों? यह पट्टी...
उन्होंने जल्दी से पट्टी वापस ली और बांध ली। जब तक उन्होंने बांध न ली, तब तक वे इतने बेचैन थे, बांध कर वे निश्चिंत हुए और मुझसे बोलेः आपने भी हद्द कर दी, एकदम से आपने खींच ही ली मेरी पट्टी!
यह सिगरेट पीने से कोई भिन्न बात है? इसमें कोई फर्क है?
जड़ता वही है। हमारा माइंड ईडियॉटिक है, मूढ़ है। और उस मूढ़ मन में ऐसी हमने हजार जड़ताएं इकट्ठी कर रखी हैं। इनको छोड़ना मुश्किल है।
तो मैं तो आपसे कह रहा हूं कि मौलिक चिंतन करो और हजारों साल की गुलामी यह है कि हमने चिंतन कभी किया ही नहीं। हम तो हमेशा विश्वास करते हैं। कोई कह दे, और हम मान लेंगे। कोई कह दे कि यह सच है, और हम मान लेंगे। और जितने जोर से कह दे, उतने जल्दी मान लेंगे। जितनी ताकत से घूंसा बजा कर कह दे, और जल्दी मान लेंगे। और कह दे कि मैं भगवान हूं, तो हम और भी जल्दी मान लेंगे, कि जब भगवान खुद ही कह रहा है, तो फिर शक करने का कोई कारण नहीं है। इसलिए जो आपको मनवाना चाहते हैं, वे जरूर ये घोषणाएं करते हैं कि मैं भगवान हूं। कोई कहता है कि मैं तीर्थंकर हूं। कोई कहता है कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं। कोई कहता है, मैं... अभी जमीन पर तीन सौ आदमी हैं इस वक्त, जो यह कहते हैं कि हम भगवान हैं।
एक दफे तो एक मेले में मैं गया, तीन आदमी वहीं मौजूद थे, जिनको यह ख्याल है कि हम भगवान हैं। एक ने तो अपना नाम श्रीभगवान ही रख छोड़ा है। एक ही मेले में तीन थे! और एक ही साथ भगवान तीन हो नहीं सकते, इसलिए हर एक बाकी दो की निंदा कर रहा था कि वे झूठे हैं, असली मैं हूं। तीन सौ आदमी हैं अभी जमीन पर, जिनके दिमाग में यह खराबी है, वे समझते हैं कि हम भगवान हैं। और बाकी दो सौ निन्यानबे की वे निंदा करते हैं, सिवाय इसके कोई उनके पास काम भी नहीं है, क्योंकि वे सब गलत हैं।
एक दफा ऐसा हुआ, बगदाद में एक आदमी ने यह घोषणा कर दी कि मैं पैगंबर हूं। अब मुसलमान यह बर्दाश्त नहीं कर सकते। मोहम्मद के बाद किसी को वे पैगंबर होने देने की आज्ञा ही नहीं देते। असल में हर धर्म बंद कर देता है दरवाजा, नये पैगंबरों के लिए गुंजाइश नहीं छोड़ता। क्योंकि नये पैगंबर खतरनाक हो सकते हैं। महावीर चौबीसवें तीर्थंकर, अब उसके बाबत आगे पच्चीसवां तीर्थंकर अगर कोई कहे, तो जैनी उसके दुश्मन हो जाएंगे कि रोको इसको। पच्चीसवां नहीं हो सकता कोई। चौबीस, मामला खत्म। क्योंकि अगर पच्चीसवां कुछ गड़बड़ बातें कहने लगे, पच्चीसवां टाई बांधने लगे, तो फिर क्या करो? फिर इसको करो क्या? तो फिर महावीर से, जो नग्न रहे, उनके साथ इसका मेल कैसे बिठाओ? तो इसलिए झंझट में पड़ो ही मत। नये का दरवाजा बंद। तो मुसलमान भी नहीं मानते कि मोहम्मद के बाद किसी पैगंबर की जरूरत है। फिर जरूरत भी क्या? वे कहते हैं कि मोहम्मद ने सारी बात लाकर बता दी, अब आगे बताने को है क्या? सारी बात जो कहने योग्य थी, वह कह दी गई, तो अब दूसरे को कोई अमेंडमेंट तो लाना नहीं है, कोई सुधार तो करना नहीं है कि अब दूसरे को भेजें।
एक आदमी ने घोषणा कर दी कि मैं पैगंबर हूं। तो उसको बगदाद के खलीफा ने पकड़ कर बुलवाया और कहा कि यह पागलपन छोड़ दो, नहीं तो सिवाय हत्या के और कोई परिणाम न होगा। तो मैं तुम्हें एक दिन का मौका देता हूं। उसको जेल में बंद करवा दिया और कहाः कल सुबह मैं आऊंगा, तुम सोच लो ठीक से। नहीं तो सिवाय गर्दन कटने के कुछ नहीं होगा और। यह बात गलत है, और यह बात हम बर्दाश्त नहीं कर सकते कि कोई अपने को पैगंबर कहे। बस मोहम्मद आखिरी पैगंबर, अब आगे कोई पैगंबर नहीं है। एक है परमात्मा और एक है उसका रसूल मोहम्मद, अब कोई और दूसरा नहीं। बस हो गया काम समाप्त, कुरान में सब है जो चाहिए, अब कोई और नई-नई किताबें लाने की भगवान के यहां से जरूरत नहीं है।

उसको बंद कर दिया। सुबह बादशाह उससे मिलने गया, खलीफा। वह जंजीरों में बंधा हुआ एक खंभे के पास बैठा हुआ था। खलीफा ने उससे कहाः मित्र, कुछ सोचा? विचार किया?
वह हंसने लगा, उसने कहाः तुम बड़े पागल हो। तुम्हें यह पता नहीं कि पैगंबरों पर हमेशा मुसीबतें तो आती ही हैं। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मैं पैगंबर नहीं हूं, इससे यही सिद्ध होता है कि मैं पैगंबर हूं। ये तो मुसीबतें हमेशा पहले भी पैगंबरों पर आती रही हैं, पैगंबरों को सताया जाना हमेशा होता रहा है। तो यह तो कसौटी है। और तुम जितना मुझे सताओगे, उतना ही यह सिद्ध होगा कि मैं पैगंबर हूं। और तुमने मेरी हत्या कर दी, तो बस, फिर तो काम बन गया। पैगंबरों की हत्याएं होती रही हैं। देखो, क्राइस्ट को सूली पर लटका दिया, और सुकरात को जहर पिला दिया। यह तो होता रहा है। तो तुम करो जो तुम्हें करना है, यह तो भगवान ने मुझसे पहले ही कह दिया था कि तुझे भेज रहा हूं, बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ेंगी। वह झेलना शुरू हो गया। बात पक्की हो रही है।
अब तो वह खलीफा बहुत हैरान हुआ! लेकिन तभी एक दूसरा आदमी, जो किसी दूसरे खंभे से बंधा था, खिलखिला कर हंसने लगा।
खलीफा ने पूछा कि तू क्यों हंस रहा है?
उस आदमी ने कहाः मैं इसलिए हंस रहा हूं कि मैं स्वयं परमात्मा हूं और मैं तुमसे कहता हूं कि यह आदमी झूठ बोल रहा है! इसको मैंने कभी भेजा ही नहीं; मोहम्मद के बाद मैंने किसी को भेजा ही नहीं!
वे इसलिए पकड़े गए थे सज्जन कि वे अपने ईश्वर होने की घोषणा कर रहे थे। लेकिन कोई भी चिल्ला कर कह दे, हम विश्वास कर लेते हैं। हम विश्वास करने के आदी हो गए हैं। हमें कोई भी बात विश्वास करवाई जा सकती है। हमसे कोई भी बात कह दी जाए कि विश्वास करो, हम कर लेंगे। हमारा न तर्क उठेगा, न विचार उठेगा, न ख्याल उठेगा। यह एक-दो दिन की गुलामी नहीं है, यह हजारों साल की गुलामी है। और इस गुलामी के खिलाफ जब मैं आपसे कहता हूं, मौलिक चिंतन, तो आपको ऐसा लगता है कि यह तो बड़ी दूर की बात है, जैसे कोई आकाश पर चढ़ने की बात कहे।
लेकिन मैं आपसे विश्वास दिलाना चाहूं, निवेदन करना चाहूंः आपके भीतर हजारों साल की गुलामी के बाद भी वह ज्योति मौजूद है, जो मौलिक चिंतन कर सकती है। वह विवेक मौजूद है। क्योंकि उस विवेक को कोई गुलामी नष्ट नहीं कर सकती। बांध सकती है, नष्ट नहीं कर सकती। उस विवेक के चारों तरफ दीवाल खड़ी हो सकती है, लेकिन वह मर नहीं सकता। वह भीतर मौजूद है। और आप जिस दिन हिम्मत करेंगे, वह जाग सकता है।
और बड़े रहस्य की बात तो यह है कि कुछ बड़ी अजीब सी बात यह है, एक घर में हजारों साल से अंधेरा भरा हो, तो भी उस अंधेरे को मिटाने के लिए एक दीया हम आज जला लें, तो वह अंधेरा मिट जाएगा। वह अंधेरा यह नहीं कहेगा कि मैं हजार साल पुराना हूं इसलिए मैं जाऊंगा नहीं। एक दिन का अंधेरा, हजार साल का अंधेरा एक ही दीये से मिट जाता है।
तो हजारों साल की जड़ता है, लेकिन अगर विवेक की छोटी सी किरण भी जगाने
का आप प्रयास करें, तो वह विलीन हो जाएगी और एक नये जीवन का जन्म हो सकता है।
इस संबंध में और बातें हैं और कुछ प्रश्न हैं, उनके संबंध में कल आपसे विचार करूंगा। अभी रात के लिए इतना ही। अब हम रात के ध्यान के लिए बैठेंगे। तो थोड़ी सी दो बातें रात के ध्यान के संबंध में आपको समझा दूं, फिर हम ध्यान का प्रयोग करें।

अपने माहिं टटोल
पांचवां प्रवचन

यांत्रिक जीवन से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य के सत्य की खोज में जो पहली बाधा, जो पहला अटकाव, जो पहला बंधन है, उसे तोड़ने की बात हमने कल की। वह ज्ञान, जो हमें दूसरों से मिलता है, हमारे अज्ञान से भी ज्यादा खतरनाक है। वह इसलिए ज्यादा खतरनाक है कि उसके द्वारा हमारा अज्ञान मिटता तो नहीं, छिप जरूर जाता है, ढंक जाता है। और वह बीमारी जो ढंकी हो, उस बीमारी से खतरनाक होती है, जो खुली हो, उघड़ी हो, स्पष्ट हो। दूसरों के ज्ञान से, दूसरों के शब्दों और विचारों से, शास्त्रों और सिद्धांतों से हम कुछ जानते नहीं, लेकिन जानने लगे हैं, इस भ्रम में जरूर पड़ जाते हैं। शब्द सीख लिए जाते हैं और यह भ्रम पैदा हो जाता है कि सत्य सीख लिया गया है। ऐसे शब्दों, ऐसे ज्ञान, ऐसे उधार बासे विचारों पर मस्तिष्क मुक्ति तो नहीं खोज पाता, और नये-नये भ्रमजाल, और नई-नई कल्पनाओं, और नये-नये बंधनों में ग्रसित हो जाता है।
यह ज्ञान छोड़ना जरूरी है। इस ज्ञान को छोड़ने के लिए कोई प्रयास भी नहीं करना होगा। यह स्मरण भर हमें आ जाए, यह समझ, यह अंडरस्टैंडिंग भर हमें हो कि जो मेरा नहीं है, जो मैंने नहीं जाना, जो मेरा अनुभव नहीं है, जिसने मेरे प्राणों में आंदोलन नहीं लिया, जिसे मेरे हृदय ने पहचाना नहीं है, जिसे मेरी आत्मा ने जीया नहीं है, वह ज्ञान ज्ञान नहीं है। यह स्मरण भर आ जाए, तो उस भवन के गिर जाने में कोई कठिनाई नहीं है, जो हमने उधार और दूसरों के विचारों पर खड़ा कर लिया है। यह पहली कड़ी थी, जो कल मैंने इस संबंध में आपसे बात की। आज और एक दूसरी कड़ी पर आपसे बात करूंगा।
और पहली कड़ी को समझ लेना तो फिर भी आसान था कि दूसरों का ज्ञान हमारा ज्ञान नहीं है, आज और थोड़ी सी कठिन बात पर आपसे चर्चा करनी है। वह शायद और भी मुश्किल मालूम होगी समझने में। लेकिन थोड़ी भी समझपूर्वक कोशिश की गई, तो उसे भी समझ लेना कठिन नहीं है। वह दूसरी बात यह है कि मनुष्य को यह भी भ्रम है कि वह कुछ करता है। ज्ञान तो उसका झूठा है, उसके कर्ता होने का बोध भी झूठा है, उसके कर्म का बोध भी झूठा है।
मनुष्य करीब-करीब एक यंत्र की भांति जीता है, एक चेतना की भांति नहीं। मनुष्य एक कांशसनेस की भांति नहीं जीता, एक आत्मा की भांति नहीं जीता, जीता है एक मशीन की भांति, एक यंत्र की भांति। पंखे चल रहे हैं; हमने उनकी बटनें दबा दी हैं और उन्होंने चलना शुरू कर दिया है। अगर इन पंखों को यह भ्रम पैदा हो जाए कि हम चल रहे हैं, तो वह पंखों का अज्ञान होगा। पंखे चलाए जा रहे हैं, चल नहीं रहे हैं। मशीनें चलाई जाती हैं, चलती नहीं हैं। मनुष्य भी चलता नहीं है, केवल चलाया जाता है। लेकिन उसे यह ख्याल है--और यह ख्याल उसके जीवन में सबसे बड़ी जंजीर है--उसे यह ख्याल है कि मैं चलता हूं। उसे यह ख्याल है कि मैं करता हूं। उसे यह ख्याल है कि मैं करने वाला हूं।
आपने कई बार कहा होगाः कल मैंने क्रोध किया। लेकिन क्या कभी आपने यह सोचा है कि क्रोध आपने कभी किया है आज तक जीवन में या कि क्रोध हुआ है? आपने क्रोध किया, ऐसा आपने सोचा होगा बहुत बार; लेकिन थोड़ा समझेंगे, तो दिखाई पड़ेगाः क्रोध किया नहीं है, क्रोध हुआ है। और आप क्रोध में करने वाले नहीं थे, केवल एक मशीन की भांति चालित हुए थे। कोई आपको धक्का दे दे, तो आपके भीतर जो क्रोध उठता है, वह सचेतन नहीं है, वह कांशस नहीं है, वह आपके विचारपूर्वक नहीं है, वह बिल्कुल यांत्रिक है। जैसे कोई बटन दबा दे और पंखा चल जाए, वैसे ही कोई धक्का दे दे तो भीतर क्रोध उठ आता है। इस क्रोध के आप मालिक नहीं हैं, इस क्रोध को करने वाले आप नहीं हैं।
लेकिन हम कहते रोज यही हैं कि मैंने क्रोध किया। झूठ है यह बात। न आपने कभी क्रोध किया है, न आपने घृणा की है और न प्रेम किया है। प्रेम जिनके जीवन में पैदा होता है, वे जानते हैं भलीभांति इस बात को कि यह कहना गलत है कि मैंने प्रेम किया, यही कहना ठीक है कि प्रेम हुआ, इट हैपंस, हो जाता है, आप करते नहीं हैं। लेकिन कहते हम यही हैं कि मैंने प्रेम किया। यह

आपके वश में है प्रेम करना? तो मैं एक आदमी को आपके सामने बिठा दूं और कहूं कि चलिए इसे प्रेम करिए! आप प्रेम कर पाएंगे? एक आदमी को आपके सामने बिठा दिया जाए और कहा जाए, चलिए इस पर क्रोध करिए! आप क्रोध कर पाएंगे? जितनी आप कोशिश करेंगे क्रोध करने की, आप पाएंगेः कोई क्रोध नहीं उठ रहा है। चाहे आप मुट्ठियां बांधें और चाहे आप दांत पीसें, लेकिन आप पाएंगेः भीतर कोई क्रोध नहीं है, और यह सब एक्टिंग है और झूठी है, अभिनय है। जब आप जान कर एक भी बार क्रोध नहीं कर पाते हैं, तो जब आप क्रोध करते हैं वह कैसा होगा? वह अनजाना होगा, आपके बिना जाने हो रहा है। और जो आपके बिना जाने हो रहा है, उसके आप मालिक नहीं हो सकते। जो आपके अनजाने हो रहा है, उसके आप मालिक नहीं हैं, उसके आप गुलाम हैं और आप मशीन की भांति व्यवहार कर रहे हैं। सामान्यतया हमारा पूरा जीवन एक यंत्र की भांति है, जिसमें हमारी कोई मालकियत, जिसमें हमारा कोई स्वामित्व नहीं है। आपके भीतर लोभ है, आप अपने लोभ के मालिक हैं? आपने लोभ को पैदा किया है? आपके भीतर सेक्स है, आप सेक्स के मालिक हैं? उसे आपने पैदा किया है? नहीं, आपने उसे पाया है। बच्चा युवा होता है और अचानक पाता है कि उसके भीतर काम ने, सेक्स ने एक तीव्र उभार लिया है, उसके भीतर कोई नई वासना जागने लगती है। जिसे वह जागते हुए पाता है, लेकिन जिसका वह मालिक नहीं है। वह वासना बिल्कुल अचेतन है, उसका उसे कोई होश नहीं, कोई बोध नहीं। लेकिन शायद वह कहता यही होगा, यह वासना मेरी है।
अगर हम अपने चित्त का ठीक-ठीक विश्लेषण करें और अपने कर्मों का भी, तो
हम पाएंगेः वे हमसे होते हैं, हम उनके करने वाले नहीं हैं। और यह कर्ता का भ्रम है कि मैं कर रहा हूं। न आप अपने जन्म के मालिक हैं, आप पैदा हुए हैं। न आप अपने जीवन के मालिक हैं, जीवन आपको मिला है। न आप अपनी मृत्यु के मालिक हैं, मृत्यु घटित होगी। आप अपनी श्वास के भी मालिक नहीं हैं, जो भीतर और बाहर आ-जा रही है। लेकिन कहते हम यही हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। इससे ज्यादा झूठी बात आदमी ने कभी नहीं कही होगी। आप श्वास ले रहे हैं? तब तो फिर आपकी मृत्यु होनी असंभव है। मृत्यु खड़ी हो जाएगी, आप श्वास लिए ही चले जाना। लेकिन हम भलीभांति जानते हैं कि जो श्वास बाहर चली गई और नहीं लौटने को है, तो हम उसे नहीं लौटा सकेंगे।
तो यह कहना गलत है कि मैं श्वास ले रहा हूं। यही कहना ठीक है कि श्वास
आ रही है, जा रही है, मैं कहां आता हूं इसमें!
यह कहना गलत है कि मेरा जन्म-दिन। मुझसे पूछा था किसी ने? मेरा कोई वश
है मेरे जन्म पर? मेरा कोई अधिकार है? मेरी कोई स्वीकृति है?
नहीं, मैं कहीं भी नहीं आता हूं। जीवन जन्मता है। लेकिन मैं कहता हूंः मेरा जन्म! श्वास चलती है, लेकिन मैं कहता हूंः मेरी श्वास! मैं ले रहा हूं। क्रोध उठता है, काम उठता है, लोभ उठता है और मैं कहता हूंः मेरा क्रोध! मेरा प्रेम! मेरी घृणा! मेरे मित्र! मेरे शत्रु! बहुत अनजाने और बहुत नासमझी से, जो सारी क्रियाएं बिल्कुल यांत्रिक, मैकेनिकल हैं, उनके हम स्वामित्व की घोषणा करने लगते हैं और कहते हैं कि मैं इनका मालिक हूं।
इस बात की कसौटी इससे हो सकेगी कि अगर आपके भीतर क्रोध हो और आप न चाहें तो न हो, तो हम समझ सकेंगे कि आप क्रोध करते हैं। एक आदमी आपको गाली दे, आप चाहें तो क्रोध हो और चाहें तो क्रोध न हो, तो हम समझेंगे कि क्रोध के आप कर्ता हैं, क्रोध के आप मालिक हैं। लेकिन अगर आपके बिना चाहे सब होता है, तब तो बड़ी कठिनाई है।
बुद्ध एक गांव के पास से निकले। कुछ लोगों ने आकर बुद्ध को गालियां दीं और अपमानजनक शब्द कहे। वे बड़े क्रोध में थे। बुद्ध ने कुछ ऐसी बातें कही थीं कि उनके पुराने धर्मों की जड़ें हिल गई थीं। और बुद्ध ने कुछ ऐसी बातें कही थीं कि उनकी परंपरागत रूढ़ियों पर चोट पड़ी थी। वे गांव के क्रुद्ध लोग, उन्होंने बुद्ध को रास्ते पर घेर लिया और बहुत गालियां दीं। थोड़ी देर बाद बुद्ध ने कहाः मेरे मित्रो, अगर तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है।
वे थोड़े हैरान हुए और उन्होंने कहाः हमने क्या कोई ऐसी बातें कही हैं
कि आप इतनी शांति से यह कहें कि मुझे दूसरे गांव जाना है, आपकी बातें पूरी

हो गईं क्या? हमने दी हैं गालियां, अपमानजनक शब्द, विषभरी बातें। क्या आपके भीतर कोई क्रोध पैदा नहीं हुआ?
बुद्ध ने कहाः तुमने थोड़ी देर कर दी, दस साल पहले आना चाहिए था, तब क्रोध होता था, घृणा होती थी, तब सब होता था। क्योंकि मैं मौजूद नहीं था, मैं अनुपस्थित था। मैं अपने जीवन के प्रति सचेतन नहीं था, जाग्रत नहीं था, सोया हुआ था, सब होता था। दस साल पहले आना था। तुम बड़े बेवक्त आए हो। अब मैं जागा हुआ हूं। और अब तुम जो चाहो वही मेरे भीतर नहीं हो सकता। अब तुम मेरे मालिक नहीं रहे। मैं जब सोया हुआ था, तब तुम मेरे मालिक थे। अब मैं जागा हुआ हूं, मैं अपना मालिक हूं। तुमने गालियां दीं, ठीक, लेकिन मैं गालियां लेने से इनकार करता हूं। तुमने मेहनत की, श्रम उठाया, तुम गांव के बाहर इस भरी दोपहरी में आए और तुमने न मालूम कितनी पीड़ा झेली होगी, तभी तो तुम इतने विषभरे शब्द बोल सके। लेकिन, ठीक, तुमने बोला। लेकिन तुम अकेले थोड़े ही इस लेन-देन में हो, मैं भी तो भागीदार होना चाहिए। तुमने दिया, मुझे लेना चाहिए, तभी तो गाली अर्थपूर्ण होगी। लेकिन मैं लेने से इनकार करता हूं। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे, अब इन गालियों का क्या करोगे? कहां ले जाओगे? क्योंकि पिछले गांव में कुछ लोग फूल और फल और मिठाइयां लेकर आए थे और मैंने उनसे कहा कि मित्रो, मेरा पेट भरा है, तो वे वापस ले गए, उन्होंने क्या किया होगा?
भीड़ में से किसी ने कहाः अपने घर ले गए होंगे, अपने बच्चों को बांट दी होगी।
तो बुद्ध ने कहाः तुम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। तुम गालियां लेकर आए हो, तुम्हें भी वापस ले जाना पड़ेगा। किसको बांटोगे? किसको दोगे ये गालियां? मैं लेने से इनकार करता हूं। मैं अपना मालिक हूं।
लेकिन कोई जब आपको गाली देता है, तब आप लेने से इनकार कर पाते हैं? नहीं, वह दे भी नहीं पाता और आप पाते हैं कि आप ले चुके हैं। उसकी गाली पूरी भी नहीं हो पाती कि आप तक पहुंच गई होती है। उसकी गाली समाप्त भी नहीं हो पाती कि आपके भीतर कुछ होना शुरू हो जाता है, जो क्रोध है। आप इस क्रोध के मालिक कैसे हो सकते हैं? दूसरा है आपका मालिक, जो गाली दे रहा है। उसके हाथ में है आपकी चाबी। हम सब बाहर से चालित हैं, हम सबको कोई चला रहा है। एक आदमी दो मीठे शब्द बोल देता है और हम प्रसन्न हो जाते हैं। वह हमारी प्रसन्नता और मुस्कुराहट हमारी नहीं है। एक आदमी गाली दे देता है, हम दुखी हो जाते हैं। वह दुख भी हमारा नहीं है। दोनों बाहर से पैदा किए गए हैं।
तो इस संबंध में दो तथ्य आपसे कहना चाहता हूं। पहलाः मनुष्य के जितने कर्म हैं, सभी यांत्रिक हैं। दूसराः मनुष्य के जितने कर्म हैं, उन्हें कर्म भी कहना ठीक नहीं, वे प्रतिकर्म हैं, वे रिएक्शंस हैं, एक्शंस भी नहीं। ये दो बातें सबसे पहले आज की सुबह आपसे कहना चाहता हूं। मनुष्य के कर्म यांत्रिक हैं। यांत्रिक से मेरा अर्थ हैः मनुष्य उन्हें करते वक्त सचेतन रूप से नहीं कर रहा है। कर रहा है, उसे खुद भी पता नहीं है--वह क्यों कर रहा है? उसे खुद भी कोई पता नहीं है--क्यों हो रही हैं ये बातें उसके भीतर?
आपको पता है, क्यों आपके भीतर क्रोध पैदा होता है? आपको पता है, क्यों आपके भीतर अहंकार पैदा होता है? आपको पता है, क्यों लोभ पैदा होता है? आपको पता है, क्यों सेक्स पैदा होता है? कुछ भी पता नहीं है। अंधी ताकतों के हाथ में हम एक खिलवाड़ से शायद ज्यादा नहीं मालूम होते। कुछ होता है, और हम उसके शिकार हैं। क्यों होता है? कोई बोध हमें नहीं।
पहली बातः इसलिए हमारे कर्मों को मैं यांत्रिक कह रहा हूं, मैकेनिकल, मशीन की भांति। दूसरी बातः हमारे कर्म कर्म भी नहीं हैं, प्रतिकर्म हैं। कर्म वह होता है जो हमारे भीतर से आविर्भूत हो, और प्रतिकर्म, रिएक्शन उसे कहूंगा, जो बाहर से हमारे भीतर पैदा कर दिया जाए।
एक आदमी आपको धक्का दे दे, तो जो क्रोध पैदा होता है वह आपके भीतर से पैदा नहीं हुआ, किसी ने बाहर से उसको गति दी है, वह प्रतिकर्म है, वह कर्म नहीं है, वह रिएक्शन है। आपने कभी कोई ऐसा कर्म किया है जो आपके भीतर से पैदा हुआ हो? जिसका आविर्भाव अपने भीतर से आया हो? कुछ कर्म किए होंगे जो

भीतर से आए होंगे, लेकिन उनके आने में आप सचेतन न रहे होंगे, होश से भरे हुए न रहे होंगे।
दो तरह के कर्म हैं हमारे। अचेतन, भीतर से आने वाले। और प्रतिकर्म, बाहर से आने वाले। इन दोनों के बीच में जो मनुष्य घिरा है, वह बड़े गहरे बंधन में है। लेकिन वह क्या करे? क्या वह अपने क्रोध को दबा ले? दबा लेने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्या वह अपनी वासनाओं को दबा ले? कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि जो उनके पैदा करने में मालिक नहीं है, वह उनके दबाने में भी कैसे मालिक हो सकता है? जो उनके पैदा करने में मालिक नहीं है, वह दबाने में भी मालिक नहीं हो सकता। और अगर किसी भांति जबरदस्ती वह दबा ले, तो उसका क्रोध, उसकी वासनाएं, उसके कर्म दूसरे रास्तों से प्रकट होने लगेंगे जो और भी खतरनाक होगा। ऐसा हो रहा है रोज।
आप एक दफ्तर में काम करते हों और आपका मालिक क्रोध से भर जाए और गुस्से में दो शब्द बोल दे, तो शायद आपको अपना क्रोध पी जाना पड़े। पी जाना पड़े इसलिए कि जैसे नदी की धार नीचे की तरफ उतरती है, ऐसे ही क्रोध की धार भी नीचे की तरफ उतरती है, ऊपर की तरफ नहीं चढ़ती। आपका मालिक है, उसकी तरफ क्रोध की धार चढ़ाना खतरनाक है। वह जीवन-मरण का प्रश्न बन सकता है। इसलिए आप पी जाएंगे, ऊपर से मुस्कुराते रहेंगे। झूठी होगी वह मुस्कुराहट। भीतर क्रोध उबल रहा होगा, लेकिन उसको पी जाएंगे। उसको सम्हाल कर अपने घर ले आएंगे। मजबूत मालिक पर वह नहीं निकल सकता, तो कमजोर पत्नी पर निकल सकता है। घर आकर कोई बहाना आप खोज लेंगे, जिसका आपको पता भी नहीं है कि मैं बहाना खोज रहा हूं। जिसका आपको ख्याल भी नहीं है कि मैं यह क्या खोज रहा हूं? और कमजोर पत्नी में कोई बहाना मिल जाएगा, जो कि स्वाभाविक है। आदमी बहुत कमजोर है, उसके पास पच्चीस बहाने हैं। हो सकता है वह थाली भोजन परोसते वक्त जोर से पटक दे। और उसके थाली पटकने में भी कोई और कारण हो सकता है। हो सकता है कि उसकी पड़ोसन ने उससे कुछ शब्द कहे हों जो उसके भीतर क्रोध को दबा गई हो और थाली इसलिए जोर से गिरे, क्योंकि वह क्रोध भीतर धक्के दे रहा है कुछ करने को, कुछ तोड़ने को, कुछ फोड़ने को। हो सकता है भोजन में वह नमक डालना भूल जाए। और वह भूलना भी हो सकता है कि इस कारण हो कि कल रात आपने उससे जो शब्द कहे थे वे इतने कड़वे थे कि आज मीठा भोजन देना आपको उसका चित्त राजी नहीं है। वह भूलना भी बिल्कुल अचेतन हो सकता है, उसे ख्याल भी न हो कि वह भूल गई है। और आप घर जाएं और कोई बहाना खोज कर अपनी पत्नी पर टूट पड़ेंगे और आपको ऐसा लगेगा कि बिल्कुल जायज, बिल्कुल जस्टीफाइड है मेरा क्रोध, पत्नी ने गलती की है।
लेकिन अगर थोड़ा समझेंगे तो पाएंगे कि यह बिल्कुल यांत्रिक है, क्रोध कहीं और पैदा हुआ था, उसको आप इकट्ठा किए लिए आए हैं, अब वह बहना चाहता है। आप झूठे बहाने खोज कर उसको बहा रहे हैं। पत्नी को आप मार सकते हैं, गाली दे सकते हैं, अपमान कर सकते हैं। पत्नी आपसे शायद कुछ भी नहीं कह सकेगी, क्योंकि हजारों वर्ष से उसको समझाया गया है कि पति परमात्मा है, यह पति देवता है। और यह किसने समझाया है? यह पतियों ने समझाया है कि हम देवता हैं, हम परमात्मा हैं, हमको पूजना। और हम कुछ भी करें और कोई भी व्यवहार करें, वह सब ठीक है। हजारों वर्ष की सिखावन का फल है कि पत्नी इसको पी जाएगी। लेकिन पत्नी का मन भी वैसा ही काम करता है जैसा पति का। थोड़ी देर में उसका बच्चा स्कूल से लौटेगा और वह कोई बहाना खोजेगी और बच्चे को मारेगी। इस मारने में बच्चे का कोई संबंध नहीं होगा। हो सकता है वह कहे कि तुमने किताब फाड़ डाली। हालांकि बच्चा रोज किताबें फाड़ कर आता रहा था, लेकिन कल तक यह बात उसे दिखाई नहीं पड़ी थी। आज उसे दिखाई पड़ जाएगी। हो सकता है वह कहे कि कपड़े तुम गंदे करके आ गए हो। हालांकि बच्चा रोज स्कूल से कपड़े गंदे करके आता रहा था, लेकिन इस पर कभी उसकी नजर न गई थी। आज नजर निश्चित चली जाएगी, आज वह कारण खोज रही है। उसके भीतर इकट्ठा है क्रोध, जो बहना चाहता है। मशीन की तरह उसके भीतर कोई वेग है, जो बहना चाहता है। आज यह बच्चा पिटेगा। और बच्चे को पता भी नहीं होगा कि यह क्रोध बड़ी दूर से यात्रा करके आ रहा है। यह दफ्तर में उसके पिता को उसके मालिक ने दिया था।
बच्चा क्या करेगा? अपनी मां को न तो मार सकता है, न गाली दे सकता है। शायद वह अपनी गुड़िया की टांग तोड़ डाले, शायद वह अपने खिलौने को तोड़ दे, या

हो सकता है अपने बस्ते को पटक कर स्लेट फोड़ डाले। जहां उसकी ताकत चल सकेगी, वहां वह अपने क्रोध को बहा देगा।
ऐसा सारा यांत्रिक जीवन है हमारे चित्त का। और यह सारा यांत्रिक जीवन इसीलिए यांत्रिक बना हुआ है कि हम इस बात को देखने की भी हिम्मत नहीं करते कि यह बिल्कुल मशीन जैसा व्यवहार है, बल्कि इस व्यवहार को हम रोज-रोज न्याययुक्त ठहरा कर ऐसा अहसास करने लगते हैं कि जो मैं कर रहा हूं, बिल्कुल ठीक कर रहा हूं, और मैं कर रहा हूं। ये दोनों बातें झूठ हैं। न तो मैं कर रहा हूं, और ठीक करना तो बहुत दूर का सपना है। क्योंकि जिस बात के करने का मैं मालिक ही नहीं हूं, उसे ठीक करने का तो कोई सवाल भी नहीं उठता है। यह सब हो रहा है। यह क्रोध की तो मैंने एक बात कही, हमारे जीवन की सारी वृत्तियां ऐसी ही यांत्रिक हैं।
आपने देखा, रोज सुबह गांव में भिखारी निकलते हैं भीख मांगने। आपने कभी सांझ को भिखारियों को भीख मांगते देखा? नहीं देखा होगा। सांझ को कोई भिखारी भीख मांगने नहीं आता। क्योंकि वह जानता है, दिन भर का परेशान आदमी भीख नहीं दे सकेगा। भीख सुबह मिल जाती है, क्योंकि रात भर का सोया आदमी भीख दे सकता है। रात भर के सोए हुए होने के बाद भीख देने का काम हो सकता है। क्योंकि यह जो यांत्रिक आदमी है, अगर यह थोड़ा शांत हो तो ही भीख दे सकता है। यह भीख इसलिए नहीं देता कि भिखारी को जरूरत है, यह भीख इसलिए देता है कि यह भीख दे सकता है इस शांत हालत में। सांझ को यही आदमी भीख नहीं देगा, क्योंकि दिन भर की अशांति इकट्ठी हो गई, सांझ को यह भिखारी को एक चांटा मारना चाहेगा भीख की जगह। न तो वह भीख देने में भिखारी से कोई संबंध है, न चांटा मारने में कोई संबंध है, उसके भीतर की अपनी यांत्रिक व्यवस्था उसको प्रेरित कर रही है--ऐसा करो।
आपने कभी ख्याल किया? अगर रास्ते पर भिखारी आपको अकेला मिल जाए, तो सौ में एक मौका भी नहीं है कि आप उसको कुछ पैसे दें। लेकिन अगर आपके चार मित्र आपके साथ हों, तो सौ में निन्यानबे मौके हैं कि आप उसको कुछ देंगे और ज्यादा देंगे। क्यों?
वे तीन आदमी देखने वाले मौजूद हैं। वे तीन देखने वालों की आंखें आपके अहंकार को गति दे रही हैं कि दो! तीन आदमियों की आंखों में आपकी इज्जत बढ़ रही है। भिखारी से कोई संबंध नहीं है, आपके अहंकार को तृप्ति मिल रही है। इसलिए भिखारी हमेशा भीड़ में आपको खोजता है, अकेले में वह आपसे बचता है, अकेले में कोई गुंजाइश नहीं आपसे पाने की। आपका यांत्रिक मन, अकेले में आपका अहंकार तृप्त नहीं होगा, हटा देंगे कि भाग जाओ! क्योंकि भिखारी से कोई भी संबंध नहीं है देने का, देने का संबंध आस-पास खड़े लोगों से है कि वे आपको देख रहे हैं, उनके मन में आपकी प्रतिष्ठा बन रही है, आपके अहंकार की तृप्ति हो रही है। और आपको पता भी नहीं है कि यह देना मेरे अहंकार की तृप्ति की बिल्कुल यांत्रिक मांग है, इसमें भिखारी पर दया बिल्कुल नहीं है, इसमें कोई संबंध नहीं है भिखारी से।
चौबीस घंटे हम जो कर रहे हैं, वह न तो सचेतन है, न तो हमें उसका होश है,
न हमें अवेयरनेस है कि हम यह क्या कर रहे हैं? हम क्या कह रहे हैं? हम कौन सी बातें कर रहे हैं? कौन सी बातें कह रहे हैं? कौन सी बातें सोच रहे हैं? सब यांत्रिक है।
कभी दस मिनट को अकेले अपना कमरा बंद करके बैठ जाएं और मन में जो भी विचार चलते हों, एक कागज पर लिख डालें, ईमानदारी से, वही जो भीतर चलते हों। दस मिनट बाद उस कागज को आप अपने सगे से सगे मित्र को भी बताना पसंद नहीं करेंगे। क्योंकि उस कागज में आप देखेंगे कि यह क्या पागलपन की बातें मेरे मन में चल रही हैं--जिनका न कोई तुक है, न कोई संबंध, न कोई संगति! यह क्या है? शायद आपको खुद ही डर होगा कि मैं पागल तो नहीं हो गया हूं? ये बातें मेरे मन में चल रही हैं!
लेकिन एक यांत्रिक धारा है विचारों की जो मन के भीतर चली जा रही है, उसके भी आप मालिक नहीं हैं। एक छोटे से विचार को भी अपने मन के बाहर निकाल देने की ताकत नहीं है। निकालने की कोशिश करें, पता चल जाएगा। किसी एकाध विचार को निकालने की कोशिश करें। हैरान हो जाएंगे, जिसको निकालना चाहेंगे, वह दुगुने वेग से वापस आकर खड़ा हो जाएगा।

यहां दरवाजे पर हम एक तख्ती लगा दें--भीतर झांकना मना है। फिर हममें
से कौन इतना शक्तिशाली है जो बिना भीतर झांके निकल जाए? और अगर कोई संयमी, कोई तपस्वी, कोई झक्की, कोई हठी निकल भी जाए, तो उसका मन पीछे लौट-लौट कर झांकने का होता रहेगा। उसकी रात की नींद खराब हो जाएगी। रात सपने में वह उसी दरवाजे के आस-पास घूमेगा जहां लिखा है--भीतर झांकना मना है। और हो सकता है कल वह वापस आए और उस दरवाजे में से झांक कर देखे। उसके प्राण व्याकुल हो जाएंगे। क्योंकि जिस विचार को निषेध किया गया है, वह आकर्षण उपलब्ध कर लेता है।
दुनिया में इतनी चीजों में आकर्षण दिखाई पड़ रहे हैं, आपको पता है क्यों? उन चीजों में शायद ही कोई आकर्षण है, लेकिन निषेध ने बल दे दिया है। मुसलमान मुल्कों में, जहां सारी स्त्रियां बुर्कों में ढंकी हुई हैं, एक भी स्त्री सड़क पर से नहीं निकल पाती जिस पर हजारों आंखें न टिक जाती हों। उसका कारण स्त्री नहीं है, उसका कारण बुर्के हैं। आदिवासी कौमों में, जहां स्त्रियां करीब-करीब अर्धनग्न हैं, कोई आंख उन पर टिकती नहीं, कोई आंख उनके शरीर को भेदना नहीं चाहती। कोई कारण नहीं है भेदने का। द्वार खुला हुआ है और वहां लिखा हुआ नहीं है कि भीतर झांकना मना है।
जिन चीजों को हम जितना छिपाते हैं और दूर करते हैं, हमारी आंखें उतनी उनकी तलाश करने लगती हैं, खोज करने लगती हैं। यह हमारा चित्त निषेध में, जहां इनकार है, वहीं-वहीं घूमने लगता है, वहीं-वहीं घूमने लगता है। तो अजीब घटना घट गई है मनुष्य-जाति के इतिहास में। जिन चीजों से हमने मनुष्य को अलग करना चाहा है, अपनी ही नासमझी के कारण उन्हीं चीजों पर मनुष्य के चित्त को रोक रखा है। उन्हीं चीजों पर! जो कौम जितनी ब्रह्मचर्य की बात करती है, उतनी ही सेक्सुअल है, उतनी ही कामुक है। जो लोग जितनी अध्यात्म की बात करते हैं, उतने ही निरे भौतिकवादी हैं, उतने ही निपट भौतिकवादी हैं। जो लोग जितनी आत्मा की बातें करते हैं और शरीर के विरोधी हैं, उन जैसा शारीरिक चित्त खोजना जमीन पर असंभव है।
एक साध्वी के साथ मैं बातें कर रहा था। समुद्र के किनारे हम बैठे हुए थे। समुद्र की हवाएं जोर से आईं और मेरे चादर को उड़ा कर उन्होंने साध्वी के ऊपर गिरा दिया। अब समुद्र की हवाओं को कोई भी पता नहीं कि कौन पुरुष है और कौन स्त्री। और समुद्र की हवाओं को यह भी पता नहीं कि साध्वियां पुरुष के कपड़ों से बहुत भयभीत होती हैं। लेकिन साध्वी तो भयभीत हो गई। लेकिन मेरे सामने उसकी यह भी हिम्मत न पड़े कि वह मुझसे कहे कि अपने चादर को रोकिए। और फिर मैं तो चादर को उड़ा भी नहीं रहा था, इसलिए रोकने का मालिक भी कौन था। हवाएं उड़ा रही थीं, हवाएं जानें। मैं भी चुप बैठा देखता रहा। आखिर उसकी बर्दाश्त के बाहर हो गया और उसने मुझसे कहाः माफ करिए, पुरुष का चादर हमें नहीं छूना चाहिए।
मैंने उनको पूछाः आप आत्मा की बातें कर रही थीं और कह रही थीं कि हम तो शरीर नहीं हैं, आत्मा हैं। बात तो यह हो रही है कि हम शरीर नहीं हैं, आत्मा हैं, और मामला यहां अटका हुआ है कि पुरुष के ऊपर जो चादर पड़ी है वह भी पुरुष हो गई! चादर भी पुरुष और स्त्री हो सकती है? बात आत्मा की है, अटकाव चादर पर है।
मैंने उनसे निवेदन कियाः आप भूल में हैं। आपको शायद पता भी न होगा कि
इस पुरुष की चादर में जो आपको भय मालूम हो रहा है, यह भय बड़ा अचेतन है। पुरुष से दूर रहने की जो निरंतर कोशिश की है, उससे यह भय पैदा हुआ है। यह चादर का इसमें कोई हाथ नहीं है। इसमें पुरुष का भी कोई हाथ नहीं है। पुरुष के साथ जो दीवाल खड़ी की है निरंतर, पुरुष के प्रति जो घृणा और द्वेष और दूरी का भाव पैदा किया है, जो भय पैदा किया है, वह भय इतना मन में जाकर गहरा बैठ गया है, वह आकर्षण इतना गहरा हो गया है निषेध से कि आज पुरुष का चादर भी वही अर्थ रखता है, जो कोई भी, कोई भी ऐसी बात अर्थ रखती जो कि काम से और सेक्स से संबंधित होती। आज पुरुष के चादर में भी वही अर्थ आ गया है। यह अर्थ पुरुष की चादर में कहीं भी नहीं है। यह दबे हुए मन में, दमित मन में, दबाई गई सेक्सुअलिटी में है, दबाए गए यौन में है, यह सारा भाव वहां बैठा है। और उसको कोई नहीं देख रहा है, वह बिल्कुल अचेतन है, वह बिल्कुल अचेतन काम कर रहा है।

हमारा अचेतन मन बड़े अजीब-अजीब ढंग से काम करता है, जिनका हमें ख्याल
भी नहीं है। चौबीस घंटे हम उस भांति जी रहे हैं। और हमारे कर्मों का, हमारे विचारों का, हमारे भावों का एक अचेतन प्रवाह है, यांत्रिक प्रवाह है, जिसका हमें कोई बोध नहीं है कि यह क्या हो रहा है! ऐसे चित्त को लेकर क्या कोई सत्य की खोज पर निकल सकता है? ऐसे चित्त को लेकर क्या कोई स्वयं को जानने की यात्रा पर निकल सकता है? ऐसे चित्त को लेकर आत्मज्ञान संभव है? नहीं, ऐसे चित्त को लेकर आत्मज्ञान इसलिए संभव नहीं है कि जिसे अभी अपने चित्त का ही ज्ञान नहीं है, उसे आत्मा का ज्ञान कैसे हो सकेगा?
तो फिर क्या करें? एक विकल्प है जो हजारों वर्ष से हमें सिखाया गया है
कि ऐसे चित्त का दमन करो। अगर क्रोध उठता है, तो क्रोध को हटाओ और क्षमा करो। हमें सिखाया गया है कि क्षमा परमधर्म है। क्रोध छोड़ना चाहिए और क्षमा अंगीकार करनी चाहिए। सेक्स छोड़ना चाहिए और ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना चाहिए। असत्य छोड़ना चाहिए, सत्य को पाना चाहिए। घृणा छोड़नी चाहिए, प्रेम को पाना चाहिए।
लेकिन मैं आपसे क्या निवेदन करूं कि जो अभी अपने क्रोध का मालिक नहीं
है, वह क्रोध को छोड़ेगा कैसे? छोड़ने के लिए मालकियत चाहिए। और जो क्रोध का ही मालिक नहीं है, वह क्षमा का मालिक कैसे हो सकता है? जो अभी अपने जीवन की सामान्य वृत्तियों को जानता भी नहीं कि वे क्या हैं पूरी-पूरी, वह उन्हें छोड़ेगा कैसे?
छोड़ तो नहीं सकता; दबा सकता है, सप्रेस कर सकता है, दमन कर सकता है, जबरदस्ती उनके ऊपर बैठ सकता है। और जो आदमी अपने भीतर किन्हीं चीजों को जबरदस्ती दबा लेता है, उसका जीवन नरक हो जाता है। क्योंकि जिन चीजों को वह दबाता है, वे उभरना चाहती हैं, निकलना चाहती हैं, वे अपनी अभिव्यक्ति की मांग करती हैं। तो उन्हें रोज-रोज दबाना होता है, सुबह से सांझ, रात से सुबह दबाना होता है। और फिर भी वे मौका पाकर रोज-रोज निकलती रहती हैं। अच्छे लोग इसीलिए बहुत बुरे सपने देखते हैं। जब नींद में वे सो जाते हैं और उनकी दबाने की ताकत सो जाती है, तो बैठी हुई सारी प्रवृत्तियां उभरने लगती हैं। जिन्होंने दिन भर उपवास किया है, वे रात भर सपनों में भोजन करते हैं। यह स्वाभाविक है। इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। क्योंकि दिन भर जिस वृत्ति को दबाया है, जब तक हम जागे रहते हैं, दबाए रखते हैं, लेकिन जब हम सो जाएंगे तब क्या होगा? हम सो जाएंगे, दबी हुई वृत्ति एकदम से जोर से बाहर आ जाएगी। जिस वृत्ति को दिन में दबाया है, वह स्वप्न में वापस लौट आएगी। जिस वृत्ति को जवानी में दबाया है, वह बुढ़ापे में वापस लौट आएगी। क्योंकि जवानी में दबाने की ताकत होती है, बुढ़ापे में ताकत कम हो जाएगी। इसलिए जो लोग युवावस्था में दमन करेंगे, बुढ़ापे में उनका चित्त अत्यंत रुग्ण, पीड़ित और परेशान हो जाएगा। स्वाभाविक है। दबाने की ताकत कम हो जाएगी, फिर वे वृत्तियां जो दबी हैं उनका क्या होगा?
और एक बड़ा मजा है कि जिस वृत्ति को हम जितना दबाते हैं, वह ताकत इकट्ठी करती है। रेसिस्टेंस से, विरोध से उसमें बल आता है, उसमें ताकत इकट्ठी होती जाती है। वह और ताकतवर हो जाती है, और ताकतवर हो जाती है। इसीलिए तो कहा जाता है कि जो आदमी कभी क्रोध न करता हो, अगर वह क्रोध कर ले, तो उसका क्रोध बहुत खतरनाक होता है। दुनिया में जो लोग हत्याएं करते हैं, वे अक्सर वे लोग नहीं होते जो रोज-रोज क्रोध करते हैं, वे लोग वे लोग होते हैं जो बहुत मुश्किल से क्रोध करते हैं। जो लोग मर्डरर्स होते हैं दुनिया में, हत्यारे होते हैं, वे लोग नहीं होते जो छोटी-छोटी बात पर क्रोधित हो जाते हैं। छोटी-छोटी बात पर क्रोधित होने वाले लोगों ने आज तक कोई हत्या नहीं की। क्योंकि उनके पास इतना क्रोध कभी इकट्ठा नहीं हो पाता कि किसी आदमी की हत्या कर दें, इतना पागल होने का वेग उनके पास नहीं होता। वह तो रोज-रोज बिखर जाता है उनका क्रोध, रोज निकल जाता है। लेकिन जो लोग अपने क्रोध को इकट्ठा करते रहते हैं, दबाए रहते हैं, वे बड़े खतरनाक लोग हैं।
इसीलिए तो देखा होगा, अगर दो धर्मों के लोगों में झगड़ा हो जाए, तो जिनको हम समझते थे कि रोज मस्जिद जाकर नमाज पढ़ते हैं, बड़े शांत हैं, रोज पांच दफा नमाज पढ़ते हैं; जिनको हम सोचते थे कि बड़े भले आदमी हैं, सुबह से गीता पढ़ते हैं; जिनको हम सोचते थे कि बहुत भले आदमी हैं, रोज मंदिर जाते

हैं--वे ही लोग सबसे जघन्य हत्यारे और पापी सिद्ध होते हैं। उसका कोई और कारण नहीं है, उसका कारण साफ और सीधा है। वृत्तियों को दबा लिया गया है, तो कोई मौका मिल जाए उनके निकास का तो फिर बड़ी कठिनाई हो जाती है। हिंदुस्तान-पाकिस्तान के झगड़ों में, हिंदू-मुसलमान के दंगों में यही हुआ। जिन लोगों ने दबाया हुआ था, वे बड़े खतरनाक साबित हुए, बहुत खतरनाक साबित हुए।
ये जो वृत्तियां हम दबाते हैं, इनसे वृत्तियां नष्ट नहीं होती हैं, बल्कि चित्त आत्मद्वंद्व में पड़ जाता है, सेल्फ कांफ्लिक्ट में पड़ जाता है। और जिस आदमी का मन अपने भीतर द्वंद्वग्रस्त है, उसकी द्वंद्व में ही शक्ति समाप्त हो जाती है, उसके पास परमात्मा तक यात्रा करने के लिए शक्ति भी नहीं बचती। और हम सारे लोग द्वंद्व में ग्रस्त हैं। हमने न मालूम कितनी बातों को दबा रखा है। हमने न मालूम कितनी बातों को अपने भीतर छिपा रखा है। कि अगर आज हमारे हृदय के द्वार खोल दिए जाएं, तो जैसे नरक के दरवाजे खुल जाएंगे। हमारे भीतर से क्या-क्या निकलेगा, कहना कठिन है। हमारे भीतर कौन सी बातें उठेंगी, ख्याल करना कठिन है।
एक रात एक गांव में एक मां और उसकी बेटी एक बगीचे में मिलीं। उन दोनों मां और बेटी को रात में नींद में उठ कर चलने की बीमारी थी। कोई चार बजे होंगे, वे दोनों नींद में उठ कर अपने बगीचे के पीछे पहुंच गईं। दोनों नींद में थीं, नींद में ही चलने की उन्हें बीमारी थी। जैसे ही मां ने अपनी बेटी को देखा, वह चिल्लाई कि दुष्ट, तूने ही मेरी सारी युवावस्था छीन ली! मेरा सारा यौवन, मेरा सारा सौंदर्य तूने ही छीन लिया! तू तो युवा हो गई और मैं बूढ़ी हो गई। काश, तू पैदा ही न होती। और जैसे ही उस लड़की ने अपनी मां को देखा, उसने कहा कि चुड़ैल, बूढ़ी औरत, तू मेरे जीवन में सबसे बड़ी बाधा है। मेरे प्रेम में, मेरे प्रेम के विकास में तू दीवाल की तरह खड़ी है। तुझे जिंदा रहने का अब क्या हक है? क्या जरूरत है? तू मर जाती तो अच्छा होता। और तभी मुर्गों ने आवाज दी और उन दोनों की नींद खुल गई। नींद खुलते ही बूढ़ी औरत ने कहाः प्यारी बेटी, तू इतनी जल्दी क्यों उठ आई? कहीं सर्दी न लग जाए! सुबह की ठंडी हवाएं हैं। और उस लड़की ने अपनी मां के पैर छुए और कहाः हे प्यारी मां, हे पूज्य मां, आप क्यों उठ आईं, आपकी तो तबीयत रात खराब थी। इतनी जल्दी उठ आना उचित नहीं है, आप अंदर चलें और विश्राम करें।
जो उन्होंने नींद में कहा और जो जाग कर कहा, उसमें जमीन-आसमान का फर्क है। लेकिन जो नींद में कहा, वह सच्चाई के ज्यादा करीब है। उन्होंने निरंतर ये अनुभव किए होंगे, ये बातें जो नींद में कहीं, लेकिन इनको दबा लिया होगा। ये भीतर दब गई होंगी, ये भीतर पड़ी रही होंगी, नींद में निकल आई हैं। इसीलिए तो यह होता है, हम इतने लोग यहां अच्छे लोग बैठे हुए हैं, हम सारे लोगों को शराब पिला दी जाए, तो हमसे क्या निकलेगा, पता है? क्या आप सोचते हैं, शराब में कोई ऐसी चीज होती है कि हमारे भीतर बुरी चीजों को पैदा कर दे? गलती में हैं आप। शराब में ऐसी कोई चीज नहीं होती। शराब में तो केवल इतना ही गुण होता है कि आपके होश को सुला देती है। तो जिस चीज को आपने दबा रखा है, वह निकलना शुरू हो जाती है। शराब बुरी बातें पैदा नहीं करती, शराब तो केवल उस दरवाजे को, सेंसर को, वह जो हमने बिठा रखा है पहरेदार, जो निकलने नहीं देता चीजों को, उसको सुला देती है। उस बेहोशी में सब भीतर से निकलना शुरू हो जाता है।
एक भले आदमी को, जो भजन गा रहा हो, शराब पिला दीजिए, वही आदमी गाली देने लगता है। शराब कहीं भजन को गाली बना सकती है? शराब में कोई बात ही नहीं है, उसमें कोई केमिकल नहीं है जो भजन को गाली बना दे। लेकिन भजन जो आदमी कह रहा था, वह ऊपर से कह रहा था और गालियां भीतर इकट्ठी थीं। शराब पीते से ही ऊपर का आदमी सो गया, भीतर का आदमी बाहर आ गया।
यह जो भीतर हम दबाए हुए हैं, यह नष्ट नहीं होता, यह समाप्त नहीं होता,
यह भीतर मौजूद है। यह हमेशा मौजूद है और हमेशा काम कर रहा है भीतर से। दमन से, सप्रेशन से कोई चित्त परिवर्तित नहीं होता है, सिर्फ दो हिस्सों में बंट जाता है। एक अच्छा चित्त बन जाता है जो हमने सम्हाल लिया और एक बुरा चित्त जो हमारे भीतर बैठ जाता है। और इन दोनों के भीतर जो द्वंद्व चलता है, उसमें हम मर जाते हैं। जैसे मेरे दोनों हाथों को मैं लड़ाऊं, तो कौन

जीतेगा? कोई जीत सकता है? बायां हाथ जीतेगा कि दायां हाथ जीतेगा? कोई भी नहीं जीत सकता। क्योंकि दोनों हाथ मेरे हैं, कौन जीत सकता है? दोनों के पीछे ताकत मेरी है। तो मेरे दोनों हाथ लड़ेंगे, न तो कोई जीतेगा, न कोई हारेगा। लेकिन हां, दोनों के लड़ाने में मैं बर्बाद हो जाऊंगा, मेरी ताकत नष्ट हो जाएगी।
दोनों चित्त मेरे हैं, वह जो चेतन में मैंने सोच रखा है और जो मैंने दबा रखा है, वे दोनों मेरे हैं, उनकी लड़ाई से क्या होगा? उनकी लड़ाई से कोई जीतने वाला नहीं है। उनकी लड़ाई से मैं समाप्त हो जाऊंगा और नष्ट हो जाऊंगा।
इसलिए दमन कोई मार्ग नहीं है, कोई रास्ता नहीं है। दमन से आज तक मनुष्य-जाति को कोई हित नहीं हुआ। तो क्या करें? क्या मैं यह कहता हूं कि जो हो उसे होने दें? क्या मैं यह कहता हूं कि भोग में पागल होकर कूद जाएं? क्या मैं यह कहता हूं कि क्रोध आए तो क्रोध करें? क्या मैं यह कहता हूं कि घृणा आ जाए तो घृणा करें?
नहीं; यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि घृणा, क्रोध, प्रेम, जो कुछ भी हमारे चित्त में है, वह सभी यांत्रिक है। हमें उसका पता भी नहीं, वह क्यों है और क्या है? और ऐसी स्थिति में उसे बदला तो जा ही नहीं सकता। फिर क्या किया जा सकता है? उसे गैर-यांत्रिक बनाया जा सकता है, उसके प्रति जागा जा सकता है, उसके प्रति होश से भरा जा सकता है।
तो जीवन की जो-जो क्रियाएं यांत्रिक हैं, अगर वे सचेतन हो जाएं, तो उनमें क्रांति अपने आप होनी शुरू हो जाती है। क्योंकि सचेतन होने का अर्थ हैः जीवन की स्थिति के प्रति पूरी तरह जागरूक होना, होश से भरे होना। हम बेहोश हैं। यांत्रिक होने का अर्थः बेहोश। यांत्रिक होने का अर्थः सोए हुए। हम करीब-करीब सोए हुए हैं, करीब-करीब बेहोश हैं। हमें कुछ भी पता नहीं है, यह सब क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है?
इस बेहोशी में लिए गए कोई निर्णय काम के नहीं हैं, अगर आप बेहोश ही बने रहते हैं। क्योंकि बेहोशी में लिए गए निर्णय भी बेहोश होंगे। और बेहोशी में लाई गई क्षमा भी बेहोश होगी। बेहोशी में लाया गया प्रेम भी बेहोश होगा। और इसलिए दिखाई तो पड़ेगा प्रेम, लेकिन परिणाम बड़े खतरनाक होंगे। हम सबको इस बात का शायद अनुभव भी होगा। जो आपको प्रेम करता है, वह आपके गले में हाथ डालता है, बड़े प्रेम की बातें करता है, लेकिन थोड़े दिनों बाद पता चलता है--उसके हाथ प्रेम के नहीं थे, आपके गले की जंजीरें बन गए। आप जिसको प्रेम करते हैं, पहले बड़ी मधुर और मीठी बातें और बड़ी कविताएं करते हैं, और थोड़े दिनों बाद जिसको आपने प्रेम किया उसे पता चलता है कि आप तो उसके प्राण के ग्राहक हो गए, आप तो उसकी परतंत्रता बन गए। आपने तो सब तरफ से उसे कस लिया। प्रेम का नाम लिया था, और पजेशन, प्रेम का नाम लिया था, और प्रभुत्व कायम कर लिया।
सारी दुनिया में यह हो रहा है। बेहोश आदमी प्रेम भी करेगा, तो उसका प्रेम भी बहुत खतरनाक है, क्योंकि बेहोश आदमी की किसी बात का कोई भरोसा नहीं कि वह क्या कर रहा है और क्या नहीं कर रहा है।
एक फकीर फकीर होने के पहले एक बादशाह की लड़की से प्रेम करता था। एक सुबह उससे विदा होते वक्त उसने उस लड़की को कहाः तुझसे ज्यादा सुंदर, तुझसे ज्यादा श्रेष्ठ और कोई स्त्री पृथ्वी पर नहीं है।
वह युवती प्रसन्न हुई होगी, क्योंकि युवक युवतियों से हमेशा ही यही बातें कहते रहे हैं, सभी युवक सभी युवतियों से। वह युवती प्रसन्न हुई होगी, बहुत खुश हुई होगी, उसकी आंखों में खुशी भर गई, उसके ओंठ मुस्कुराहट से भर गए।
लेकिन वह आदमी अजीब रहा होगा, वह उतर रहा था सीढ़ियां, वापस अपने घर जा रहा था, रुक गया और उसने कहा कि सुन, तुझे मैं एक बात और बता दूं, मैंने यह कह तो दिया, लेकिन कहने के बाद मुझे ख्याल आया कि यह बात तो मैं और स्त्रियों से भी पहले कह चुका हूं। यही बात तो मैंने और स्त्रियों से भी कही है तुझसे पहले। तेरी मुस्कुराहट देख कर मुझे यह ख्याल आया कि मैंने बिल्कुल अनजाने में यह बात और स्त्रियों से भी कही है, तुझसे भी कह रहा

हूं, इसमें कोई अर्थ नहीं है, मुझे कोई होश ही नहीं है कि मैं क्या कह रहा हूं और क्या कर रहा हूं।
हम क्या कह रहे हैं, क्या कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, इसका होश है? अगर होश हो, तो जिंदगी दूसरी हो जाएगी। क्योंकि होश में आदमी वही काम नहीं कर सकता जो बेहोशी में करता है।
एक बादशाह की सुबह-सुबह एक राजधानी में सवारी निकलती थी। चौरस्ते पर खड़े होकर एक आदमी बादशाह को गाली देने लगा। उस आदमी को पकड़ कर बंद करवा दिया गया और दूसरे दिन बादशाह के सामने लाया गया। और बादशाह ने उससे पूछाः तूने किसलिए गालियां दीं मुझे? मुझे याद भी नहीं आता कि मेरे द्वारा तेरा कभी कुछ बुरा हुआ हो। तूने क्यों गालियां दीं मुझे?
उस आदमी ने कहाः क्षमा करें! मैं शराब पीए हुए था, मैं अपने होश में नहीं था। तो जिसने आपको गालियां दीं, वह दूसरा ही आदमी था। आप मुझसे तफसील न करें, आप मुझसे पूछताछ न करें। जिसने आपको गालियां दीं, वह दूसरा ही आदमी था, वह बेहोश था। मैं होश में हूं, मैं आपके पैर छूना चाहता हूं, आपको नमस्कार करना चाहता हूं। मैंने वे गालियां आपको नहीं दीं, वह दूसरा ही आदमी रहा होगा, अब तो मेरा होश वापस आ चुका है। जो मैंने बेहोशी में किया, वह मैं होश में नहीं कर सकता हूं।
कोई आदमी जो बेहोशी में करता है, होश में नहीं कर सकता है। अगर भीतर चित्त पूरा होश से भर जाए, तो आपका सारा जीवन बदल जाएगा। आज तक कोई आदमी होशपूर्वक क्रोध नहीं कर सका है। आप भी नहीं कर सकेंगे। यह असंभव है, यह इंपासिबिलिटी है कि कोई आदमी होशपूर्वक क्रोध कर सके। कोशिश करके देखें, क्रोध आ रहा हो और आप होशपूर्वक क्रोध करके देखें कि मैं पूरे बोध से भरा रहूं कि यह क्रोध आ रहा है और मैं क्रोध कर रहा हूं। आप पाएंगेः जिस मात्रा में यह बोध होगा, उसी मात्रा में क्रोध मंदा और धीमा हो जाएगा।
मेरे एक मित्र को क्रोध की बीमारी थी और उन्होंने मुझसे पूछाः मैं क्या करूं? क्योंकि वे बहुत उपाय कर चुके थे, कोई उपाय कारगर नहीं हुआ था। हो भी नहीं सकता। किसी ने कहाः क्रोध आए तो राम-राम जपो। लेकिन जो आदमी होश में नहीं है, वह राम-राम कैसे जपेगा? और राम-राम जपेगा, तो वह भी क्रोध में जपेगा। और क्रोध का जप खतरनाक है। उससे कोई मतलब नहीं है। वह राम-राम वैसे ही जपेगा जैसे किसी को पत्थर मार रहा हो गुस्से में। उससे क्या फर्क पड़ने वाला है? उसके भीतर क्रोध उबल रहा है।
तो मैंने उनको कहाः एक छोटा सा काम करें, एक कागज में लिख कर अपने खीसे में रख लें बड़े-बड़े अक्षरों में कि अब मुझे क्रोध आ रहा है। उसे खीसे में ही रखे रहें हमेशा। और जब भी क्रोध आए, कृपा करके एक दफा पढ़ लें और वापस रख लें, फिर जो भी करना हो करें।
उन्होंने कहाः इससे क्या होगा?
मैंने उनसे कहा कि यह मुझसे मत पूछिए, मुझे महीने दो महीने बाद आकर बताइए, क्या होगा।
वे दो महीने बाद वापस लौटे और मुझसे बोलेः यह तो बड़ी हैरानी की बात है! जैसे ही मैं खीसे की तरफ हाथ ले जाता हूं, भीतर मैं पाता हूं कि क्रोध गया, वह नहीं है। जैसे ही मैं कागज पढ़ता हूं--कि अब मुझे क्रोध आ रहा है--मैं पाता हूं कि यह मामला क्या हो गया? वह क्रोध जैसे एकदम राख हो गया!
जीवन में एक अदभुत रहस्य की बात हैः अगर हम चित्त के प्रति होश से भर जाएं, तो न तो क्रोध संभव है, न घृणा संभव है। अगर हम चित्त के प्रति होश से भर जाएं, तो क्षमा अनायास संभव हो जाती है, प्रेम अनायास प्रवाहित होता है। ये लक्षण हैं। बेहोशी का लक्षण हैः क्रोध, घृणा, मोह। होश का लक्षण हैः प्रेम, सत्य, अमोह, क्षमा। ये होश के लक्षण हैं। आप क्रोध को क्षमा में नहीं बदल सकते। लेकिन बेहोशी अगर होश में बदल जाए, तो क्रोध अपने आप क्षमा में बदल जाता है। क्रोध से क्षमा के लिए सीधा कोई रास्ता नहीं है, लेकिन बेहोशी से होश की तरफ सीधा रास्ता है।
महावीर से किसी ने पूछा था कि आप किसको मुनि कहते हैं? कौन है साधु? तो महावीर ने नहीं कहा कि मैं उसको मुनि कहता हूं जो सब कपड़े छोड़ कर नग्न हो जाता है। महावीर ने नहीं कहा कि मैं उसको मुनि कहता हूं जो जैन धर्म को मानता है। महावीर ने नहीं कहा कि मैं उसको मुनि कहता हूं जो रोज मंदिर

जाता है, प्रतिक्रमण करता है। महावीर ने नहीं कहा कि मैं उसको मुनि कहता हूं जो मांस नहीं खाता, हिंसा नहीं करता। ये कोई बातें महावीर ने नहीं कहीं। महावीर ने कहाः मैं उसको मुनि कहता हूं, जो जागा हुआ है, सोया हुआ नहीं है। असुत्ता मुनि। जो सोया हुआ नहीं है, वह मुनि है।
बड़ी अजीब बात कही, पर बड़ी अर्थपूर्ण। जो सोया हुआ नहीं है, जो बेहोश नहीं है, वह साधु है। जो सोया हुआ है, बेहोश है--चाहे मंदिर जाए, चाहे वेश्यालय जाए, कोई फर्क नहीं है उसके सोने में। उसका सोना एक सा है, वह दोनों जगह बेहोश जा रहा है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

कैसे हम जाग जाएं?
तो इस जागरण के लिए पहली तो बात यह जानना जरूरी है कि हम यंत्र हैं और सोए हुए हैं। क्योंकि वही आदमी जाग सकता है जो पहले पक्के रूप से यह समझ ले कि मैं सोया हुआ हूं। क्योंकि जिसको यह भ्रम है कि मैं जागा ही हुआ हूं, वह जागेगा कैसे?
इसलिए मैंने आज की सुबह में इस चर्चा पर जोर दिया है कि आप सोए हुए हैं। मनुष्य सोया हुआ है, बेहोश है। यह पहले बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ जाना चाहिए कि हम बेहोश हैं। तो शायद इस बेहोशी की पीड़ा से ही हमारे भीतर जागरण का क्रम शुरू हो। और बड़े मजे की बात तो यह है, कभी आपने ख्याल किया, रात आप सपना देखते हैं, तो आपको पता नहीं चलता है कि आप सपना देख रहे हैं। आपको लगता है, जो देख रहे हैं वह सच है। सुबह जागने पर पता चलता है कि सपना देखा, वह सच नहीं था। लेकिन सपने में तो सपना सच मालूम होता है।
तो अभी हम जिस हालत में हैं, मालूम होता है वह सच है। और कोई पता नहीं चलता कि वह झूठ है। और न पता चलने का एक कारण यह भी है कि हमारे आस-पास जितने लोग हैं, वे भी सब उसी हालत में हैं। तो ऐसा लगता है कि यह तो मनुष्य की सामान्य स्थिति है, यही जागरण है, सभी लोग हम एक जैसे हैं। और बल्कि अक्सर यह हो जाता है, अगर एक आदमी आपके भीतर ऐसा आ जाए जो जागा हुआ है, तो आप उसकी हत्या कर देंगे कि यह आदमी गड़बड़ है।
नहीं तो क्राइस्ट को कोई काहे के लिए सूली पर लटकाए? और गांधी को कोई काहे के लिए गोली मारे? और सुकरात को कोई जहर क्यों पिलाए? ये गड़बड़ आदमी हैं। ये बीच में आ जाते हैं सोए हुए लोगों के और ऐसी बातें कहने लगते हैं जो सोए हुए किसी आदमी की समझ में नहीं आतीं--कि ये क्या कह रहे हैं! क्या गड़बड़ बात कर रहे हैं! क्राइस्ट कहते हैंः जो तुम्हारे बाएं गाल पर चांटा मारे, तुम दायां उसके सामने कर दो। यह बड़ी फिजूल की बात कह रहे हैं! यह आदमी पागल है। क्योंकि हम तो जानते हैं कि जो आदमी ईंट मारे, उसको पत्थर से जवाब दो। यह तो हम जानते हैं और हम सब इसी बात को जानते हैं। जो आदमी एक आंख फोड़ दे, उसकी दोनों फोड़ दो। और यह एक पागल आदमी है क्राइस्ट, यह कहता हैः बाएं गाल पर कोई चांटा मारे तो दायां सामने कर दो। खत्म करो इस आदमी को! यह कोई बीमार या कोई पागल या कोई गड़बड़, कोई अजनबी, कोई स्ट्रेंजर हमारे बीच पैदा हो गया, यह हमारे बीच का नहीं है।
तो हम सारे लोग चूंकि एक जैसे हैं, जब एक ही बीमारी सब लोगों को हो जाए,
तो बीमारी का पता नहीं चल सकता है। इसलिए बीमारी का कोई पता नहीं चलता। एक गांव में एक बार ऐसा हो गया था। एक जादूगर आया और उसने एक कुएं में
एक पुड़िया डाल दी और कहा कि इस कुएं का पानी जो भी पीएगा, वह पागल हो जाएगा। उस गांव में दो ही कुएं थे। एक गांव का कुआं था और एक राजा का कुआं था। तो गांव के लोगों को तो कितनी देर तक प्यास सहते? प्यास नहीं सही जा सकती, पागलपन सहा जा सकता है। लेकिन कितनी देर तक प्यासे रहते? सांझ होते-होते पानी पीना ही पड़ा। सारा गांव सूरज ढलते-ढलते पागल हो गया।
राजा, उसका वजीर, उसकी रानी, उन्होंने नहीं पीया, उनका अपना कुआं था,
वे उससे पानी पीए। वे बड़े प्रसन्न थे कि हम अच्छे बच गए। लेकिन सांझ को उन्हें पता चला कि प्रसन्नता बड़ी महंगी पड़ गई। सारे गांव के लोग विचार करने लगे कि मालूम होता है राजा का दिमाग खराब हो गया है! सारे गांव का दिमाग तो खराब हो गया था। राजा अजनबी मालूम होने लगा कि यह बातें क्या कर रहा है! सारे गांव के लोग और ही ढंग के हो गए थे, राजा और ढंग का रह गया,

अकेला पड़ गया। सारे गांव के लोगों ने सभा की और कहा कि राजा को बदलना होगा, नहीं तो राज्य बर्बाद हो जाएगा। यह आदमी तो पागल हो गया मालूम होता है! राजा बहुत घबड़ाया, उसने अपने वजीर को पूछाः अब हम क्या करें? मामला तो उलटा है। लेकिन इनकी भीड़ ज्यादा है, इनकी संख्या ज्यादा है। और संख्या बल देती है कि संख्या जिसकी ज्यादा है वह सच है। इसलिए तो सारे दुनिया के धर्म अपनी-अपनी संख्या बढ़ाने में लगाते हैं--हिंदू को ईसाई बनाओ, मुसलमान बनाओ। यह बेवकूफी किसलिए चलती है? इसलिए चलती है, जिसकी संख्या ज्यादा, वह सच। संख्या सबूत है सच्चाई का। इनकी संख्या ज्यादा है, क्या करें?
वजीर ने कहाः एक ही रास्ता है, हम भी उसी कुएं का पानी पी लें, नहीं तो जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा।
वे तीनों गए और उन्होंने बड़ी शांति से भगवान का नाम लेकर उस कुएं का पानी पी लिया। उस रात उस गांव में बड़ा जलसा मनाया गया, नृत्य हुए, गान हुए, स्वागत हुआ और गांव के लोगों ने कहाः धन्य है परमात्मा, तेरी कृपा, हमारे राजा का दिमाग तूने ठीक कर दिया। तो राजा ठीक हो गया था, बस्ती फिर चलने लगी।
यह जो सामूहिक रोग है जीवन का, बेहोशी, इसलिए इसका पता नहीं चलता कि हम बेहोश की तरह जी रहे हैं। किसी चीज पर हमारा कोई वश, कोई जागरण नहीं है। और ऐसी स्थिति में कोई भी परिवर्तन नहीं हो सकता। लाख उपाय करें, कोई फर्क नहीं होगा।
फिर क्या करें?
एक ही उपाय, एक ही मार्ग है और वह यह हैः उस कुएं का पानी पी लें जहां
से जागरण आता है, उस कुएं का पानी न पीएं जहां से बेहोशी और पागलपन आता है। वह कुआं हमारे भीतर है। उसी कुएं को मैं ध्यान कहता हूं--जिससे जागरण आता है, जिससे होश आता है, जिससे अवेयरनेस पैदा होती है, जिससे आदमी जागता है और अपने जीवन को, चित्त को समझना शुरू करता है। इस होश के कुएं का पानी पीएं, तो जरूर चित्त के प्रति एक होश आएगा और एक परिवर्तन होगा।
कैसे जागें?
पहला सूत्र जो मैं आज सुबह आपसे कह रहा हूं, वह यह कि इस बात को ठीक से समझ लें कि सोए हुए हैं, जागरण की शुरुआत समझ लीजिए हो गई। क्योंकि अगर नींद में आपको यह पता चल जाए कि मैं सपना देख रहा हूं, तो आप समझ लेना कि नींद टूटनी शुरू हो गई, नहीं तो यह पता नहीं चल सकता था। अगर नींद में यह पता चल जाए कि जो मैं देख रहा हूं, यह सपना है, तो समझ लेना कि नींद टूट गई। नहीं तो यह पता नहीं चल सकता था कि यह सपना है। अगर आपको यह ख्याल आ जाए, यह रिमेंबरिंग, यह स्मृति कि निश्चित ही यह सारा जीवन तो सोया-सोया, यांत्रिक-यांत्रिक है, इसमें मैं कहां हूं? इसमें होश कहां है? यह जो मैं कर रहा हूं, क्या मैं सच में जान कर कर रहा हूं? यह जो हो रहा है, क्या मैं इसका करने का मालिक हूं? अगर यह बोध आ जाए तो आप समझ लेना, पहली किरण टूट चुकी, आपका जागना शुरू हो गया।
इसलिए सुबह ये बातें कहीं, इनको आप सोचेंगे, मेरे कहने से कुछ होता नहीं। यहां से लौट कर आप विचार करेंगे कि आपकी जिंदगी भी यांत्रिक तो नहीं है? मैकेनिकल तो नहीं है? होशपूर्वक जी रहे हैं? जो कर रहे हैं, उसमें जागरण है? होश है? बोध है? या कि यूं ही किए चले जा रहे हैं? इसको सोचना, इसको जांचना, एक-एक काम को पकड़ कर देखना--कि कल जो मैंने क्रोध किया था, वह मैंने जानते हुए किया था या गैर-जानते हुए किया था? जिसके प्रति मेरे मन में घृणा भर गई है, वह जानते हुए भर गई है या अनजाने भर गई है? जिस आदमी पर मैं शक कर रहा हूं, संदेह कर रहा हूं, वह मैं जान कर कर रहा हूं, अनजाने कर रहा हूं? जिस आदमी को मैं बुरा समझ रहा हूं, वह मैं जानता हूं कि बुराई क्या है? मैं उस पूरे आदमी को जानता हूं कि बुरा होना क्या है?
कौन किसको जानता है! कौन किसको पहचानता है! जिसके साथ हम जिंदगी भर रहते हैं, उसको भी पहचानना कठिन है। तो मैं जजमेंट लेने वाला कौन हूं? मैं निर्णय लेने वाला कौन हूं? कि मैं कहूं फलां आदमी बुरा है, फलां आदमी चोर है, फलां आदमी बेईमान है, यह कहीं सब मैं बेहोशी में तो नहीं कर रहा हूं? और हम कर रहे हैं।

अगर मैं आपके पास आऊं और कहूं कि फलां आदमी बहुत अच्छा आदमी है, बड़ा ईमानदार है। आप कहेंगेः कहां ईमानदारी रखी है इस कलियुग में! ईमानदारी आसान है क्या? आपको पता नहीं होगा, वह भी आदमी जरूर बेईमान होगा। सब बेईमान हैं। अगर मैं आपसे कहूंः फलां आदमी ईमानदार है। आप विश्वास न करेंगे और आप पच्चीस दलीलें देंगे कि यह ईमानदार नहीं हो सकता। लेकिन अगर मैं आपसे कहूंः फलां आदमी बेईमान है। आप कहेंगेः निश्चित होगा। आप एक भी विरोध में दलील नहीं देंगे।
आपको पता है, ऐसा क्यों हो रहा है? निंदा पर हम एकदम विश्वास कर लेते हैं, प्रशंसा पर कभी भी नहीं। क्यों? अचेतन है यह बात। निंदा से हमें खुशी होती है, क्योंकि जब भी कोई आदमी नीचा हो जाता है, हमको लगता है हम ऊंचे हो गए। और जब भी किसी आदमी की प्रशंसा होती है, हमको दुख होता है। कोई आदमी ऊपर होता है, तो हम नीचे होते हैं। इसका हमें पता ही नहीं है कि हम यह क्या कर रहे हैं! जब कोई निंदा करता है, एकदम विश्वास कर लेते हैं। निंदा पर कोई शक पैदा नहीं होता, कोई डाउट पैदा नहीं होता। निंदा एकदम स्वीकृत हो जाती है, कोई किसी के बाबत कुछ भी कह दे। लेकिन किसी की प्रशंसा कभी स्वीकृत नहीं होती। हमारा चित्त बिल्कुल अचेतन काम कर रहा है। वह स्वीकार करने को राजी नहीं है।
लेकिन क्या हम जानते हैं? हम क्या जानते हैं? जिंदगी इतनी रहस्यपूर्ण
है कि निर्णय लेना कठिन है। तो हमारा एक-एक काम जांचने की जरूरत है। मैंने सुना है, न्यूयार्क में एक घर में एक विवाह का जलसा हुआ। कोई दो
सौ मित्र मेहमान थे, आमंत्रित थे। मेहमान सब आ गए, भोजन शुरू होने को था कि एक मेहमान ने अपने खीसे से एक बहुत खूबसूरत छोटी सी पेटी निकाली और उसमें से एक सिक्का निकाला। सिक्का तीन हजार वर्ष पुराना इजिप्त का सिक्का था, मिश्र का सिक्का था। और उसने कहा कि मैंने इसे पच्चीस हजार रुपये देकर खरीदा है--एक रुपये के सिक्के को। तीन हजार वर्ष पुराना है। यह सबसे ज्यादा पुराना सिक्का है जो उपलब्ध है। एक सिक्का और है इसी के समय का, बस ये दो ही सिक्के हैं। एक सिक्का दुनिया में किसी और दूसरे आदमी के पास है, एक यह है। मैंने खरीदा तो मैंने सोचा कि शादी में ले चलूं, मित्रों को दिखा दूंगा, वे खुश होंगे। सिक्का हाथों-हाथ घूमने लगा। कुछ लोगों ने भीड़ लगा ली और उससे पूछने लगेः कितना पुराना है? किस राजा के वक्त का है? किस धातु का बना है? ये सारी बातें, इस पर क्या लिखा हुआ है? और सिक्का घूमने लगा। आधा घंटे बाद सिक्का मिलना मुश्किल हो गया, वह न मालूम कहां खो गया। जिससे भी पूछा, उसने कहाः मुझे मिला था, लेकिन मैंने पड़ोसी को देखने को दे दिया, मुझे कुछ पता नहीं। जिससे भी पूछा, उसने कहाः मेरे हाथ में आया था, मैंने देखा, फिर मैंने दूसरे को दे दिया। वहां भीड़ थी दो सौ लोगों की, शादी का घर था, सिक्का कहां गया? मुश्किल हो गया। सिक्का था कीमती। बड़ी कठिनाई हो गई! शादी की रंग-रौनक उड़ गई! चोरी का मामला हो गया! सारे मेहमान इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहाः हमारे खीसे देख लिए जाएं, कपड़े देख लिए जाएं, हमने तो लिया नहीं। यही तय हुआ कि सबके कपड़े देख लिए जाएं।
लेकिन एक आदमी ने कहा कि मैं तो यहां मेहमान की तरह आया हूं, चोर की तरह नहीं। इतना मैं कह सकता हूं कि मैंने सिक्का नहीं लिया। लेकिन मेरे खीसे में कोई हाथ नहीं डाल सकता है। मैंने आपसे कहा भी नहीं था कि आप सिक्का दिखलाइए। इतना मैं कहता हूं, मैंने सिक्का नहीं लिया। लेकिन मेरे खीसे में हाथ नहीं डालने दूंगा, मैं कोई चोर थोड़े ही हूं। सोच कर डालना, यह पिस्तौल मेरे हाथ में है। तब तो बात और भी स्पष्ट हो गई। हम सबको भी स्पष्ट हो गई, बात साफ है कि इस आदमी ने सिक्का ले लिया। पुलिस को फोन करना पड़ा। लेकिन इसके पहले कि पुलिस आती एक और अदभुत घटना घट गई। पुलिस को फोन किया गया, सारे घर के दरवाजे बंद कर दिए गए। झगड़े की नौबत साफ थी। उस आदमी को छूना ठीक नहीं था, वह गोली चला सकता था। अजीब पागल था! लोग समझा भी रहे थे, लेकिन वह राजी नहीं था। और तभी एक नौकर ने एक पानी के बर्तन को टेबल पर से उठाया और लोगों ने देखा कि उस बर्तन के नीचे वह सिक्का रखा हुआ है। उस आदमी ने बेचारे ने सिक्का नहीं लिया था, सिक्का टेबल के ऊपर था।
तो लोगों ने कहाः तुम कैसे पागल हो? जब तुमने सिक्का नहीं लिया, तो इतना उपद्रव क्यों खड़ा किया?

उसने अपने खीसे में हाथ डाला और उसी जैसा दूसरा सिक्का बाहर निकाला, उसने कहाः दूसरे सिक्के का मालिक मैं हूं। यह जो आदमी कह रहा था कि दूसरा सिक्का है, वह मेरे पास है। मैंने भी सोचा कि चलूं शादी में लेता चलूं और वहां दिखला दूं। लेकिन इसने पहले दिखला दिया, तो मैं चुप रह गया। अब कोई मतलब न था दिखलाने का। लेकिन पांच मिनट पहले कौन मेरा विश्वास कर सकता था कि यह सिक्का चोरी का नहीं है? कौन विश्वास कर सकता था? पांच मिनट पहले कौन ऐसा आदमी होगा उन दो सौ लोगों में जिसने शक न किया हो कि इसने चोरी की? लेकिन जिंदगी इतनी रहस्यपूर्ण है, जिंदगी इतनी मिस्टीरियस है कि इस तरह के निर्णय लेने बिल्कुल अचेतन, मैकेनिकल हैं। इनमें कोई होश नहीं है, ये निर्णय सजग और जागरूक नहीं हैं।
तो जिंदगी में एक-एक चीज परखें। जो हम विचार करते हैं, वह सजग होकर विचार कर रहे हैं? क्या उसके सारे पहलुओं को हम जानते हैं? क्या सारे रहस्य से हम परिचित हैं? जो हम काम कर रहे हैं, वह सजग होकर कर रहे हैं? जो क्रोध, जो प्रेम, जो घृणा हमसे बह रही है, वह सजग है या बेहोश है? जो हम सोच रहे हैं, जो हम भाव कर रहे हैं, वह सजग है या बेहोश है? इसकी खोज, इसकी पहचान, इसकी परख जितनी गहरी होगी, उतना ही आपको दिखाई पड़ेगा कि आप बिल्कुल सोए हुए आदमी हैं। आप जागे हुए आदमी नहीं हैं। और अगर यह दिखाई पड़ जाए, तो बड़ी बात हो गई, क्योंकि यह दिखाई पड़ जाना जागने का पहला सूत्र है।
तो यह निवेदन करता हूं आज की सुबह, तो इस पर थोड़ा विचार करेंगे, खोजेंगे।
कल मैंने कहाः ज्ञान से छुटकारा हो जाना चाहिए। आज मैं आपसे कहना चाहता हूंः यांत्रिकता से छुटकारा हो जाना चाहिए। लेकिन यांत्रिकता से छुटकारा तभी हो सकता है जब हम जान लें कि यह यांत्रिकता है। हमारा अहंकार इसको मानने नहीं देता, वह कहता हैः मैं और यांत्रिक? मैं हूं समझदार! मैं हूं होशियार! मैं हूं विचारशील! कौन कहता है मैं यांत्रिक? हमारा अहंकार मानने नहीं देता कि मैं यांत्रिक हूं। और जिसका अहंकार यह मानने नहीं देता कि मैं यांत्रिक हूं, वह निश्चित रहे, उसका अहंकार उसे सुलाए रखेगा और कभी जागने नहीं देगा।
तो बहुत, अपने प्रति बहुत कठोर होने की जरूरत है। दुनिया में हम दूसरों के प्रति तो बहुत कठोर हो जाते हैं, अपने प्रति बिल्कुल नहीं। अपने प्रति बहुत कठोरता से जांच करने की जरूरत है कि सच्चाई क्या है? क्या है सच्चाई मेरे चित्त की? और अगर इसको देखेंगे, तो कठिन नहीं है यह बात देख लेनी कि जिंदगी में हमने जो कुछ किया है, वह हमसे हुआ है, हमने किया नहीं है। हम उसके मालिक नहीं थे। हम बिल्कुल बेहोश थे। और अगर यह बात दिख जाए, तो इससे बड़ी क्रांतिकारी कोई घटना नहीं होती मनुष्य के जीवन में। फिर इसके बाद कुछ हो सकता है। वह क्या हो सकता है, उसकी बात मैं कल करूंगा। लेकिन आप यह देखेंगे, तो ही वह हो सकता है। वह मेरे कहने से कुछ भी नहीं हो सकता। तो आखिरी सूत्र की बात मैं कल करूंगा।
कल मैंने कहाः ज्ञान से छुटकारा चाहिए। आज मैं आपसे कहता हूंः यांत्रिकता से। और कल तीसरे सूत्र की बात करूंगा। इस संबंध में जो भी प्रश्न होंगे, वह दोपहर और संध्या मैं बात करूंगा।
अभी हम सुबह के ध्यान के लिए थोड़ी देर बैठेंगे एक दस मिनट और उसके बाद सुबह की बैठक पूरी होगी।

अपने माहिं टटोल
छठवां प्रवचन

एक ही मंगल है--जागरण

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल और आज, मनुष्य के चित्त पर जो बंधन हैं, उनमें से दो बंधनों के तोड़ने के संबंध में हमने विचार किया।
एक बंधन तो ज्ञान का बंधन है। हमेशा से यह कहा गया है कि मनुष्य अगर अपने अज्ञान को छोड़ सके, तो वह सत्य को पा सकेगा। लेकिन मैंने आपसे यह कहा कि इसके पहले कि मनुष्य अपने अज्ञान को छोड़े, जिस ज्ञान को उसने दूसरों से सीख लिया है, उस ज्ञान को छोड़ना और भी जरूरी है। उधार ज्ञान अज्ञान से भी ज्यादा घातक है। जो ज्ञान स्वयं का नहीं है, वह मुक्त नहीं करता, बल्कि बांध लेता है। इस संबंध में कल हमने चर्चा की।
आज सुबह, मनुष्य एक यंत्र है और उसे भ्रम है कि वह एक आत्मा जैसा व्यवहार कर रहा है। मनुष्य आत्मा हो सकता है, लेकिन है नहीं। मनुष्य एक सचेतन प्राणी हो सकता है, लेकिन है नहीं। और जिसको यह भ्रम पैदा हो जाता है कि अभी ही वह आत्मा है, वह आत्मा की खोज में हमेशा के लिए पिछड़ जाएगा। एक बीज है, बीज वृक्ष हो सकता है, लेकिन वृक्ष है नहीं। और किसी बीज को अगर यह ख्याल पैदा हो जाए कि वह वृक्ष हो गया है, तो फिर उस बीज के वृक्ष होने की सभी संभावनाएं समाप्त हो गईं। बीज को यह जानना ही होगा कि वह वृक्ष नहीं है, तभी उसके प्राणों में वृक्ष बनने की अभिलाषा जागेगी, प्यास उठेगी और वह वृक्ष हो सकता है। बीज वृक्ष हो सकता है, है नहीं।
मनुष्य एक जाग्रत आत्मा हो सकता है, लेकिन है नहीं। हमारा सामान्य जीवन अत्यंत यांत्रिक, मैकेनिकल है, उसका कांशसनेस से, उसका चेतना से अभी कोई संबंध नहीं है। इस संबंध में सुबह हमने बात की।
इन दोनों चर्चाओं पर बहुत से प्रश्न यहां मेरे पास आए हैं, उन पर थोड़ा
सा विचार इस दोपहर हम करेंगे।

सबसे पहले एक मित्र ने पूछा है कि कहा जाता है कि ध्यान से शांति मिलेगी, वह ठीक है, लेकिन यह भी कहा जाता है कि मरते समय अगर मन की दशा अच्छी हो, तो भी आदमी मुक्त हो जाता है, अच्छी गति में पहुंच जाता है।
साथ और भी एक मित्र ने पूछा हैः अगर यह संभव है कि मरते समय चित्त की अच्छी दशा हो, तो फिर मरते समय के क्षणों को ही सम्हाल लेना उचित है, सारे जीवन क्या फायदा? या कि सारे जीवन चित्त को सम्हालना होगा?

यह जो कहा जाता रहा है कि मरते समय चित्त की जैसी दशा होगी, अच्छी होगी, शुभ होगी, तो पर्याप्त है। और इसलिए मरते वक्त गीता सुना दें, उपनिषद सुना दें, कुछ और सुना दें, तो जो मर रहा है उसकी आत्मा शुद्ध हो जाएगी और पवित्र हो जाएगी। ये बातें अत्यंत धोखे की, अत्यंत झूठ हैं। और ये, मनुष्य की अपने आपको धोखा देने की जो प्रवृत्ति है, उसके सबूत हैं।
मृत्यु के क्षण में चित्त की दशा वही होती है जो जीवन भर का सार-संक्षिप्त होता है। जीवन भर चेतना ने जिस भांति गति की है, उसका ही अत्यंत सारभूत अंश मृत्यु के समय मनुष्य के समक्ष होता है। मृत्यु सारे जीवन का आंकलन है, मृत्यु है सारे जीवन का निचोड़। तो यह नहीं हो सकता कि सारे जीवन हिंसा की हो और मृत्यु के क्षण अहिंसा का विचार मन में आ जाए। यह असंभव है। मृत्यु तो है निष्कर्ष पूरे जीवन का। यह नहीं हो सकता कि सारे जीवन घृणा की हो, क्रोध किया हो और मरते क्षण चित्त प्रेम से भर जाए। इससे ज्यादा असंभव और कोई बात नहीं हो सकती।
मृत्यु के क्षण में तो जीवन भर का जो जोड़ है, जीवन भर चित्त की जो दशा है, जो कंटिन्युटी है, जो क्रम है, वही अपने शिखर पर पहुंच जाएगा। जैसा मैंने कल आपको कहा, यह नहीं हो सकता कि बीज हम कड़वे बोएं और फल मीठे आ जाएं। बीज यात्रा की शुरुआत है, फल उसका अंत है। फल बीज की मृत्यु है, वहां जाकर बीज की यात्रा समाप्त होती है। तो बीज में जो छिपा था, वही फल में प्रकट

होगा। जीवन भर चित्त ने जो कुछ अर्जित किया है, मृत्यु के क्षण में चित्त उसी के साथ होगा।
इसलिए इस धोखे में कोई भी न रहे कि मृत्यु के क्षण को हम सुधार लेंगे।
पूरे जीवन को जो बदलता है, वही मृत्यु को भी बदलने में समर्थ होता है।
लेकिन, चूंकि हम तरकीबें, शार्टकट निकालने के हमेशा उत्सुक होते हैं।
जीवन भर कुछ भी करें, मरते वक्त गीता सुन लेंगे, कान में कोई मंत्र बोल देगा और सब ठीक हो जाएगा। इस तरह की धोखेधड़ियां, हो सकता है आदमी की दुनिया में चलती हों, लेकिन परमात्मा की दुनिया में नहीं चल सकती हैं।
मैंने एक घटना सुनी है, एक आदमी मरणशय्या पर था। उसका सारा परिवार उसके पास इकट्ठा था। उसकी पत्नी उसके पैरों के पास बैठी थी। चिकित्सकों ने कह दिया था कि बचना असंभव है। मरने की अंतिम घड़ी आ गई थी। उस आदमी ने आंख खोली और अपनी पत्नी को पूछाः मेरा बड़ा लड़का कहां है?
पत्नी के मन में हुआ, मृत्यु के क्षण में प्रेम का स्मरण आ रहा है, मृत्यु के क्षण में प्रेम का स्मरण आ रहा है। उसने कहाः घबड़ाएं न, आपके बिस्तर के पास ही बाईं तरफ बड़ा लड़का मौजूद है।
उसने पूछाः और मेरा छोटा लड़का?
वह भी मौजूद था। पत्नी ने कहाः वह भी मौजूद है।
उसने कहाः और उससे छोटा?
उसके पांचों लड़के मौजूद थे। पांचवें लड़के को पूछने के बाद वह एकदम से
उठ कर बैठ गया और उसने कहाः इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है? पत्नी सोच रही थी कि मरते वक्त वह प्रेम के कारण स्मरण कर रहा है। वह बेचारा हिसाब लगा रहा था कि दुकान पर कोई बैठा है या सब लोग यहीं इकट्ठे हैं! जीवन भर जो दुकान सामने रही थी, वह मरते वक्त दूर नहीं हो सकती। जीवन भर जो दुकान सामने थी, वह मरते क्षण में भी सामने होगी। वही होगी। वह जो गीता पढ़ी जा रही है, वह सामने नहीं हो सकती। क्योंकि चित्त कोई आकस्मिक घटना नहीं है, एक सतत क्रम है। पूरे जीवन हम चित्त को निर्मित करते हैं। तो वह जैसा निर्मित होता है, वही उसके समक्ष होगा। इसलिए एक मरते आदमी के कान में गीता और मंत्र सुनाने से ज्यादा नासमझी की और कोई बात नहीं हो सकती। और ये ऐसे धोखे हैं जिनके कारण हम लोगों को इस तरह की बातें सिखा कर अपने जीवन में भटकने का मौका दे देते हैं।
मैं आपसे बहुत स्पष्ट यह कह दूंः धर्म का संबंध समग्र जीवन से है, समग्र जीवन से। कोई मरने के क्षण में धार्मिक नहीं हो सकता। और यह भ्रांति, यह फैलेसी इसलिए पैदा होती है कि हमने धर्म को पूरे जीवन से कभी भी संबंधित नहीं माना। कोई आदमी सुबह एक घंटे को बैठ कर अपने कमरे में बंद होकर पूजा और प्रार्थना कर लेता है और सोचता है कि मैं धार्मिक हो गया। तेईस घंटे क्या करता है वह आदमी? अगर तेईस घंटे विपरीत हैं जीवन में, तो वह एक घंटा जो धर्म में बिताया है, बिल्कुल झूठा और धोखे का है। क्योंकि तेईस घंटे चेतना जहां रहती है, एक घंटे में उससे अन्यथा नहीं रह सकती।
गंगा हिमालय से बहती है, तो कोई यह कहे कि काशी में आकर पवित्र हो जाती है, काशी के पहले पवित्र नहीं थी और काशी के बाद फिर अपवित्र हो जाती है, तो कौन मानेगा इस बात को? गंगा तो एक सातत्य है। जो गंगा काशी के पहले है, वही गंगा काशी के घाट पर है, वही गंगा काशी के आगे है। यह नहीं हो सकता कि गंगा काशी के पहले अपवित्र हो और काशी पर पवित्र हो जाए और फिर आगे अपवित्र हो जाए।
चित्त की भी एक गंगा है, चित्त की भी एक सतत धारा है। यह नहीं हो सकता
है कि एक घंटे के लिए मंदिर में जब बैठें तब वह पवित्र हो जाए और बाकी तेईस घंटे अपवित्र रहे। यह असंभव है। या तो चित्त की धारा पवित्र होती है या अपवित्र होती है, दो के बीच तीसरा कोई विकल्प नहीं है। लेकिन हम धोखा देने में होशियार हैं। और दूसरों को धोखा देने में तो हैं ही, खुद को भी धोखा देने में बहुत होशियार हैं।
एक आदमी तेईस घंटे कुछ भी करे, एक घंटे मंदिर चला जाता है। तो क्या आप सोचते हैं उस मंदिर में यह दूसरा आदमी हो जाता होगा? यह कैसे हो जाएगा दूसरा आदमी उस मंदिर में? तेईस घंटे जो यह था, वही तो उस मंदिर में प्रवेश करेगा। तेईस घंटे जो यह था, वही तो उस मंदिर में पूजा करेगा। तेईस घंटे जो

यह था, वही तो उस मंदिर में प्रार्थना करेगा। यह दूसरा आदमी कैसे हो जाएगा? चित्त कोई ऐसी बात तो नहीं है कपड़ों की भांति कि उतार कर रख दिया, और जब हुआ तब पहन लिया और जब चाहा तब उतार कर रख दिया। चित्त तो हमारी आंतरिक दशा है। इसलिए जो आदमी धार्मिक नहीं है, वह मंदिर में बैठ कर भी धार्मिक नहीं हो सकता। और जो आदमी धार्मिक है, उसे किसी मंदिर में जाने की कोई जरूरत नहीं, वह जहां है वहां धार्मिक है।
एक फकीर के बाबत मैंने सुना है, वह कोई सत्तर वर्षों तक निरंतर नमाज
के लिए मस्जिद में जाता रहा। पांचों नमाज उसने पूरी कीं। और इस डर से वह कभी अपने गांव को छोड़ कर दूसरे गांव में नहीं गया कि हो सकता है वहां मस्जिद न हो, हो सकता है नमाज चूक जाए। सत्तर वर्ष की उम्र तक यह क्रम चलता था। बीमार था तो भी गया। कोई दिन ऐसा न था कि वह अनुपस्थित रहा हो। उस गांव के लोग मस्जिद और उस फकीर को एक ही साथ सोचने लगे थे। कभी कल्पना में भी नहीं आता था कि मस्जिद बिना फकीर के भी हो सकेगी। लेकिन एक दिन सुबह लोगों ने पाया कि फकीर नहीं आया है। सिवाय इसके कि फकीर रात मर गया हो, दूसरा कोई ख्याल किसी को नहीं आया। वे सारे लोग उस फकीर के घर की तरफ गए। लेकिन वे देख कर हैरान हो गए! वह अपनी एक खंजड़ी उठाए हुए अपने झाड़ के नीचे बैठा हुआ गीत गा रहा था। वह जिंदा था; न वह बीमार था और न वह मरा था। तो उन सारे लोगों ने कहा कि क्या बुढ़ापे में नास्तिक हो गए हो? यह क्या कर रहे हो? नमाज चूक गए? सत्तर वर्ष से जो बात नहीं चूकी थी, वह आज चूक गए?
वह बूढ़ा फकीर बोलाः मैं भूल में था। मैं सोचता था कि मस्जिद में जाने
से धार्मिक हो जाऊंगा। लेकिन मैंने कभी यह ख्याल नहीं किया कि मैं जो मस्जिद के बाहर हूं, वही तो मैं मस्जिद के भीतर रहूंगा। अगर मैं बाहर अधार्मिक हूं तो भीतर धार्मिक कैसे हो जाऊंगा? यह तो कल रात ही मुझे ख्याल आया कि चौबीस घंटे की चेतना अगर परिवर्तित हो तो ही परिवर्तन हो सकता है, मस्जिद जाने से कुछ भी न होगा। और इसलिए आज से मैंने मस्जिद में जाना बंद कर दिया। और आज से मैं इस कोशिश में लगा हूं कि मैं जहां भी रहूं, वहीं मस्जिद में रहूं। अब मस्जिद में नहीं जाऊंगा।
दो तरह के लोग हैं, एक तो वे जो मंदिरों में जाएं और सोचें कि धार्मिक
हो गए, और एक वे जो चित्त को इस भांति बनाएं कि वे जहां बैठे हों, वहीं मंदिर हो। दूसरे तरह के व्यक्ति को ही मैं धार्मिक कहता हूं। वह जहां बैठा हो, वहां मंदिर हो। उसकी मौजूदगी मंदिर हो। उसकी चेतना की सतत पवित्रता, उसकी चेतना का सतत आनंद, उसकी चेतना का सतत सौंदर्य, उसकी चेतना की सतत शांति और संगीत उसे धार्मिक बनाएंगे।
इसी भ्रम ने कि हम थोड़ी देर को धार्मिक हो सकते हैं, यह भी भ्रम पैदा
कर दिया कि मरते वक्त अगर हम धार्मिक हो गए तो बात सब ठीक हो जाएगी। धार्मिक जीवन में इस बात से जितनी हानि पहुंची है, और किसी बात से नहीं पहुंची।
मनुष्य को समग्र, आमूल चेतना बदलनी होती है, पूरी चेतना बदलनी होती है। खंड-खंड और टुकड़ों-टुकड़ों में बदलाहट का कोई उपाय नहीं है। चेतना है अखंड, इकट्ठी, और उसकी धारा है सतत, उसे पूरा ही बदलना होता है।
तो जो व्यक्ति जीवन भर अपनी चेतना के जागरण में संलग्न होता है, उसकी शांति के लिए सतत प्रयासशील होता है, जहां भी है, जैसा भी है, वहीं अपनी चेतना को जागरूक, प्रबुद्ध करने में संलग्न होता है, जैसी भी घड़ियों में है, वहीं अपने मन को शांति और शून्य में ले जाने के लिए सतत ध्यानपूर्ण होता है, वही व्यक्ति धीरे-धीरे अपनी चेतना धारा को बदल लेता है। फिर वह चाहे सोता हो, चाहे जागता हो, चाहे मंदिर में बैठा हो और चाहे मधुशाला में बैठा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसकी चेतना, उसकी सतत चेतना एक क्रांति से परिवर्तित होती रहती है, गुजरती रहती है। वैसा व्यक्ति जीवन में आनंद को उपलब्ध होता है, जीवन में परमात्मा को उपलब्ध होता है, वैसा ही व्यक्ति मृत्यु के क्षण में भी परमात्मा को उपलब्ध होता है और पाता है। जो जीवन में नहीं पाया गया, वह मृत्यु के क्षण में नहीं पाया जा सकता है। जो जीवन में पाया गया, उसे मृत्यु के क्षण में खोया नहीं जा सकता है।
इसलिए जो हम जीवन में पाते हैं, उपलब्ध करते हैं अंतस में, वही मृत्यु
के क्षण में हमारा साथी होता है। बाकी धोखे की बातें हैं कि कोई आदमी ने

मरते वक्त नारायण- नारायण का नाम ले लिया, तो वह स्वर्ग चला गया। ये पापियों की ईजादें हैं। पापी कोई सस्ते रास्ते खोजना चाहते हैं कि राम-राम कर लें और मामला हल हो जाए। पाप भी करें और राम-राम लेकर छुटकारा भी हो जाए। ऐसी होशियारी की बातें हमारे पापी चित्त की ईजाद हैं। ये कोई धार्मिक चित्त की ईजाद नहीं हैं कि एक आदमी मरते वक्त--जीवन भर हत्या करे, चोरी करे, बेईमानी करे, सोया रहे--मरते वक्त राम-राम कह दे। ये कथाएं जिन्होंने गढ़ी होंगी, उनसे ज्यादा अधार्मिक लोग जमीन पर दूसरे नहीं रहे। जिन्होंने ये कथाएं गढ़ीं कि एक आदमी मर रहा है--जीवन भर का हत्यारा, बेईमान, चोर--उसके लड़के का नाम नारायण है, वह मरते वक्त अपने नारायण को बुलाता है, अपने लड़के को कि नारायण तू कहां है? और भगवान ऊपर प्रसन्न हो जाते हैं कि देखो, इसने मेरा नाम लिया। उसको स्वर्ग भेज देते हैं। ऐसे भगवान और ऐसी कथाएं और ऐसी सारी की सारी बातें इतनी झूठ हैं, इनमें रत्ती भर की भी कोई सच्चाई नहीं है।
ये किन्होंने गढ़ी होंगी? किन्होंने ईजाद की होंगी? किन्होंने ये कहानियां बनाई होंगी? ये हमारे पापी चित्त के आविष्कार हैं। हम पाप भी करना चाहते हैं और किसी सरल तरकीब से उससे छूट भी जाना चाहते हैं।
तो हमने बहुत सी सरल तरकीबें निकाली हैं। कोई राम-राम जप लेता है और सोचता है कि मामला हल हो गया। लेकिन पाप करते वक्त वह पाप-पाप जप कर मामले को हल नहीं समझता, पाप तो करता है। उस वक्त पाप का जप नहीं करता कि जप कर लें, मामला खत्म हो गया। एक आदमी की हत्या करनी है, तो बैठ कर हत्या-हत्या का जप कर लें, बात खत्म हो गई, यह वह नहीं करता। यह वह भलीभांति जानता है कि हत्या के जप करने से हत्या नहीं होगी, हत्या तो करनी पड़ेगी। हत्या तो करता है, लेकिन छूटने के लिए राम-राम जपता है। बड़ी होशियारी है। इसको कनिंगनेस, इसको चालाकी कहें या क्या कहें? चित्त कितना बेईमान है! भगवान को जपने से निपट लेना चाहता है और पाप को? पाप को करके निपटता है।
भगवान के जप से कुछ भी नहीं होगा। भगवान को भी करना ही होगा, जपना नहीं होगा। कोई आदमी भगवान होकर ही भगवान को पा सकता है, जप कर नहीं। क्योंकि पाप करके ही पाप को पाता है, तो परमात्मा को बिना किए कैसे पा सकता है? लेकिन कितनी अजीब बात है कि हम दो-चार आने की माला खरीद लेते हैं, उसके गुरिए खिसकाते रहते हैं और सोचते हैं कि धर्म हो रहा है। चूंकि हजारों साल से एक बात चलती है, इसलिए हमारी आंखें अंधी हो जाती हैं, देखने में असमर्थ हो जाती हैं कि यह क्या हो रहा है। और चूंकि सारे लोग उसको मान कर किए चले जाते हैं, इसलिए हमको स्मरण भी नहीं आता कि हम क्या पागलपन कर रहे हैं! कोई बाजार से गुरिए खरीद कर इसको खिसकाने से कोई धार्मिक होगा? कोई गुरिए न खिसकाने से पापी हो गया है क्या, जो गुरिए खिसकाने से धार्मिक हो जाएगा? क्या पाप यही है कि हम माला नहीं फेर रहे? पाप गहरा है, हमारे पूरे प्राण में घुसा हुआ है। और निकालने की तरकीब बड़ी सस्ती है कि एक माला लेकर उसको हाथ पर फेर रहे हैं। यह एब्सर्डिटी दिखाई भी नहीं पड़ती, यह नासमझी दिखाई भी नहीं पड़ती--कि इसमें क्या संगति है? इसमें क्या तुक है? इसमें क्या अर्थ है? पाप तो हमारा प्राण बना हुआ है, लेकिन धर्म हमारा चार पैसे की कोई सस्ती तरकीब पर टिका हुआ है।
इसलिए दुनिया में पाप बढ़ता गया और धर्म कम होता गया, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि धर्म हमारा धोखा है, और पाप हमारी असलियत है। पाप जैसा ही असली धर्म होना चाहिए, तो जीवन में क्रांति होती है, नहीं तो क्रांति नहीं होती। पाप जैसा ही असली धर्म चाहिए। पाप बिल्कुल असली है, ठोस, यथार्थ; और धर्म बिल्कुल काल्पनिक, हवाई। इसलिए धर्म हार जाता है, पाप जीत जाता है। और धर्म हारता चला गया रोज-रोज, और आज भी हार रहा है। और धर्म हारता है तो ये जो पागल इन सारी बातों का प्रचार करते हैं कि माला फेरो, राम-राम जपो, ऐसा करो, वैसा करो, वे और जोर से शोर मचा देते हैं कि देखो, माला कम फेरी जा रही है, इसलिए पाप बढ़ रहा है। ये लड़के माला नहीं फेरते, इसलिए पाप बढ़ता जा रहा है। दुनिया में अब लोग कम मंदिर जा रहे हैं, इसलिए पाप बढ़ रहा है। कम लोग राम-राम जप रहे हैं, इसलिए पाप बढ़ रहा है। वे यह गुहार मचाते हैं कि यह कम हो रहा है। असलियत यह है कि यह होता रहा है इसलिए पाप बढ़ा है।

पाप टूटेगा उस दिन, जिस दिन हम पाप की तरह ठोस धर्म को समझेंगे। पाप तो हमारी चेतना को बदल जाता है और धर्म हमारे हाथ में गुरिए बन जाता है। पाप तो हमारे पूरे प्राणों को आंदोलित कर देता है, घुस जाता है हमारे अचेतन चित्त तक, उसकी जड़ें पहुंच जाती हैं हमारे भीतर। और धर्म? धर्म हमारे टीके की भांति हमारे सिर पर लगा रहता है या जनेऊ की भांति गले में पड़ा रहता है, वह प्राणों तक नहीं पहुंचता। जनेऊ पहुंच भी कैसे सकता है प्राणों तक? कैसे यह हो सकता है? इसका क्या संबंध है? इसका कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन दिखाई नहीं पड़ती यह बात। अगर बहुत दिनों तक, हजारों वर्षों तक कोई बात प्रचलित रहे, तो लोकमानस उसके प्रति अंधा हो जाता है।
अरस्तू ने, जो कि पश्चिम में तर्क का और विचार का पिता समझा जाता है, उसने अपनी किताबों में ऐसी बेवकूफियां लिखी हैं जो कि उस समय प्रचलित थीं। और उसे ख्याल भी नहीं आया कि ये नासमझियां हैं। लेकिन चूंकि प्रचलित थीं, उसने लिख दी हैं। उसे ख्याल भी नहीं आया कि ये बिल्कुल गलत हैं। लेकिन हजारों साल से यूनान में चल रही थीं, वह भी उन्हीं के बीच पला था, वे उसके भी दिमाग में भर गई थीं। उसको भी दिखाई नहीं पड़ा कि यह क्या हम कह रहे हैं! उसने लिखा हैः औरतों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। क्योंकि यूनान में माना जाता था कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। असल बात यह है कि पुरुष कभी मानने को राजी ही नहीं हो सके हैं कि स्त्रियां किसी भी बात में उनके समान हो सकती हैं, दांत में भी कैसे समान हो सकती हैं! पुरुष का अहंकार यह मानने को राजी नहीं है कि स्त्रियां उसके समान हो सकती हैं किसी भी मामले में।
इसलिए पुरुषों ने जो शास्त्र लिखे हैं, उनमें स्त्रियों को मोक्ष जाने का अधिकार नहीं दिया। पहले उनको पुरुष जन्म लेना पड़ेगा, फिर वे मोक्ष जा सकती हैं। पुरुषों ने जो शास्त्र लिखे हैं, उनमें लिखा है कि स्त्रियां नरक के द्वार हैं।
बड़ी हैरानी की बात है! अगर स्त्रियां नरक के द्वार हैं, तो फिर कोई स्त्री अब तक नरक न जा सकी होगी। क्योंकि उसके लिए द्वार कहां? पुरुष तो नरक चले गए होंगे, स्त्री कहां गई होगी? अगर स्त्रियां शास्त्र लिखतीं, तो वे लिखतींः पुरुष नरक के द्वार हैं। लेकिन उन्होंने कोई शास्त्र नहीं लिखे, इस झंझट में वे नहीं पड़ीं।
अरस्तू ने यूनान में सुन रखा था कि स्त्रियों के दांत कम हैं, उसने लिख दिया। और अजीब बात थी, उसकी एक औरत नहीं थी, दो औरतें थीं उसके पास। और वह किसी भी समय श्रीमती अरस्तू को कह सकता था कि देवी बैठो, जरा मैं तुम्हारे दांत गिन लूं। लेकिन नहीं गिने। गिनने की कोई जरूरत नहीं समझी। लिख दी किताब में। बात चलती थी, सारी दुनिया कहती थी, तो इसमें शक क्या था! और कोई शक करता तो शायद नासमझ समझा जाता।
एक हजार साल बाद अरस्तू के मरने के बाद भी यह माना जाता था कि स्त्रियों के दांत कम हैं। जिस आदमी ने पहली दफा स्त्रियों के दांत गिने, लोगों ने उसको पत्थर मारे--कि तुम हमारी परंपरा तोड़ रहे हो! यह कभी हुआ है! हजारों साल से अरस्तू जैसे महान विचारक ने भी लिखा हुआ है कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। तुम्हारी स्त्री के दांतों में कोई खराबी होगी, कोई ज्यादा उग आए होंगे, बराबर कभी हो नहीं सकते।
ऐसी अंधी हो जाती है हमारी चित्त की दशा। देखने में असमर्थ हो जाते हैं, सोचने में असमर्थ हो जाते हैं। हजारों वर्ष का प्रचार हमारे प्राणों को बधिर और अंधा कर देता है। ऐसे अंधेपन में हम खड़े हैं। धर्म के नाम पर हजारों साल की नासमझियां हमारे ऊपर इकट्ठी हो गई हैं।
कल रात मैंने कहा कि मैंने एक साधु की मुंहपट्टी अलग कर ली। मुझे क्या प्रयोजन है किसी की मुंहपट्टी अलग करने से? कोई सिर पर जूता भी रखे रहे तो मुझे क्या प्रयोजन अलग करने से? अलग की इसलिए ताकि मैं देख सकूं कि यह आदमी कहीं मुंहपट्टी से बंधा हुआ तो नहीं है? तो एक मित्र को दुख हो गया होगा, वे मुंहपट्टी वाले होंगे, उन्होंने एक प्रश्न पूछा हुआ है। उन्होंने प्रश्न पूछा हुआ है कि यह तो बड़ा अन्याय किया आपने, बड़ा अनुचित किया कि किसी की मुंहपट्टी छीन ली। मुंहपट्टी तो, कोई अपनी प्रार्थना करने के लिए मुंहपट्टी बांधता है।

अब हद्द हो गई, प्रार्थना से मुंहपट्टी का क्या संबंध? ध्यान से मुंहपट्टी का क्या संबंध? ध्यान है आत्मा में जाना और मुंहपट्टी यहां बंधी हुई है। ध्यान है भीतर प्रवेश, मुंहपट्टी बाहर है। बाहर की कोई भी चीज भीतर ले जाने में समर्थ नहीं है, कोई भी चीज--न बाहर की प्रतिमा, न बाहर के शास्त्र, न बाहर का कोई और उपकरण। जो बाहर है, जो उसको पकड़ेगा, वह बाहर रुक जाएगा उसके कारण। जिसे भीतर जाना है, उसे बाहर का हर तरह का मोह छोड़ देना पड़ेगा।
लेकिन हम बड़े आश्चर्यजनक लोग हैं! एक आदमी घर-गृहस्थी छोड़ कर संन्यासी हो जाता है--घर छोड़ देता है, गृहस्थी छोड़ देता है, पत्नी और बच्चे छोड़ देता है। लेकिन एक गेरुए वस्त्रधारी संन्यासी से कहो कि मित्र, तुम गेरुए वस्त्र छोड़ दो! उसके प्राण कंप जाते हैं कि ये कैसे छोड़ सकता हूं? घर छोड़ता है, गृहस्थी, बच्चे और पत्नी, इन सबको छोड़ देता है, लेकिन गेरुए रंग के कपड़े नहीं छोड़ सकता। यह आदमी कैसा है? यह दिमाग कैसा है? क्या ये गेरुए वस्त्र और भी बहुमूल्य हैं उस संसार से जिसे यह छोड़ आया? और अगर यह गेरुए वस्त्र छोड़ने में कमजोर है, तो इसके संसार के छोड़ने का कितना मूल्य है? शायद कुछ बात और हो गई होगी। शायद यह पत्नी से नाराज रहा होगा, इसलिए छोड़ कर भागा है। क्योंकि बाहर से इसकी बुद्धि में कोई फर्क नहीं पड़ा है, बाहर की चीज छोड़ने की इसकी कोई तैयारी नहीं है।
गांधी के पास एक संन्यासी आए और उन्होंने कहा कि मैं सेवा करना चाहता हूं।
तो गांधी ने कहा कि मित्र, अगर सेवा ही करनी हो, तो पहला काम यह करना होगा कि ये गैरिक वस्त्र छोड़ देने होंगे। ये गेरुए वस्त्र छोड़ देने होंगे। क्योंकि इन वस्त्रों को लेकर लोग तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम इन वस्त्रों के साथ कैसे लोगों की सेवा कर सकोगे? तो ये तुम छोड़ दो।
उस संन्यासी ने कहाः इनको मैं छोड़ दूं? तो फिर तो मैं संन्यासी ही न रह जाऊंगा!
अब सोच लें एक संन्यासी की बुद्धि को, वस्त्र छोड़ देगा गेरुए तो संन्यासी न रह जाएगा! मतलब यह हुआ कि गेरुए वस्त्र संन्यास है? तब तो बड़ी आसान बात है, दुनिया की हुकूमतें कानून बना लें कि सारे लोग गेरुए वस्त्र पहनें। दुनिया बदल जाएगी, मोक्ष हो जाएगा, सारे लोग गेरुए वस्त्र पहनेंगे, संन्यास हो जाएगा। इतनी आसान बात इतने दिन तक हम क्यों छोड़े बैठे हैं? सारी दुनिया को गेरुए रंग से पोता जा सकता है, क्या कठिनाई है! सारे लोगों के मुंह पर कानूनन मुंहपट्टियां बंधवाई जा सकती हैं, क्या कठिनाई है! सारे लोगों को तिलक लगवाया जा सकता है, क्या कठिनाई है! अगर दुनिया ऐसे धार्मिक होती हो, तब तो बड़ा आसान रास्ता है।
लेकिन जो यह सोचता हो कि इन बातों से हम धार्मिक हो रहे हैं, उसकी बुद्धि पर दया आनी जरूरी है। धार्मिक होना बड़ी गहरी और आंतरिक क्रांति है। धार्मिक होना एकदम आत्यंतिक रूप से आंतरिक है, बाह्य से उसका कोई भी संबंध नहीं है। यह बोध होना चाहिए, फिर कोई मुंहपट्टी बांधे, गेरुआ वस्त्र पहने, कुछ न कुछ तो पहनेगा, कुछ खाएगा, पीएगा, वह जाने। लेकिन उसके ऊपर पकड़ और आग्रह, उसको प्राणों की भांति चिपकाना, उसको समझना कि उसमें सब छिपा है रहस्य और उस पर लड़ाई लड़ना। और ये सारे संन्यासी इन चीजों पर लड़ाई लड़ते रहते हैं कि कौन सी चीज ठीक है और कौन सी चीज गलत है। और उतनी सी चीज बदल जाए, तो वह आदमी संन्यासी नहीं रह जाता। तो यह कैसे छोटे मन से हमारा सारा का सारा विचार विकसित हुआ है! और इसको हम समझते हैं कि यह धर्म है।
यह धर्म नहीं है। बाहर जिनकी श्रद्धा है, बाहर जिनकी निष्ठा है, उनके जीवन में धर्म का उदय नहीं हो सकता।
पहली बात है, बाहर की निष्ठा छूट जानी और आंतरिक निष्ठा का प्रवेश। भीतर क्या है, उसकी खोज का आग्रह। और वह खोज कोई न तो एक घंटा बैठ कर कर सकता है किसी मंदिर में और न वह खोज कोई मरते वक्त कर सकता है। यह तो पूरे जीवन का समग्र उपक्रम होगा, यह तो टोटल लाइफ, वह जो पूरा हमारा जीवन है, उसके कण-कण और रत्ती-रत्ती में और श्वास-श्वास में प्रविष्ट हो जानी होगी यह बात, तो ही यह परिवर्तन हो सकता है, नहीं तो यह नहीं हो सकता।

एक फकीर से जापान में एक राजा मिलने गया। सोचा होगा उसने कि वह फकीर बैठ कर ध्यान कर रहा होगा, प्रार्थना कर रहा होगा, पूजा कर रहा होगा, पाठ पढ़ रहा होगा, भगवान की स्तुति कर रहा होगा, यह सोचा होगा। उसकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी, तो वह मिलने गया। फकीर की झोपड़ी के बाहर ही बड़ा बगीचा था और एक आदमी गड्ढे खोद रहा था। राजा ने पूछा कि मैं फलां-फलां फकीर से मिलने आया हूं, वह कहां है?
उस फकीर ने कहाः ऐसे तो यहीं और इसी वक्त उस फकीर से मिलना हो सकता है, लेकिन आपको जरा कठिनाई होगी, आप समझ न पाएंगे, इसलिए आप अंदर चल कर बैठिए, मैं फकीर को बुला कर लाता हूं।
वह राजा अंदर जाकर बैठा और थोड़ी देर बाद वही आदमी जो बाहर गड्ढे खोद रहा था, पीछे से आया और कहाः महानुभाव, मैं ही हूं वह फकीर। और वह वस्त्र वगैरह पहने हुए था साधु के।
राजा ने कहाः बड़ी हैरानी की बात है। आप ही तो गड्ढे खोद रहे थे?
उसने कहाः मैं ही गड्ढा खोद रहा था। और उस वक्त भी मैं धार्मिक था, लेकिन तुम्हारी आंखें शायद ही इस बात को देख पातीं, क्योंकि तुम्हारी आंखें वस्त्रों को देखने की आदी होंगी। गड्ढा मैं खोद रहा था, लेकिन मन मेरा परमात्मा के साथ एक था। गड्ढा तो खोद रहा था, लेकिन मन में मेरे कोई अशांति न थी। गड्ढा तो खोद रहा था, लेकिन गड्ढे खोदने के साथ मैं आत्मसात था। गड्ढा तो खोदता था, लेकिन वह मेरा ध्यान था, वह मेरा मेडिटेशन था। चित्त में कोई विचार न था, कोई विकल्प न था, सिर्फ गड्ढा ही खोद रहा था। लेकिन उसे आप न देख पाते, इसलिए मुझे यह नाटक करना पड़ा। मैं कपड़े पहन कर आ गया हूं, अब मैं संन्यासी हो गया हूं।
राजा ने कुछ समझा नहीं कि यह क्या बकवास है। उसने चारों तरफ देखा, वहां भगवान की कोई मूर्ति उस झोपड़े में न थी। उसने पूछाः कैसे फकीर हो, यहां कोई भगवान की मूर्ति भी नहीं दिखाई पड़ती!
उस फकीर ने कहाः यह कमरा बहुत छोटा है, दो के लायक यहां जगह नहीं है, यहां केवल एक ही रह सकता है। दो के लायक भी जगह कहां है! अब या तो मैं रहूं या भगवान रहें। तो मैंने सोचा कि मेरा ही रहना ज्यादा ठीक है। मैं जिंदा भगवान हूं। और एक मूर्ति को, एक मुर्दा भगवान को यहां लाकर भीड़ क्यों बढ़ाई जाए! और उसने कहाः जब दो हो जाते हैं तभी भगवान से मिलना बंद हो जाता है और जब एक ही होता है तभी भगवान से मिलना होता है। यहां मैं बिल्कुल अकेला रहता हूं तो भगवान से मिला रहता हूं और यहां कोई दूसरा हो जाता है तो सब गड़बड़ हो जाती है। तो यहां भगवान को नहीं लाया हूं ताकि भगवान से मिल सकूं। उस राजा की तो समझ में नहीं आया। उसने दूसरे दिन भगवान की एक मूर्ति भिजवा दी उस फकीर को भेंट। भेंट में मूर्ति आ गई तो वह फकीर उसे क्या करे? उसने उसे एक खूंटी पर लटका दिया और नीचे लिख दिया कि हे भगवान, अब आप आ ही गए हो तो रहो। वैसे मैं अपने में इतना लीन रहता हूं कि आपकी बहुत फिकर न कर सकूंगा, इसलिए क्षमा करना और नाराज मत हो जाना। यहां कोई पूजा-प्रार्थना न हो सकेगी, क्योंकि मैं आप में इतना खोया रहता हूं कि इस मूर्ति की फिकर करने को कौन बचा है!
कुछ दिनों बाद वह राजा वापस आया। देखा मूर्ति पर धूल जम गई है। उसने पूछाः यह क्या हुआ? यह मूर्ति की कोई सफाई नहीं की गई? कोई फिकर नहीं की गई? इस पर धूल जम गई है।
वह फकीर हंसने लगा और उसने कहा कि भगवान की फिकर अगर हमको करनी पड़े तो
यह बड़ा अहंकार हो जाएगा। भगवान तो हमारी फिकर करने वाला है। और जिस भगवान पर हमारी फिकर न करने से धूल जम जाए, जान लेना वह भगवान ही न होगा, हमारा कोई खिलौना होगा। तो मैंने जान कर धूल जमने दी है ताकि आप ठीक से देख लें कि जो भगवान अपनी धूल भी नहीं झाड़ सकता है, वह हमारी धूल क्या झड़ाएगा? जो खुद असमर्थ है, वह हमारे लिए क्या करेगा?
निश्चित ही यह हमारा बनाया हुआ भगवान है, यह कोई भगवान नहीं है। मनुष्य जो भी बनाएगा, भगवान नहीं हो सकता--चाहे वह मंदिर बनाए, चाहे मूर्तियां बनाए। मनुष्य की बनाई हुई चीज भगवान कैसे हो सकती है? मनुष्य की बनाई हुई चीज कैसे भगवान हो सकती है? मनुष्य की कोई भी बनाई हुई चीज भगवान तो हो नहीं सकती। भगवान तक ले जाने का मार्ग भी नहीं बनती। मनुष्य की बनाई

हुई किताबें, मनुष्य के बनाए हुए मंदिर, मनुष्य के बनाए हुए मंत्र, मनुष्य के बनाए हुए पूजा-पाठ, कोई भी भगवान तक ले जाने में समर्थ नहीं हैं। क्योंकि जो मनुष्य ने बनाया है, वह मनुष्य से छोटा होगा। मनुष्य अपने से बड़ी तो कोई चीज बना नहीं सकता। फिर क्या करें?
धार्मिक व्यक्ति वह है जो अपने को मिटाता है। और जिस दिन वह बिल्कुल मिट जाता है, उस दिन वह जान पाता है कि भगवान क्या है। मनुष्य के बनाने से भगवान तक नहीं पहुंचा जाता, मनुष्य अपने को मिटाता है, मिटाता चलता है। धीरे-धीरे एक वक्त आता है कि वह मिट जाता है, लीन हो जाता है, खो जाता है, उसकी अपनी कोई सत्ता, कोई अस्मिता, कोई अहंकार नहीं रह जाता। जिस दिन मनुष्य पूरी तरह मिट जाता है, उस दिन वह जानता है उसे, जो भगवान है, जो सत्य है, जो परमात्मा है। इसलिए न तो पूजाएं ले जा सकती हैं और न प्रार्थनाएं।

एक मित्र ने पूछा है कि पूजा कैसे करें? प्रार्थना कैसे करें?

कैसे भी करें, हर तरह की की गई प्रार्थना व्यर्थ है। आप ही तो करेंगे
न? आप ही तो बनाएंगे न वह पूजा? आप ही तो प्रार्थना के शब्द जोड़ेंगे न? आपकी प्रार्थना, आपकी पूजा आपको कहां ले जाएगी? और आपकी बनाई हुई चीज आपको अपने ऊपर कैसे उठाएगी? जो आपकी बनाई हुई है, वह आपको अपने ऊपर नहीं उठा सकती। उससे कोई अंतर पड़ने वाला नहीं है। उससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। सिर पटकें, चिल्लाएं और रोएं, उससे कुछ होने वाला नहीं है।
इसलिए सवाल पूजा और प्रार्थना का नहीं है। सवाल है स्वयं के भीतर उस सूत्र को खोजने का जो कि मौजूद है। जिसे कहीं से लाना नहीं है। अगर हम जाग सकें, शांत हो सकें, तो वह सूत्र मौजूद है, वह जान लिया जा सकता है। भगवान को गढ़ना नहीं है, बनाना नहीं है, वह मौजूद है। सिर्फ आंख खोलनी है, सिर्फ जागना है। लेकिन हम आंख बंद किए रहते हैं कि कौन सी पूजा करें? कौन सी प्रार्थना करें?
आंख बंद किए कुछ भी नहीं हो सकता है। जैसा मैंने सुबह आपको कहाः यांत्रिक, सोया हुआ आदमी कुछ भी करे, उससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। वह जो भी करेगा, वह अहितकर होगा। वह जो भी करेगा, उसके हाथ से अच्छी चीजें भी बुरे परिणाम लाएंगी, क्योंकि वह आदमी सोया हुआ है। वह जो भी करेगा, वह एक मंदिर भी बनाएगा तो हमें दिखाई पड़ेगा।...

इस संबंध में भी कुछ मित्रों ने पूछा है कि आपने कहा कि सब चीजें यांत्रिक हैं। लेकिन दान? दान तो यांत्रिक नहीं है!

दान भी यांत्रिक है। सोया हुआ आदमी है, तो वह जो भी करेगा वह यांत्रिक होगा। एक आदमी मंदिर बनाए, तो हम सोचते हैंः कितना बड़ा काम कर रहा है। लेकिन आपको पता है, आज तक आदमियों ने भगवान के लिए मंदिर नहीं बनाए, अपने अहंकार के लिए मंदिर बनाए हैं। भगवान है नंबर दो, नंबर एक बनाने वाला है। इसलिए पहले, भगवान तो अंदर बैठे रहते हैं, दरवाजे पर उसी का नाम लिखा रहता है जो बनाने वाला होता है।
इंग्लैंड में थे गांधी। गांधी के एक मित्र बर्नार्ड शॉ को मिलने गए। बर्नार्ड शॉ से कहा कि आप महात्मा गांधी को तो जानते ही होंगे?
बर्नार्ड शॉ ने कहा कि भलीभांति जानता हूं।
मित्र ने पूछा गांधी के कि आप महात्मा को, गांधी को महात्मा मानते हैं
या नहीं?
बर्नार्ड शॉ ने कहाः जरूर मानता हूं, लेकिन नंबर दो। नंबर एक तो मैं हूं। दुनिया में दो महात्मा हैं, एक मैं और एक यह तुम्हारा मोहनदास करमचंद गांधी। लेकिन नंबर एक मैं हूं। यह नंबर दो है। तो जाओ, कह देना अपने महात्मा को कि तुम नंबर दो, नंबर एक का महात्मा बर्नार्ड शॉ है।
उनको बहुत दुख हुआ। क्योंकि गांधी का शिष्य अपने महात्मा को बड़ा समझेगा, दूसरे को कैसे बड़ा समझ सकता है! अपने महात्मा को सभी बड़ा समझते हैं, क्योंकि उसको बड़ा समझने में हम भी बड़े हो जाते हैं। हमारा महात्मा बड़ा यानी हम भी बड़े। बहुत दुख लगा होगा, इस बात से नहीं कि गांधी छोटे हो

गए, इस बात से कि शिष्य छोटे महात्मा का शिष्य हो गया। लौट कर गांधी को कहा कि बड़े दुख की बात है, यह आदमी बड़ा अहंकारी मालूम होता है, बर्नार्ड शॉ। अपने ही मुंह से कहने लगा कि मैं नंबर एक का महात्मा हूं और गांधी नंबर दो। गांधी हंसे और उन्होंने कहाः वे बहुत सीधे और साफ आदमी मालूम होते हैं। दिल में तो हर आदमी को यही होता है कि नंबर एक मैं हूं। लेकिन कहने की हिम्मत कम लोगों में होती है। भीतर-भीतर हर आदमी सोचता है कि नंबर एक मैं हूं।
आप अपने मन में पूछना बहुत गहरे में कि भगवान है नंबर एक कि नंबर एक आप? आप अगर शांति से खोजेंगे, आप पाएंगेः आपके भगवान से भी आगे आप हैं। नंबर एक आप हैं, नंबर दो भगवान है।
एक मंदिर बन रहा था तो मैं उसके पास से निकला, मैंने पूछाः उस गांव में बहुत मंदिर हैं, वह गांव ही मंदिरों का है। तो मैं हैरान हुआ कि उसमें इतने मंदिर हैं कि पूजा करने वाले खोजने मुश्किल हो गए हैं, अनेक मंदिर बिना पूजा के पड़े हैं और अनेक भगवान बिल्कुल उपेक्षित हैं, नया और मंदिर क्यों बनने लगा? उस मंदिर को बनाने वाला जो बूढ़ा कारीगर था, उसके पास मैं गया और मैंने पूछा कि नया मंदिर क्यों बन रहा है?
उसने कहाः इसी मंदिर का राज पूछते हो कि सभी मंदिरों का? क्योंकि मैंने बहुत जिंदगी में मंदिर बनाए। पहले मैं भी सोचता था कि मंदिर भगवान के लिए बनते हैं, लेकिन धीरे-धीरे समझ में आया कि कोई मंदिर भगवान के लिए नहीं बना है।
मैंने पूछाः फिर किसलिए बनते हैं?
वह मुझे पीछे ले गया, वहां जहां मूर्तियां गढ़ी जा रही थीं, जहां पत्थर खोदे जा रहे थे। और पीछे ले गया, और आखिर में एक पत्थर पर उसने जाकर कहाः इसलिए। एक पत्थर वहां खुद कर तैयार हो गया था, उस पर बनाने वाले का नाम लिखा हुआ था। अभी भगवान की मूर्तियां बन रही थीं, लेकिन वह पत्थर तैयार हो चुका था।
मंदिर बनते हैं मंदिर बनाने वालों के अहंकार के लिए। दिखता है ऊपर से
कि यह आदमी मंदिर बना रहा है, धार्मिक काम कर रहा है, लेकिन सोया हुआ आदमी धार्मिक काम कर नहीं सकता। मंदिर बनाएगा अपने लिए। लेकिन अगर वह अपनी ही मूर्ति उसके अंदर रख दे तो कोई पूछेगा नहीं, दूसरे लोगों के अहंकार को चोट लग जाएगी। उसके मंदिर की हत्या हो जाएगी। इसलिए अपने को पीछे रखता है, भगवान को आगे रखता है। भगवान को आप सिर झुकाते हैं। भगवान की आड़ में उसको भी सिर झुक जाता है। भगवान की आड़ में वह अपने अहंकार की तृप्ति करता रहता है।
और इसलिए तो सारे मंदिर झगड़े के अड्डे बन जाते हैं, क्योंकि जहां अहंकार है, वहां झगड़ा है, वहां अशांति है, वहां उपद्रव है। और फिर दौड़ चलती है कि दूसरे का मंदिर हमसे छोटा रहे, हमारा मंदिर उससे बड़ा हो। बड़े मंदिरों की दौड़ चल रही है सारी दुनिया में। नहीं तो इतने मंदिरों की क्या जरूरत है? पूजने वाले मिलते नहीं और मंदिर बना लेते हैं। यह कौन मंदिर बनवा रहा होगा? अगर जैन एक मंदिर बना लेते हैं, तो हिंदुओं को बनाना जरूरी हो जाता है। अगर श्वेतांबर एक मंदिर बना लेते हैं, तो सामने ही दिगंबरों को एक मंदिर बनाना जरूरी हो जाता है। अगर मंदिर खड़े हो जाते हैं तो मस्जिद बननी चाहिए, मस्जिद बन गई तो गिरजा बनना चाहिए और एक से एक बड़ा बनना चाहिए। क्यों? यह बड़े की दौड़ क्या है? यह अहंकार पीछे काम कर रहा है--मैं।
पूछा है कि दान तो यांत्रिक नहीं है!
सब यांत्रिक है। दान किसलिए करते हैं, यह सोचा है? और जो लोग समझाते हैं कि दान करो, वे क्या समझाते हैं? वे समझाते हैं कि यहां दान करो तो आगे जन्म में मिल जाएगा। यहां दान करो तो वहां ऊपर उपलब्ध होगा। यहां एक पैसा चढ़ाओ तो भगवान वहां एक करोड़ पैसे देंगे। इस लोभ में दान किया जाता है। यह लोभ है पीछे। लोभ बिल्कुल यांत्रिक है। यह ग्रीड है पीछे। यहां हमने एक बड़ा मकान बना लिया है, स्वर्ग में भी बड़ा मकान होना चाहिए। तो उसके लिए दान करना जरूरी है। एजेंसीज खुली हुई हैं सारी दुनिया में। भगवान की तरफ से एजेंट्स बैठे हुए हैं जमीन पर--पंडे हैं, पुरोहित हैं, पादरी हैं, पोप हैं, साधु-संन्यासी हैं। वे समझा रहे हैं कि दान करो और वहां लो। पोप तो यूरोप

में टिकटें बेचता रहा स्वर्ग के लिए। जो लोग टिकटें खरीद लेंगे, उनके लिए वहां रिजर्वेशन, वहां सुरक्षा होगी। वहां उनके लिए जगह निश्चित मिलेगी।
यह नहीं होगा कि भीड़-भाड़ में क्यू लगाए खड़े हैं और घंटों लग गए, मर कर पहुंच गए और स्वर्ग में जगह नहीं मिल रही है, भीड़-भाड़ ज्यादा है। जो यहां पोप से टिकट खरीद लेगा, उसके लिए सुनिश्चित व्यवस्था रहेगी।
कैसी-कैसी बेवकूफियां चलती रहती हैं! और आदमियों ने टिकटें खरीदीं। करोड़ों रुपयों की टिकटें थीं, छोटी टिकटें नहीं थीं। गरीब आदमी को तो मिल नहीं सकती थीं। अमीर लोगों ने टिकटें खरीदीं।
हमारा सारा दान टिकट ही खरीदना है। एक गाय हम दान कर दें ब्राह्मण को, वैतरणी पार करवा देगी वह गाय। वहां तकलीफ न होगी। यहां दान देंगे, वहां मिल जाएगा, अगले जन्म में मिल जाएगा। यह इनवेस्टमेंट है, यह दान-वान नहीं है। जैसे एक आदमी दुकान में पैसा लगाता है दस हजार, ताकि बीस हजार मिल जाएं। ऐसे एक आदमी दस हजार दान में लगाता है कि बीस हजार का पुण्य मिल जाए, कोई तरकीब हाथ में आ जाए। तो अगर पैसा देने से पुण्य मिलता हो, धर्म मिलता हो, तो जिनके पास पैसे हैं वे मौका छोड़ेंगे? और लोगों के पास इतना पैसा है कि जमीन पर खरीदने के लिए चीजें नहीं रह गईं, तो अब वे स्वर्ग में खरीदते हैं, क्या करें? जमीन पर खरीदने के लिए चीजें नहीं हैं।
अब राकफेलर या मॉर्गन, या अमेरिका के करोड़पति, अरबपति, उनके पास इतना पैसा है कि समझ में नहीं आता कि क्या करें इसका? इसका कोई उपयोग नहीं रहा। एक सीमा पर जाकर पैसा व्यर्थ हो जाता है। क्या करिएगा? सोना खाइएगा, चांदी खाइएगा, क्या करिएगा? तो अब राकफेलर क्या करे? पैसा है बहुत, अब दान करता है। क्योंकि अगर होगा कहीं कोई भगवान, होगा कहीं स्वर्ग, तो वहां के लिए भी इंतजाम किए लेता है। आप यहां भी पिछड़ जाओगे, राकफेलर वहां भी आगे रहेगा। याद रखना, आप यहां पीछे पड़ जाओगे, बिड़ला जी वहां भी आगे रहेंगे। उन्होंने इतने मंदिर बनवाए, इतना दान किया। गरीब आदमी यहां भी पीछे रहेगा, स्वर्ग में भी पीछे रहेगा। क्योंकि धन से धर्म भी खरीदा जा सकता है।
मैं आपसे निवेदन करता हूंः जो धर्म धन से खरीदा जा सकता है, वह धर्म नहीं है। धर्म खरीदा जाता है प्राणों से, धन से नहीं। धर्म खरीदा जाता है आत्मा से, धन से नहीं। और बड़े मजे की बात तो यह है कि धन जिसे खरीदना होता है, उसे धर्म खोकर खरीदना होता है। यह सर्किल बड़ा अजीब है। धन खोजता है धर्म खोकर! धर्म खोकर जिस धन को इकट्ठा करता है, होशियारी बड़ी अजीब है, उसी धन से वह धर्म भी खरीद लेता है। धन इकट्ठा नहीं हो सकता धर्म खोए बिना। आदमी खा ले, कमा ले, कपड़े पहन ले, यह दूसरी बात है। लेकिन अरबों रुपये इकट्ठे नहीं हो सकते बिना धर्म खोए। दूसरों को अशांत और पीड़ित किए बिना धन इकट्ठा नहीं हो सकता। शोषण किए बिना धन इकट्ठा नहीं हो सकता। धन इकट्ठा होने की तरकीबें शोषण ही हैं। तो धन तो इकट्ठा होता है धर्म खोकर और फिर उसी धन से पंडे-पुजारी, साधु-संन्यासी हमें समझा रहे हैं कि वापस धर्म खरीद लो। खून में भीगा हुआ है सारा धन और उसी धन से फिर धर्म भी खरीदा जाता है और भगवान भी खरीदे जाते हैं। ये भगवान भी झूठे और ईजाद किए हुए हैं, यह धर्म भी झूठा और ईजाद किया हुआ है।
दान कौन करेगा? और जिस मन को यह ख्याल आ गया है कि मैं दान दूं, वह क्या
धन इकट्ठा कर सकेगा? जिसको यह ख्याल आ गया है कि मैं दान दूं, वह धन इकट्ठा कर सकेगा? एक आदमी एक करोड़ रुपये इकट्ठा कर लेता है और एक लाख रुपये दान कर देता है, और वाह-वाह और सारे लोग कहते हैं--बड़ा धार्मिक है, बड़ा दानवीर है। यह करोड़ रुपया इकट्ठा करने में इसकी धर्म-बुद्धि कहीं भी बाधा नहीं बनती और लाख रुपये यह दान कर देता है और धर्मवीर भी हो जाता है और दानवीर भी हो जाता है और सारी स्वर्ग की सारी संपत्ति भी कमा लेता है।
यह दान बिल्कुल ही यांत्रिक है, इसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। सच बात यह है कि जब तक हमारा चित्त सोया हुआ है, हम कुछ भी करें, जब तक हम बिल्कुल मशीन की तरह हैं, तब तक हम कुछ भी करें, हमारे किसी किए हुए का कोई मूल्य नहीं हो सकता। इसलिए मेरा जोर इस बात पर हैः जागना चाहिए चित्त। न तो दान काम करेगा, न प्रार्थना, न पूजा, न सेवा।

एक मित्र ने और पूछा है कि हम सेवा करें? कल वे मेरे पास आए थे, तो उन्होंने कहा कि सेवा तो धर्म है। हम गरीबों की सेवा करें? बीमारों की सवा करें?

अंतिम रूप से इस पर चर्चा करूंगा, फिर और प्रश्न बचेंगे, उनकी रात बात करूंगा।
मैं आपसे कहूंः सेवा भी धर्म नहीं है। धार्मिक व्यक्ति में सेवा हो सकती है, लेकिन सेवक धार्मिक है, इस बात के समझने की भूल में मत पड़ जाना। जिस व्यक्ति के चित्त में धर्म है, उसके जीवन में सेवा हो सकती है। लेकिन जो सेवा करने निकल पड़ा, उसके जीवन में धर्म हो जाएगा, इस भूल में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जिस व्यक्ति का चित्त शांत होगा, आनंदित होगा, प्रेम से परिपूर्ण होगा, उसका सारा जीवन सेवा बन जाता है। लेकिन एक आदमी सेवा करने निकल पड़े और सोचता हो कि इस सेवा से मेरा चित्त आनंदित हो जाएगा, तो गलती में है। सेवा भी अहंकार का पोषण बनती है।
इसलिए आपने देखा होगा, सेवकों का अहंकार धनियों के अहंकार से भी ज्यादा होता है। मैं सेवक हूं, यह इतनी जोर की बात, उसके चारों तरफ वह घोषणा होती रहती है, जिसका कोई हिसाब नहीं।
मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है।
एक पादरी ने एक स्कूल के बच्चों को सेवा की शिक्षा दी। और उनसे कहा कि सर्विस, सेवा ही धर्म है। तुम रोज जरूर थोड़ी न बहुत सेवा किया करो। बिना सेवा किए कोई आदमी भगवान को नहीं पा सकता।
उन बच्चों ने पूछाः कैसी सेवा?
उसने कहा कि कोई नदी में डूबता हो तो बचाना चाहिए, कोई गिर पड़े तो उठाना चाहिए, कोई बूढ़ा आदमी रास्ता पार न कर सकता हो तो रास्ता पार कराना चाहिए। कुछ न कुछ सेवा का काम रोज करना चाहिए।
सात दिन बाद वह वापस आया। तो उसने बच्चों से पूछाः तुमने कोई सेवा का कृत्य किया?
तीन बच्चों ने तीस बच्चों में से हाथ उठाए। पादरी खुश हुआ, क्योंकि जमाने बदल गए हैं, तीस बच्चों में से तीन भी मान लें तो बहुत। बहुत खुश हुआ। उसने कहाः कोई हर्ज नहीं, यह भी संख्या काफी है, तीन बच्चों ने बात मान ली। बताओ मेरे बेटो, तुमने क्या सेवा की?
एक लड़के ने कहाः मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। बड़ी भीड़ थी, बड़ा टै्रफिक था, बड़ी कठिनाई थी, बड़ी मुश्किल से करवा पाया। लेकिन मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
उस पादरी ने उसकी पीठ ठोंकी और कहाः धन्यवाद, बहुत अच्छा तुमने किया। ऐसा सदा करो। दूसरे से पूछाः तुमने क्या किया?
उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई। बड़ी भीड़ थी, बड़ा टै्रफिक था।
उस पादरी को थोड़ा कुछ ख्याल हुआ। फिर उसने सोचा, हो सकता है इसे भी कोई बूढ़ी औरत मिल गई हो, बूढ़ी औरतों की कोई कमी तो है नहीं। उसने कहाः तुमने भी ठीक किया।
उसने तीसरे से पूछाः तुमने क्या किया?
उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई।
तब उसे थोड़ी हैरानी हुई। उसने कहाः तुम तीनों को तीन बूढ़ी औरतें मिल गईं?
वे तीनों एक साथ बोलेः तीन नहीं, बूढ़ी औरत तो एक ही थी, हम तीनों ने इकट्ठे ही पार करवाई।
उसने कहाः हद्द हो गई! क्या बहुत ही बूढ़ी थी? क्या चल-फिर भी नहीं सकती थी? इसलिए क्या तुमको उठा कर ले जाना पड़ा कि तीन-तीन आदमियों की जरूरत पड़ी? वे तीनों बोलेः नहीं, यह बात नहीं है। वह असल में सड़क पार करना ही नहीं चाहती थी। हमको बड़ी मुश्किल में पार करवानी पड़ी। उसको उस तरफ जाना ही नहीं था, तो बड़ी हुज्जत और बड़ी परेशानी से हम पार करवा पाए। लेकिन आपने कहा था तो हमने सेवा की। हमने पार करा दी।

ये जो दुनिया के सेवक हैं, ये अक्सर ऐसे ही काम करते हैं और करते रहे हैं। और इन सेवकों से ज्यादा मिस्चीफ मांगर्स दुनिया में और कोई भी नहीं है। इनसे ज्यादा उपद्रवी और कोई भी नहीं है। इनसे दुनिया का जितना अहित हुआ है, उसका ठिकाना नहीं है, उसकी गणना नहीं की जा सकती। इनको इससे कोई मतलब नहीं है कि क्या हो रहा है। इनको सेवा करनी है। क्योंकि सेवा धर्म है और सेवा से मोक्ष मिलने वाला है। तो ये सेवा किए जाते हैं, बिना इस बात की फिकर किए कि उस सेवा से क्या हो रहा है। उसके क्या परिणाम हो रहे हैं, आदमी के जीवन में क्या हो रहा है उससे। लेकिन ये सेवा किए जाते हैं। हजार तरह की सेवाएं सेवक करते हैं। दुनिया का क्या अहित हो रहा है, इसका उन्हें कोई पता नहीं।
एक सेवक है, वह आपके पास आता है और कहता हैः हिंदू धर्म को संगठित करना है, मैं तैयार हूं। हिंदू धर्म संगठित होना चाहिए। और पता नहीं हिंदू धर्म संगठित हो जाएगा तो मुसलमानों की हत्या के सिवाय और क्या करेगा? एक मुसलमान है, वह इस्लाम के लोगों से जाकर कहता हैः इस्लाम खतरे में है, मैं धर्म की सेवा करना चाहता हूं। इकट्ठे हो जाओ मुसलमानो। वह उनको इकट्ठा करवा देता है, पाकिस्तान बनवा देता है, लाखों लोगों को कटवा देता है। वह सेवक का काम है, उसने इस्लाम की सेवा कर दी।
सारी दुनिया में क्रिश्चिएनिटी की सेवा करने वाले पादरी घूम रहे हैं लाखों की तादाद में। वे जो सेवा कर रहे हैं, उससे जिस दिन मुक्ति हो जाएगी, दुनिया का उस दिन कितना हित होगा, नहीं कहा जा सकता। हजार तरह की सेवा चल रही है और हर आदमी यह कह रहा है कि हम सेवा करना चाहते हैं मनुष्यता की। और उसे पता भी नहीं है अभी खुद की मनुष्यता का, तो वह दूसरे की क्या सेवा करने जाएगा! उसे खुद पता भी नहीं कि क्या है जीवन का सत्य, और वह सेवा करने निकल पड़ा है। उससे खतरे होंगे।
दुनिया में हर कौम की सेवा करने वाले लोग हैं। राष्ट्रीय नेता हैं, वे कहते हैं, हम देश की सेवा करते हैं। राष्ट्रीय नेताओं के कारण सारी दुनिया में युद्ध होते रहे हैं और हो रहे हैं। जहां-जहां नेशनलिज्म है, जहां-जहां राष्ट्र का भाव है, वहां-वहां युद्ध होगा। लेकिन हमारे मुल्क में आकर एक नेता हमसे कहता हैः हम देश की सेवा कर रहे हैं--झंडा ऊंचा रहे हमारा! हम सेवा कर रहे हैं। हमको पता नहीं कि जब तक, झंडा ऊंचा रहे हमारा, ऐसा कहने वाले लोग होंगे, तब तक दुनिया में युद्ध होगा। क्योंकि दूसरी कौम भी यही कहती है कि झंडा ऊंचा रहे हमारा। अब दो झंडे एक बराबर ऊंचे नहीं रह सकते। कोई थोड़ा ऊंचा हुआ तो हमारा उसको नीचा करेगा। तो झगड़ा होगा।
ये राष्ट्र के गीत गाने वाले सेवक युद्ध की बुनियाद हैं। यह समझाने वाले कि भारत महान देश है, यह समझाने वाले कि चीन महान देश है, यह समझाने वाले कि अमेरिका महान है, रूस महान है, ये सारे खतरनाक लोग हैं। और ये सेवा कर रहे हैं। और हम इनकी सेवा ले रहे हैं और इनके पैर छू रहे हैं कि ये बहुत बड़े सेवक हैं। दो महायुद्ध लड़वाए इन्होंने अभी-अभी। दस करोड़ लोगों की हत्या करवाई दो महायुद्धों में इन सेवकों ने। राष्ट्रीय सेवक!
जमीन पर पांच हजार साल के इतिहास में पंद्रह हजार लड़ाइयां लड़ी गई हैं। पंद्रह हजार युद्ध किसने करवाए? इन राजनैतिक सेवकों ने। और दिखाई हमें पड़ता नहीं कि सेवक क्या कर रहे हैं, ये क्या समझा रहे हैं, ये क्या पकड़ा रहे हैं, ये कौन से पागलपन और कौन से रोग के कीटाणु फैला रहे हैं। इनको सेवा करनी है। हम खुश होते हैं कि बड़ी सेवा कर रहे हैं। उस सेवा के जाल में क्या निकलता है आखिर में, उसका कोई हिसाब नहीं रह जाता कि क्या हो रहा है।
जिन्ना ने मुसलमानों की सेवा कर दी, हिंदुस्तान की सेवा कर दी, इस्लाम
की सेवा कर दी, और जब तक चलेगी यह सेवा न मालूम सैकड़ों वर्षों तक इस जमीन के दो टुकड़े आपस में लड़ेंगे और न मालूम कितने लोगों की हत्या होगी। और सेवक थे जिन्ना। कर गए सेवा, उन्होंने कर दी सेवा इस्लाम की। अब यह चलेगा। अब बहुत कठिन है कि ये दो टुकड़े आपस में कब हत्या बंद करेंगे एक-दूसरे की, यह बहुत कठिन है। यह सेवा का फल हो गया। असल में सोए हुए नेता और सोए हुए लोग और सोए हुए सेवक जो कुछ भी करेंगे, उससे अहित होगा, हित नहीं हो सकता।

एक ही हित है जीवन में, वह है जागरण। एक ही मंगल है जीवन में, वह है प्रबुद्ध चेतना। और उस जागे हुए चित्त से जो भी निकलता है, उससे हित होता है, मंगल होता है। और सोए हुए चित्त से जो भी निकलता है, उससे अहित होता है। चाहे वह सेवा हो, चाहे प्रेम, चाहे धर्म, चाहे पूजा, चाहे प्रार्थना।
मेरा जोर इस बात पर है, यह सवाल है कि आप क्या हैं? क्योंकि आपके होने
से आपका करना निकलता है। अगर आप भीतर गलत हैं, तो आप जो भी करेंगे वह गलत होगा। और अगर आप भीतर सही हैं, तो आप जो भी करेंगे वह सही होगा। क्योंकि कोई और अन्यथा हो नहीं सकता। और भीतर से निकलता है हमारा जीवन, इसलिए वह भीतर परिवर्तित हो जाना चाहिए।
और भीतर के परिवर्तन के लिए हम इन दिनों में विचार करते हैं। आज रात
उस संबंध में और सोचेंगे कि वह भीतर का परिवर्तन कैसे हो जाए। ये जो सारे प्रश्नों के जो उत्तर मैं दे रहा हूं, इसी ख्याल से ताकि आपकी नजर से यह बात हट ही जाए, कि बाहर का कोई परिवर्तन आत्मिक क्रांति नहीं बन सकता। शायद कई दफा मेरी बात सुन कर आपको ऐसा लगता हो कि यह भी गलत, यह भी गलत,
वह भी गलत, तो फिर हम क्या करें?
मैं निश्चित जान कर कह रहा हूं कि यह सब गलत है। अगर ये सब बातें आपको गलत दिखाई पड़ जाएं तो ही वह दिखाई पड़ सकता है जो ठीक है और सही है। लेकिन जब तक हम कोई गलत बात को पकड़े रहें, तब तक वह सही बात दिखाई नहीं पड़ सकती। एक बार हो सकता है मेरे प्रश्न आपको दुख पहुंचाते हों, मेरे उत्तर दुख पहुंचाते हों, मन को चोट लग जाती हो, ऐसा लगता हो कि आप जो भी मानते हैं उसको मैं गलत कह रहा हूं। उसको जान कर गलत कह रहा हूं और चोट पहुंचाना चाहता हूं, क्योंकि चोट पहुंच जाए तो चिंतन पैदा हो सकता है। और चोट न पहुंचे तो चिंतन कभी पैदा नहीं होता।
तो जो मैं कह रहा हूं, उसे सोचें। यह कोई व्याख्यान नहीं है, कोई भाषण नहीं है कि मैं आया और मैंने व्याख्यान दिया और आपने ताली बजाई। दूसरे महात्मा काफी हैं, उनके लिए ताली बजाइए और सुनिए। यह कोई व्याख्यान नहीं है, कोई भाषण नहीं है, यह मुझे कोई रोग नहीं है कि आपको कुछ बातें समझाऊं और आप ताली बजाएं, और ताली बजा कर सुन कर उसका आनंद लें। मेरे हृदय में मुझे कुछ दिखाई पड़ता है, वह आपसे निवेदन कर रहा हूं, प्रार्थना कर रहा हूं कि आप उस पर सोचें। आप सुनने वाले, मैं बोलने वाला, ऐसा मामला नहीं है। ऐसा कोई संबंध मेरे और आपके बीच नहीं है। मैं गुरु और आप शिष्य, ऐसा कोई संबंध नहीं है। मैं एक मित्र की हैसियत से, मुझे जो दिखाई पड़ता है, वह आपसे कह रहा हूं। एक मित्र की हैसियत से उसे सोचें, विचार करें, तो हो सकता है कोई बात आपको भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाए। और अगर कोई बात दिखाई पड़नी शुरू हो जाए तो आपके भीतर वह द्वार खुल जाएगा जो जीवन में क्रांति लाता है और परिवर्तन लाता है।
और बहुत से प्रश्न हैं, उनकी रात को मैं आपसे चर्चा करूंगा। दोपहर की बैठक समाप्त हुई।

अपने माहिं टटोल
सातवां प्रवचन

तुम ही हो परमात्मा

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से आज के प्रश्नोत्तरों की यह चर्चा शुरू करूंगा।
एक बहुत अंधेरी रात थी और एक रेगिस्तानी पहाड़ी पर एक छोटी सी सराय में
एक बड़ा काफिला आकर रुका। उस काफिले में कोई सौ ऊंट थे। व्यापारी यात्रा कर रहे थे और थके-मांदे आधी रात को उस छोटी सी पहाड़ी सराय में पहुंचे थे विश्राम को। उन्होंने जल्दी-जल्दी खूंटियां गाड़ीं, ताकि वे अपने ऊंटों को बांध सकें, और फिर विश्राम कर सकें। लेकिन आखिरी ऊंट को बांधते वक्त उन्हें पता चला कि उनकी खूंटियां और रस्सियां कम पड़ गई हैं। निन्यानबे ऊंट तो बंध गए थे, एक ऊंट को बांधने के लिए रस्सी और खूंटी खो गई थी। उस ऊंट को उस अंधेरी रात में बिना बंधा छोड़ना खतरनाक था, भटक जाने का डर था।
तो वे सराय के बूढ़े मालिक के पास गए और उन्होंने कहाः बड़ी कृपा होगी अगर एक ऊंट के बांधने के लिए खूंटी और रस्सियां मिल जाएं। हमारी खो गई हैं।
उस बूढ़े मालिक ने कहाः रस्सियां और खूंटियां हमारे पास नहीं हैं, लेकिन हम एक ऐसी तरकीब जानते हैं कि ऊंट बिना रस्सी के और खूंटी के भी बांधा जा सके। तुम जाओ, खूंटियां गाड़ दो और रस्सियां बांध दो और ऊंट को कहो कि बैठ जाओ। वह सो जाएगा।
वे लोग हंसने लगे।
उन्होंने कहाः आप पागल तो नहीं हैं! खूंटियां और रस्सियां होतीं तो
हम खुद ही न गाड़ देते और बांध देते। कौन सी खूंटी बांध दें?
उस बूढ़े आदमी ने कहाः उस खूंटी को गड़ाओ जो कि तुम्हारे पास नहीं है, लेकिन आवाज ऐसे करो जैसे कि खूंटी गाड़ी जा रही है। जमीन खोदो, खूंटी गाड़ो, झूठी खूंटी सही, नहीं है, कोई फिकर नहीं। अंधेरे में ऊंट को क्या दिखाई पड़ेगा कि तुम असली खूंटी गाड़ते हो कि झूठी। गाड़ दो खूंटी। गले पर हाथ डालो और जैसे रस्सी बांधते हो, बांध दो रस्सी। कोई हर्ज नहीं रस्सी असली है कि नकली। और बांध दो उसे और कह दो कि बैठ जाओ, सो जाओ। जब कि निन्यानबे ऊंट सो चुके हैं तो यह बहुत मुश्किल है कि सौवां ऊंट भाग जाए। वह सो जाएगा। अरे, आदमी तक भीड़ के पीछे चलता है तो यह तो ऊंट है।
मजबूरी थी। खूंटी थी नहीं, मान लेनी पड़ी बात। मजबूरी में, विश्वास तो नहीं आया उन लोगों को कि ऐसी झूठी खूंटियों से ऊंट बंध जाएगा। लेकिन मजबूरी थी, खूंटी थी नहीं, बांधना जरूरी था। सोचा, देखें, प्रयोग कर लें। वे गए, उन्होंने वह खूंटी गाड़ी जो कहीं भी नहीं थी और उन्होंने वे रस्सियां बांधीं जिनका कोई अस्तित्व न था। और जब उन्होंने ऊंट से कहाः बैठ जाओ! तो वे हैरान हो गए, ऊंट बैठ गया। वे हंसते हुए और मजाक करते हुए जाकर सो गए।
सुबह हुई, वे गए, उनका काफिला नई यात्रा करने को शुरू हुआ। ऊंट खोल दिए गए, खूंटियां निकाल ली गईं, रस्सियां निकाल ली गईं। लेकिन जिनकी बंधी थीं उन्हीं की तो। जिसकी बंधी ही नहीं थी, उसकी खूंटी क्या निकालते, रस्सी क्या निकालते! तो निन्यानबे ऊंट जो बंधे थे, उन्होंने उनकी खूंटियां निकाल लीं, रस्सियां निकाल लीं और काफिला चलने को हो गया। लेकिन सौवां ऊंट उठने को राजी न हुआ। वे बड़े परेशान हो गए कि इसको क्या हो गया? वे उसे बहुत धक्के देने लगे और चोट करने लगे, लेकिन ऊंट तो उठता नहीं था। वे घबड़ाए। शक तो उन्हें रात में भी हुआ था कि यह बूढ़ा सराय का मालिक कोई गड़बड़ तो नहीं कर रहा है! कोई जादू, कोई मंत्र तो नहीं कर रहा है! चमत्कार तो नहीं दिखला रहा है! बिना खूंटी के ऊंट बंध गया और अब यह ऊंट उठता भी नहीं है। तो गए और उस बूढ़े से कहा कि बहुत गड़बड़ कर दी है। उस ऊंट को उठाइए अब। क्या कर दिया है आपने? वह ऊंट उठता नहीं है।
उस बूढ़े ने कहाः पहले उसकी खूंटी तो निकालो! रस्सी तो खोलो!
उन्होंने कहाः कौन सी रस्सी? कौन सी खूंटी?

उसने कहाः जो रात गड़ाई थी वह। जो खूंटी गड़ाई थी वह खोदो और निकालो और
जो रस्सी बांधी थी उसे खोलो, तब ऊंट उठेगा।
वे गए, उन्होंने उस खूंटी को खोदा जो कि थी ही नहीं और उस रस्सी को खोला जिसका कोई अस्तित्व न था। वे परेशान रह गए, ऊंट उठ कर खड़ा हो गया। वह काफिला चल पड़ा।
उस सराय के बूढ़े मालिक ने यह कहानी मुझे बताई। मैंने उससे कहाः तुम ऊंटों की कहानी बताते हो। मैं तुम्हें आदमियों की कहानी बताता हूं। सब आदमी ऐसे बंधे हैं जैसा वह ऊंट बंधा था। और ऊंट तो फिर भी ऊंट है, लेकिन आदमी को देख कर बहुत दया आती है। वह उन खूंटियों से बंधा है जिनका कोई अस्तित्व नहीं और उन रस्सियों का गुलाम है जो कहीं हैं ही नहीं। और उठने की हिम्मत नहीं कर सकता, खड़े होने का, चलने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि वह कहता है कि मैं तो बंधा हूं।
इधर दो दिनों से हम उन्हीं खूंटियों और रस्सियों की बात कर रहे हैं।
कल आखिरी खूंटी और रस्सी की बात करेंगे। दो खूंटियों की चर्चा हमने दो दिनों में की। एक तो ज्ञान की खूंटी है, जो बिल्कुल झूठी है। उससे आदमी बंधा है। और एक कर्ता होने की, कर्म की खूंटी है। उससे आदमी बंधा है। वह भी बिल्कुल झूठी है। इन दो की हमने बात की है। कल तीसरी की हम बात करेंगे।
इन दो झूठी खूंटियों के संबंध में बहुत से प्रश्न आ गए हैं। बहुत से लोगों को यह बात जान कर बहुत पीड़ा होती है कि मैं एक ऐसी चीज से बंधा हूं जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। इस पीड़ा को भुलाने के दो उपाय हैं--एक तो यह कि वह आंख खोल कर देख ले कि जिन जंजीरों से बंधा है वे सिर्फ मानसिक जंजीरें हैं, उनकी कोई सत्ता, उनका कोई यथार्थ, उनका कोई ठोस अस्तित्व नहीं है। और दूसरा रास्ता यह है कि वह आंख बंद किए रहे और माने चला जाए कि उनका अस्तित्व है, इसलिए मैं कैसे छूटूं?
तो जब मैं इन काल्पनिक बंधनों की बात करता हूं तो मन में बहुत सी बातें उठती हैं। सबसे पहली बात तो यही उठती है, हमारा अहंकार यह मानने को राजी नहीं होता कि हम झूठी खूंटियों से बंधे हैं। उस ऊंट को भी कोई समझाता कि मित्र, तू एक ऐसी खूंटी से बंधा है जो है ही नहीं। वह हंसता और कहताः मैं पागल हूं? क्यों फिजूल की बातें कर रहे हो? मैं बंधा हूं, यह इस बात का सबूत है कि खूंटी सच्ची होनी चाहिए। वह ऊंट कहता है कि मैं बंधा हूं, यह इस बात का सबूत है कि खूंटी सच्ची होनी चाहिए।
हम भी यही कहते हैंः क्योंकि मैं पूजा कर रहा हूं, वह इस बात का सबूत
है कि जिसकी मैं पूजा कर रहा हूं, वह भगवान सच्चा होना चाहिए। नहीं तो मैं पूजा ही क्यों करता? वह ऊंट कहताः नहीं तो मैं बंधता ही क्यों? और हजार साल से हम पूजा कर रहे हैं, इसलिए भगवान और भी सच्चा होना चाहिए।
आपकी पूजा करने से भगवान सच्चा नहीं होता है, न आपकी प्रार्थना करने से। न ऊंट के बंधने से खूंटी सच्ची होती है। झूठी खूंटियों से ऊंट बंध सकता है और झूठे भगवानों की पूजा हो सकती है।

एक मित्र ने पूछा हैः सच्चा भगवान कौन सा है, जब आप कहते हैं, ये सब झूठे भगवान हैं?

मनुष्य जिस भगवान को निर्मित करता है, उसे मैं झूठा भगवान कहता हूं। जिस भगवान को भी मनुष्य बना लेता है वह झूठा भगवान है। असल में भगवान को हम जानते भी नहीं हैं, बना कैसे सकेंगे? जिन मूर्तियों को हमने बनाया है वे भगवान की मूर्तियां हैं, या कि हमारी ही मूर्तियां हैं? एक चीनी अपनी ही मूर्ति बनाता है भगवान की, तो पता है कैसी बनाता है? उसकी गाल की हड्डियां निकली हुई होती हैं, नाक चपटी होती है। क्यों ऐसी बनाता है भगवान की मूर्ति? भगवान चीनी है? निश्चित। एक नीग्रो भगवान की मूर्ति बनाता है तो कैसी बनाता है? काले रंग की बनाता है। ओंठ चौड़े होते हैं, बाल घुंघराले होते हैं। नीग्रो से पूछोः भगवान का रंग क्या है? वह कहता हैः काला, एकदम काला। नीग्रो से पूछोः शैतान का रंग कैसा है? वह कहता हैः सफेद, बिल्कुल सफेद। अंग्रेज से पूछोः भगवान का रंग? वह कहेगाः सफेद। और डेविल, शैतान का रंग? वह कहेगाः काला। बड़ी अजीब बात है! हिंदू से पूछो, तो भगवान हिंदू अपनी

शक्ल में बनाता है! अगर घोड़े अपने भगवान बनाना चाहें तो आप सोचते हैं किस शक्ल में बनाएंगे? आदमी की शक्ल में? घोड़ों की शक्ल में बनाएंगे। कोई घोड़ा आदमी को इस योग्य न समझेगा कि उसकी शक्ल में भगवान को बनाए।
हम अपनी शक्ल में बनाते हैं भगवान को। हम अपने को ही भगवान की जगह रख
कर पूजते हैं। हमारा भगवान हमारा प्रतिरूप है। कहा तो यह जाता है कि भगवान ने मनुष्य को बनाया, लेकिन यह सचाई तो बहुत दूर रह गई है, सचाई यह हो गई है कि मनुष्य ने भगवान को बना दिया। अपनी ही शक्ल में बनाते हैं, अपनी ही कल्पना में, अपनी ही आकांक्षा में हम निर्मित कर लेते हैं। यह भगवान झूठा होगा। क्योंकि मनुष्य जो कि बिल्कुल एकदम अज्ञान में और अंधेरे में है, वह भगवान को बनाएगा तो वह भगवान सच्चा कैसे हो सकता है? उसमें उसका ही प्रतिफल, उसका ही रिफ्लेक्शन, उसकी ही छवि अंकित हो जाएगी। इसलिए जितने छोटे हम होते हैं उतना ही छोटा हमारा भगवान भी होता है। हम जो भाषा बोलते हैं, वही भगवान बोलता है।
पिछला महायुद्ध हुआ। पिछले महायुद्ध में जर्मनी बढ़ता गया और फ्रांस
की फौजें हारती चली गईं। एक अंग्रेज जनरल से एक फ्रेंच जनरल ने कहाः क्या मामला है? भगवान क्या हम पर नाराज है? हम हारते चले जा रहे हैं रोज! अंग्रेज जनरल बड़ा धार्मिक था। अक्सर हत्यारे और पापी धार्मिक हो जाते हैं, क्योंकि हत्या से इतना भय लगता है कि सिवाय भगवान के उस भय से उन्हें कोई भी नहीं छुड़ा सकता। और दुनिया के जनरल और सेनापति और राजनीतिज्ञ, इनसे बड़े मर्डरर्स, इनसे बड़े हत्यारे कोई और हैं? स्वाभाविक है कि वह जनरल धार्मिक हो। वह रोज प्रार्थना करता था भगवान की। उसने कहा कि तुम इसीलिए हार रहे हो कि तुम शायद भगवान की प्रार्थना नहीं करते हो। हम भगवान की प्रार्थना करते हैं इसलिए हम तो नहीं हार रहे हैं। और देखो, इंग्लैंड का सूरज डूबता नहीं, और हमारा राज्य इतना विस्तीर्ण हो गया भगवान की कृपा से ही न! उसमें कहीं सूरज अस्त नहीं होता है। तुम शायद प्रार्थना नहीं करते हो भगवान की।
उस फ्रेंच जनरल ने कहाः प्रार्थना तो हम भी करते हैं। जब से हारने लगे हैं, तब से बहुत जोर-जोर से करते हैं। जो भी हारने लगता है, जोर-जोर से प्रार्थना करने लगता है। जो कौम मरने लगती है, भगवान-भगवान चिल्लाने लगती है। बहुत जोर से प्रार्थनाएं कर रहे हैं हम, लेकिन कोई असर नहीं मालूम होता।
वह अंग्रेज जनरल मुस्कुराया और उसने कहाः मालूम होता है कोई भूल हो रही है। किस भाषा में प्रार्थना करते हो?
फ्रेंच में।
पागल हो गए हो, भगवान अंग्रेजी के सिवाय कोई भाषा नहीं समझता। यही गड़बड़ हो रही है। तुम प्रार्थना किए जा रहे हो, वह समझ नहीं पाता है। वह अंग्रेजी समझता है, न कि फ्रेंच समझता है।
हमको हंसी आती है इस बात पर। लेकिन हम पांच हजार साल से यही दोहराते रहे हैं कि संस्कृत जो है दिव्य वाणी है, भगवान की वाणी है। इस बेवकूफी में कोई फर्क है? अंग्रेजी पर हंसी आती है, क्योंकि वह अंग्रेज की नासमझी है। और हम क्या कहते रहे हैं इतने दिनों तक? संस्कृत दिव्य वाणी है, भगवान की वाणी है। तो फिर अंग्रेजी भी भगवान की वाणी हो सकती है और चीनी भी और पाकिस्तानी भी और न मालूम क्या। असल में जिसकी भाषा जो है वही भगवान की वाणी है। उसकी अपनी भाषा का अहंकार, अपनी जाति का, अपने रंग का अहंकार, और अपनी प्रतिछवि में भगवान की, भगवान की सृष्टि।
तो मैं जिस भगवान को झूठा कह रहा हूं वह जो हम निर्मित करते हैं, जिसको
हम बनाते हैं। फिर सच्चा भगवान कौन सा है? सच्चा भगवान है वह जिसे हम निर्मित नहीं कर सकते, बल्कि यदि हम अपने को बिल्कुल मिटा डालें, खो दें और शून्य हो जाएं तो उसे जान सकते हैं। जैसे एक बूंद सागर में खो जाती है तो सागर को जान लेती है। सागर के साथ एक हो जाती है तो पहचान लेती है--सागर क्या है। ऐसे ही जब कोई व्यक्ति अपने अहंकार को विलीन करके शांत और शून्य हो जाता है तो जान पाता है उसे जो कि सबमें फैला है और व्याप्त है।
भगवान बनाया नहीं जा सकता, जाना जा सकता है। जाना भी क्या जा सकता है, भगवान के साथ एक हुआ जा सकता है। और उसके साथ एक होना ही उसे जान लेना है।

कोई रूप नहीं है उसका कि आप जब उसे जानेंगे तो कुछ आमने-सामने खड़े होकर बातचीत होगी। ये बचकानी बातें छोड़ दें। भगवान के सामने खड़ा नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि जब हम भगवान को जानने निकल पड़ते हैं तो हम खुद तो खो जाते हैं, वही रह जाता है।
कबीर ने कहा हैः प्रेम की गली बहुत संकरी है, उसमें दो नहीं समा सकते। उसमें या तो भगवान हो सकता है या हम हो सकते हैं।
तो या तो मैं हो सकता हूं और जब तक मैं हूं तब तक भगवान नहीं हो सकता। क्योंकि मैं ही तो बाधा हूं उसके होने में। और जब मैं खो जाऊं, मिट जाऊं तो जरूर वह हो सकता है। जिस-जिस मात्रा में मेरा अहंकार, मेरी ईगो, मेरी अस्मिता खोती है और विलीन होती है, उसी-उसी मात्रा में वह निकट आता है और एक होता जाता है। लेकिन उसका कोई दर्शन थोड़े ही हो जाएगा कि वह सामने खड़ा है। भगवान कोई व्यक्ति तो नहीं है, भगवान तो है समस्त के भीतर छिपी हुई ऊर्जा, समस्त के भीतर छिपी हुई शक्ति, समस्त के भीतर छिपा हुआ जीवंत प्रवाह। वह जो लिविंग कांशसनेस है, वह जो सब तरफ छाया हुआ जीवन है, वही तो है भगवान। उसका कोई रूप? उसका कोई आकार? नहीं, न कोई रूप, न कोई आकार, न कोई नाम। नाम सब हमारे दिए हुए हैं, और हमारे, जिन्हें पता नहीं अपना भी, वे भगवान को नाम देने की कोशिश कर रहे हों तो पागलपन है।
एक संन्यासी सारी दुनिया की यात्रा करके भारत वापस लौटा था। एक छोटी
सी रियासत में मेहमान हुआ। उस रियासत के राजा ने जाकर उस संन्यासी को कहाः स्वामी, एक प्रश्न बीस वर्षों से निरंतर पूछ रहा हूं। कोई उत्तर नहीं मिलता। क्या आप मुझे उत्तर देंगे?
स्वामी ने कहाः निश्चित दूंगा।
वह राजा हंसा, उसने कहा कि इतना निश्चय न दें, इतना आश्वासन न दें, क्योंकि न मालूम कितने संन्यासियों से मैंने पूछा है वही प्रश्न और उत्तर नहीं पाता हूं।
उस संन्यासी ने उस राजा से कहाः नहीं, आज तुम खाली उत्तर नहीं लौटोगे। पूछो।
उस राजा ने कहाः मैं ईश्वर से मिलना चाहता हूं। और पहले ही बता दूं, कृपा करके गीता के श्लोक पढ़ कर समझाने की कोशिश मत करना, वह मैंने काफी सुन लिया है। उपनिषद और वेदों की बातें सुनने की भी मेरी कोई इच्छा नहीं है, वे मैंने सब पढ़ लिए हैं। ईश्वर को समझाने की कोशिश मत करना। मैं तो सीधा मिलना चाहता हूं। मिलवा सकते हों तो कह दें, हां; न मिलवा सकते हों तो कह दें, न; मैं वापस लौट जाऊं।
यही उसने न मालूम कितने संन्यासियों से पूछा था। हमेशा संन्यासी चौंक
गए होंगे, लेकिन इस बार उस राजा को ही चौंक जाना पड़ा। उस संन्यासी ने कहाः अभी मिलना चाहते हैं कि थोड़ी देर ठहर कर?
इसकी आशा भी न थी, अपेक्षा भी न थी। राजा थोड़ा चिंतित हुआ, सोचा उसने, शायद मेरी बात समझी नहीं गई। न मालूम यह कोई ईश्वर नाम वाले आदमी से मिलाने की बात तो नहीं समझ रहे? तो उसने कहाः माफ करिए, शायद आप समझे नहीं। मैं परम पिता परमात्मा की बात कर रहा हूं, किसी ईश्वर नाम वाले आदमी की नहीं, जो आप कहते हैं कि अभी मिलना है कि थोड़ी देर रुक सकते हो?
उस संन्यासी ने कहाः महानुभाव, भूलने की कोई गुंजाइश नहीं है। मैं तो चौबीस घंटे परमात्मा से मिलाने का धंधा ही करता हूं। अभी मिलना है कि थोड़ी देर रुक सकते हैं, सीधा जवाब दें।
उस राजा ने भी कभी सोचा नहीं था कि कोई आदमी इतनी जल्दी मिलवाने को तैयार हो जाएगा। ऐसे आपको भी कोई मिल जाए और एकदम से कह दे कि अभी मिलना है कि थोड़ी देर बाद? तो आप कहेंगेः थोड़ा मैं घर पूछ आऊं, पत्नी से, बच्चों से। इतनी जल्दी भी क्या! पता नहीं मिलने का क्या परिणाम हो। वह राजा भी थोड़ा परेशान हुआ।
संन्यासी ने कहाः इतना परेशान क्यों होते हैं? जब बीस साल से मिलने को उत्सुक थे और आज वक्त आ गया तो मिल लो।
राजा ने हिम्मत की, उसने कहाः अच्छा मैं अभी मिलना चाहता हूं, मिला दीजिए।

संन्यासी ने कहाः कृपा करो, इस छोटे से कागज पर अपना पता लिख दो ताकि मैं भगवान के पास पहुंचा दूं कि आप कौन हैं।
राजा ने कहाः यह तो ठीक ही है। मुझसे भी कोई मिलता है तो पता पूछ लेता हूं--नाम, ठिकाना, परिचय। राजा ने लिखा--अपना नाम, अपना महल, अपना परिचय, अपनी उपाधियां और उसे दीं।
वह संन्यासी बोला कि महाशय, ये सब बातें मुझे बिल्कुल झूठ और असत्य मालूम होती हैं जो आपने कागज पर लिखीं।
वह राजा बोलाः मैं पहले ही शक में पड़ गया था कि आप आदमी कुछ गड़बड़ हो। भगवान से मिलवाने की बात इतनी आसान! कल्पना में भी नहीं उठती थी। तभी मैं समझ गया था कि या तो यह आदमी पागल है, और या फिर मैं पागल हूं। यह हो क्या रहा है, यहां भगवान से मिलवाना हुआ जा रहा है! यह मेरा ही परिचय है। मैं हूं राजा इस राज्य का। यह मेरा नाम है।
उस संन्यासी ने कहाः मित्र, अगर तुम्हारा नाम बदल दें तो क्या तुम बदल जाओगे? तुम्हारा अ नाम से ब कर दें तो फर्क पड़ जाएगा कुछ? तुम्हारी चेतना, तुम्हारी सत्ता, तुम्हारा व्यक्तित्व दूसरा हो जाएगा?
उस राजा ने कहाः नहीं, नाम के बदलने से मैं क्यों बदलूंगा? नाम नाम है, मैं मैं हूं।
तो संन्यासी ने कहाः एक बात तय हो गई कि नाम तुम्हारा परिचय नहीं है, क्योंकि तुम उसके बदलने से बदलते नहीं। आज तुम राजा हो, कल गांव के भिखारी हो जाओ तो बदल जाओगे?
उस राजा ने कहाः नहीं, राज्य चला जाएगा, भिखारी हो जाऊंगा, लेकिन मैं क्यों बदल जाऊंगा? मैं तो जो हूं हूं। राजा होकर जो हूं, भिखारी होकर भी वही होऊंगा। न होगा मकान, न होगा राज्य, न होगी धन-संपत्ति, लेकिन मैं? मैं तो वही रहूंगा जो मैं हूं।
तो संन्यासी ने कहाः तय हो गई दूसरी बात कि राज्य तुम्हारा परिचय नहीं है, क्योंकि राज्य छिन जाए तो भी तुम बदलते नहीं। तुम्हारी उम्र कितनी है?
उसने कहाः चालीस वर्ष।
संन्यासी ने कहाः तो पचास वर्ष के होकर तुम दूसरे हो जाओगे? बीस वर्ष
के जब थे तब दूसरे थे? बच्चे जब थे तब दूसरे थे? जवान जब हो गए, दूसरे हो गए? बूढ़े जब हो जाओगे तो दूसरे?
उस राजा ने कहाः नहीं। उम्र बदलती है, शरीर बदलता है, लेकिन मैं? मैं
तो जो बचपन में था, जो मेरे भीतर था, वह आज भी है, कल भी रहेगा। मैं तो एक सातत्य हूं। मैं तो एक कंटीन्यूटी हूं। मेरे भीतर तो एक सतत कोई है, चेतना, जो कुछ भी कहें, जीवन कहें, वह हूं मैं।
उस संन्यासी ने कहाः फिर उम्र भी तुम्हारा परिचय न रहा, शरीर भी तुम्हारा परिचय न रहा। फिर तुम कौन हो? उसे लिख दो तो पहुंचा दूं भगवान के पास, नहीं तो मैं भी झूठा बनूंगा तुम्हारे साथ। यह कोई भी परिचय तुम्हारा नहीं है।
राजा बोलाः तब तो बड़ी कठिनाई हो गई। उसे तो मैं भी नहीं जानता फिर! जो मैं हूं, उसे तो मैं भी नहीं जानता! इन्हीं को मैं जानता हूं मेरा होना। उस संन्यासी ने कहाः फिर बड़ी कठिनाई हो गई, क्योंकि जिसका मैं परिचय
भी न दे सकूं, बता भी न सकूं कि कौन मिलना चाहता है, तो भगवान भी क्या कहेंगे कि किसको मिलाना चाहता है? तो जाओ पहले इसको खोज लो कि तुम कौन हो। और मैं तुमसे कहे देता हूं कि जिस दिन तुम यह जान लोगे कि तुम कौन हो, उस दिन तुम आओगे नहीं भगवान को खोजने। क्योंकि खुद को जानने में वह भी जान लिया जाता है जो परमात्मा है।
मूर्तियों में नहीं है वह, और न नामों में है, और न चित्रों में, और न रूपों में, न मंदिरों में। जो उसे वहां खोजता है, वह एक झूठे भगवान के पीछे दौड़ रहा है जो आदमी के द्वारा बनाया गया है। आदमी के द्वारा बनाया हुआ भगवान आदमी से बड़ा नहीं है, नहीं हो सकता है। उसमें आदमी की सब क्षुद्रताएं, आदमी की करतूत है वह। और इसीलिए तो आदमी के बनाए हुए भगवान के नाम पर झगड़े, उपद्रव, परेशानी खड़ी होती रही है, हो रही है। यह सारी जमीन बंट गई है--हिंदुओं में, मुसलमानों में, जैनों में, ईसाइयों में। आदमी-आदमी

बंट गया है, खंडित हो गया है। किसके द्वारा? आदमी के द्वारा बनाए हुए भगवान! आदमी के द्वारा बनाए हुए भगवान आदमी को तोड़ने का मार्ग बन गए हैं, जोड़ने का नहीं।
लेकिन जो परमात्मा है, जो सत्य है, जो हम सबका जीवन है, उसे यदि हम सब जानेंगे तो मनुष्य टूटेगा नहीं, जुड़ जाएगा। उसे हम जानेंगे तो प्रेम की एक धार सारे जगत में व्याप्त हो जाएगी। उसे हम जानेंगे तो जीवन का अर्थ, जीवन का अभिप्राय कुछ और हो जाएगा। उस भगवान की इधर हम तीन दिनों तक बात कर रहे हैं कि उसको कैसे जाना जा सके।
लेकिन उसको हम छोड़ दे रहे हैं, इसलिए कि उसे जानने का सवाल उठता नहीं,
जब तक कि हम उसे न जान लें जो हम हैं। इसलिए हम पूरी कोशिश कर रहे हैं इस बात को विचार करने की कि यह मैं कौन हूं? इसे कैसे जान सकूं? सच्चे धर्म का संबंध मनुष्य के सत्य को जानने से है। सच्चे धर्म की खोज, मनुष्य के भीतर जो छिपा है, उसे पहचान लेने से है। और वह एक दफा पहचान लिया जाए तो वही पहचान आखिर में परमात्मा की पहचान सिद्ध होती है। उसके अतिरिक्त और कभी कहीं कोई परमात्मा न जाना गया है, न जाना जा सकता है। जो खुद को ही नहीं जानता वह और क्या जान सकेगा?
हम खुद को जानते हैं? पहचानते हैं? परिचय है हमारा कोई? जिसके साथ, जिस जीवन के साथ हम रह रहे हैं, जिसके साथ हम श्वासें ले रहे हैं, उसे हम पहचानते हैं, क्या है वह? कौन छिपा है वहां भीतर?
नहीं, बिल्कुल अपरिचित। और भगवान का विवाद कर रहे हैं कि भगवान कैसा- कैसा है। अपनी कोई खोज-खबर नहीं, भगवान का विवाद कर रहे हैं। इस विवाद में जरूर कोई मतलब है। इसमें मतलब यह है कि जो खुद को जानने से बचना चाहते हैं, वे हजार तरह की फिजूल बातों को जानने में लग जाते हैं ताकि खुद को जानने से बच जाएं।
जो आदमी यह तय कर रहा है--स्वर्ग है या नहीं? नरक है या नहीं? प्रश्न पूछते हैंः पुनर्जन्म है या नहीं? आत्मा मरने के बाद बचती है या नहीं? बचती है तो कहां जाती है? मोक्ष है तो कहां है? ये सब प्रश्न पूछ रहे हैं। और एक भी कोई प्रश्न नहीं पूछता कि मैं कौन हूं? बड़ी हैरानी की बात है! सारे मुल्क में घूमता हूं, इधर लाखों लोगों से संपर्क हुआ है, एक भी आदमी ने अब तक मुझसे नहीं पूछा है कि मैं कौन हूं, इसके लिए कोई सोच-विचार करूं। एक प्रश्न मुझसे नहीं पूछा गया अभी तक कि मैं कौन हूं। यह तो लोग पूछते हैं कि भगवान क्या है? स्वर्ग क्या है? नरक क्या है? आकाश, पाताल, न मालूम क्या- क्या पूछते हैं, लेकिन कोई यह नहीं पूछना कि मैं कौन हूं?
शायद हमें यह ख्याल है कि हम अपने को तो जानते ही हैं, उसको क्या पूछना! जिसको नहीं जानते, उसको पूछें। लेकिन सचाई यह है कि हम अपने को सबसे कम जानते हैं, बिल्कुल भी नहीं जानते। और जो खुद को न जानता हो वह क्या जान सकेगा? और ऐसा मनुष्य जो खुद से अपरिचित है, अनजान, वह बना लेगा भगवानों को, मंदिरों को, मस्जिदों को। वे खतरे के अड्डे हो जाएंगे, और कुछ भी न होगा।
इसलिए मैंने कहाः मनुष्य के द्वारा निर्मित सभी भगवान झूठे हैं। हां, मनुष्य खुद को जान ले तो खुद के द्वारा वह जान सकेगा सारे जगत में जो व्याप्त है उसे। एक ताला खुल जाए उसके जीवन का तो सारे जीवन का ताला खुल जाता है। एक बूंद को कोई समझ ले तो सारे सागर को समझ लिया। एक प्रकाश की किरण को कोई समझ ले तो सारे सूरज को समझ लिया। एक कंकड़ को कोई समझ ले तो सारी पृथ्वी समझी जा चुकी, क्योंकि अणु में वह सब मौजूद है जो विराट में छिपा है। तो एक अपने भीतर के ताले को कोई खोल ले तो खोल लिए उसने जीवन के द्वार। खुद खोल कर वह पाएगा कि सबका द्वार खुल गया। वहीं है, वहीं छिपा है, वहीं बैठा है। बड़ी अजीब जगह चुनी है भगवान ने भी छिपने की। कोई और आसान जगह चुन लेता तो बड़ी आसानी हो जाती। किसी मंदिर में छिप जाता तो हम दीवाल वगैरह खोद कर सब तरह से उसका पता लगा लेते। किसी शास्त्र में छिप जाता तो हम घोल कर पी जाते उस शास्त्र को, उस भगवान को पचा लेते। कहीं और छिप जाता आकाश-पाताल में, कोई चिंता न थी, हमारे वैज्ञानिक बना लेते जेट और वहीं पहुंच जाते और पता लगा लेते। बाकी उसने भी ऐसी शरारत की, ऐसी जगह छिप गया

है, जहां जाने की हमारी इच्छा ही नहीं होती है। वह हमारे भीतर ही छिप कर बैठ गया है।
ऐसी कहानी है बड़ी पुरानी। पता नहीं कहां तक सच है, कहानियों का कोई भरोसा भी नहीं है। एक कहानी मैंने सुनी है। भगवान ने दुनिया बनाई, एक-एक चीज बनाई; झाड़, पौधे, पशु-पक्षी बनाए, कीड़े-मकोड़े बनाए। कितना बड़ा जाल रचा। सब बनाया। कहानी है, यह मैंने कह दिया। कहीं यह मत पूछने लगना कि कब बनाया? कैसे बनाया? नहीं तो कल इसी पर प्रश्न आ जाएं आपके, क्योंकि प्रश्नों के आने में कोई कठिनाई नहीं है। भगवान ने यह सब बनाया। और फिर आखिर में आदमी बनाया। आदमी बनाने के बाद फिर उसने कुछ भी नहीं बनाया। तो देवताओं ने उससे पूछाः फिर और कुछ नहीं बनाते? सब बंद कर दिया?
उसने कहाः आदमी को बना कर भूल हो गई। अब आगे जी डरता है और कुछ बनाने को। और चीजें बनाई थीं तब तो बनाने का मजा था, आदमी को बना कर मैं दिक्कत में पड़ गया। बड़ी दिक्कत तो यह हो गई कि आदमी मैंने ऐसा बना दिया जो खुद ही चीजें बनाने में होशियार है, वह खुद ही चीजें बनाने लगा। मेरी कोई जरूरत न रही। एक बात। दूसरी बात, इस आदमी से मैं बड़ा डरा हुआ हो गया हूं, क्योंकि यह भगवान की खोज भी करता है। और किसी दिन पा ले तो फजीहत करे, न मालूम क्या करे। आखिर अगर यह पा ले हमको तो यह क्या करेगा हमारे साथ? क्या व्यवहार करेगा? कुछ अंदेशा तो लगता नहीं है इसके व्यवहार का, क्योंकि जो दूसरे आदमियों के साथ यह करता है, कुछ वैसा-वैसा हमारे साथ भी करेगा। अंदाज तो लगता ही है। आदमी क्या कर रहा है दूसरे आदमियों के साथ? तो अगर यह हमको पा ले तो हमारे साथ भी कुछ ऐसा ही करेगा। इससे बहुत डर लगता है। तो मैं ऐसी जगह की खोज की तलाश में हूं जहां यह मुझे न पा सके।
तो देवताओं से उसने पूछा कि मुझे कोई जगह बताओ जहां मैं छिप जाऊं।
बहुत जगह लोगों ने बताई, किसी ने कहा इस जगह छिप जाओ, किसी ने आकाश में, किसी ने पाताल में।
उसने कहाः ये सब जगह छोटी हैं, आदमी के पास दिमाग है, वहां आ जाएगा। वह खोज लेगा, वह रास्ता बना लेगा, वह नरक तक गड्ढे खोद लेगा, आकाश तक सीढ़ी लगा लेगा।
फिर एक बूढ़े देवता ने कहाः तो फिर एक ही रास्ता है, आप आदमी के भीतर ही छिप जाओ। उसका उसे ख्याल भी नहीं आएगा कि अपने भीतर भी खोजें, वह सारी जमीन खोजेगा, और आप शांति से बैठे रहो।
तो भगवान आदमी के भीतर बैठ गया। तब से वह बैठा हुआ है वहां और बात, तरकीब काम कर गई। आदमी सब जगह खोज रहा है, एक जगह छोड़ कर--जहां वह है, वह। वहां हमें कोई ख्याल नहीं उठता कि वहां हम खोजें। क्योंकि हमें यह भ्रम है कि अपने को तो हम जानते ही हैं, वहां क्या रखा हुआ है!
मैं आपसे निवेदन करूं, इससे बड़ा रहस्य और कहीं भी नहीं है जो आपके भीतर छिपा है। इस छोटी सी देह, इस छोटी सी खोपड़ी, इस छोटे से जीवन में बहुत-बहुत विराट छिपा है। जब तक वैज्ञानिकों ने एटम न तोड़ा था, अणु न तोड़ा था, तब तक किसी को ख्याल भी न था कि छोटे से कणों को तोड़ने में इतनी शक्ति, इतनी ऊर्जा छिपी हो सकती है। एक छोटे से एटम का विस्फोट--नागासाकी, हिरोशिमा के एक लाख आदमी थोड़े ही पलों में जल कर राख हो गए! अब तो बड़े एटम बम, हाइड्रोजन बम हमने ईजाद कर लिए। ये क्या हैं?
छोटे से अणुओं को तोड़ने से जो ताकत उपलब्ध हुई है वह--ऐसे छोटे अणुओं में जो आंखों से दिखाई नहीं पड़ते, इतने छोटे अणुओं में कि अगर एक अणु के ऊपर दूसरे अणु को हम रखते जाएं तो एक लाख अणु रखें तो आदमी के बाल के बराबर मोटाई होगी। इतने छोटे अणु में बाल की मोटाई के एक लाख बटा हिस्सा! उतने छोटे अणु में इतनी ऊर्जा उपलब्ध हुई छिपी हुई कि अगर उसका विस्फोट हो जाए तो करोड़ों लोग, करोड़ों का जीवन तत्क्षण राख हो जाए। कतई ख्याल भी न था कि एक छोटे अणु में ऐसा छिपा होगा।
ऐसे ही मनुष्य के चित्त के भी अणु हैं। पदार्थ के अणु की तो हमने खोज
कर ली तो वहां परमाणु की शक्ति मिल गई। मनुष्य के चिद्-अणु हैं--मनुष्य के भीतर चेतना के अणु हैं। अगर उनको भी हम खोल लें तो वहां परमात्मा की शक्ति मिल जाती है। पदार्थ के अणु में छिपी है पदार्थ की शक्ति, मनुष्य की चेतना के अणु में छिपी है परमात्मा की शक्ति। दोनों उसकी ही शक्तियां हैं, उसके

ही दो रूप हैं। छोटा नहीं है मनुष्य का यह मन। इस छोटे मन में बहुत छिपा है। इसकी उपेक्षा न करें, अपनी उपेक्षा न करें।
धार्मिक आदमी मैं उसे कहता हूं जो अपनी उपेक्षा नहीं करता है। और अधार्मिक आदमी वह है जो जीवन भर अपनी उपेक्षा करता है। और सब चीजों की चिंता करता है, अपनी उपेक्षा करता है और खुद को तो मान लेता है कि मैं जानता हूं, खुद को तो समझ लेता है कि मैं जानता हूं, यह बात खत्म हो गई। यह अध्याय बंद हो गया। मैं तो जानता हूं--मेरा यह नाम है, मेरा यह ठिकाना है, फलां पिता का लड़का हूं, यह मेरा मकान है। जान लिया मैंने अपने को, वह तो बात खत्म हो गई।
यह बात खत्म नहीं हुई है, यह अध्याय खुला हुआ रखें, इसे क्लोज न करें, इसे बंद न करें, यह खुला हुआ है।
इसीलिए मैंने कहा है, इधर दो दिनों में सच्चे भगवान की खोज, सत्य की खोज मनुष्य निर्मित धर्मों में नहीं बल्कि उस चेतना में प्रवेश से होगी जो परमात्मा का ही अंश है।

कुछ और प्रश्न पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा हैः भक्ति से, पूजा और प्रार्थना से भगवान की उपलब्धि नहीं होगी? क्या भक्ति भगवान तक पहुंचने का मार्ग नहीं है?

सुनते तो हम यही आए हैं कि भक्ति और भगवान का बड़ा संबंध है। लेकिन बड़े दुख की बात है, मुझे आपसे सच्ची बात कहनी ही होगी। भक्ति और भगवान का कोई संबंध नहीं है। रत्ती भर भी संबंध नहीं है। भक्ति तो मनुष्य की कल्पना है और भगवान का मनुष्य की कल्पना से क्या संबंध? सचाई तो यह है कि भगवान या सत्य का अनुभव तब होता है जब मनुष्य की सारी कल्पनाएं शांत और तिरोहित हो जाती हैं। और हम कल्पनाएं कर रहे हैं। और ईजाद कर रहे हैं कल्पनाएं अपने मन की। और उनके मन की कल्पनाओं का अनुभव भी हो सकता है, क्योंकि मनुष्य स्वप्न देखने में बहुत समर्थ है। मनुष्य स्वप्न देखने में, इमेजिनेशन में बहुत समर्थ है।
हमारे बीच में कुछ लोग ज्यादा इमेजिनेटिव होते हैं। स्त्रियां बहुत काल्पनिक होती हैं। पुरुषों में भी कुछ स्त्रैण चित्त के लोग होते हैं, वे भी बहुत काल्पनिक होते हैं। जैसे कवि बहुत काल्पनिक होते हैं। ये सारे लोग तो भगवान की भक्ति करके और भी जल्दी दर्शन कर सकते हैं, इनको तो देरी नहीं है, कठिनाई नहीं है। क्योंकि जिसकी कल्पना जितनी प्रखर है और सपना देखने में जो जितना गहरा प्रवेश कर सकता है, वह उतने जल्दी भगवान के दर्शन कर सकता है।
लियो टॉल्सटॉय का नाम आपने सुना होगा--बड़ा लेखक, विचारक था रूस का। बहुत कल्पनाशील था। एक रात मास्को के एक ब्रिज के ऊपर उसे पुलिस के लोगों ने पकड़ा। वह एक पुल के ऊपर खड़ा था, खतरनाक पुल के पास जहां कि पुलिस का एक सिपाही हमेशा तैनात होता था। तैनात इसलिए होता था कि वह पुल जो था, मरने वालों की खास जगह थी। जिन-जिन को मरना होता था, रात उसी पुल पर से जाकर कूद पड़ते थे और मर जाते थे। इसलिए स्थायी रूप से स्युसाइड पॉइंट था वह मास्को में। आत्महत्या करने वालों का अड्डा था। और हो सकता है, युनिवर्सिटी की परीक्षाएं खत्म भी हों इसलिए पुलिस वाला निरंतर वहां खड़ा रहता था। टॉल्सटॉय को रात दो बजे वहां पकड़ा गया। पुलिस के आदमी ने आकर देखा, यह आदमी अपना लबादा पहने हुए ठंडी रात में चक्कर काट रहा है। एक-दो दफे उसने देखा, तीसरी दफे आकर उसने कंधे पर हाथ रखा और कहाः महानुभाव, क्या इरादे हैं?
टॉल्सटॉय की आंखों में आंसू थे, उसने कहाः महाशय, आप थोड़ी देर से आए, जिसको आत्महत्या करनी थी उसने कर ली। मैं तो पहुंचाने आया था।
वह पुलिसवाला तो घबड़ा गया, वह वहीं खड़ा था। अब वह झंझट में पड़ेगा, क्योंकि ड्यूटी पर था और आदमी कूद कर मर गया। उसने कहाः कौन मर गया? टॉल्सटॉय ने कहाः पावलोना नाम की स्त्री मर गई। तुम्हें पता नहीं? आज
दो दिन से यहां चक्कर लगा रही थी मरने के लिए, तुम क्या कर रहे थे?
वह तो और भी घबड़ा गया, टॉल्सटॉय को पकड़ कर पुलिसथाने ले गया।

पुलिसथाने जाते-जाते टॉल्सटॉय का दिमाग थोड़ा शांत हुआ। वह जरा कविता
से नीचे उतरे। पुलिसथाने पहुंच कर हंसने लगे। वे लोग बोलेः क्यों हंसते हैं?
उन्होंने कहाः असल बात यह है कि मैं एक उपन्यास लिख रहा हूं, उस उपन्यास में पावलोना नाम की एक स्त्री है। उस उपन्यास में वह इस पुल के पास आकर आत्महत्या कर लेती है। उसने आज रात आत्महत्या की, मैं भूल ही गया कि यह बात काल्पनिक है, मैं उसी के पीछे चला आया। वह कूद पड़ी, मैं वहीं खड़ा दुखी हो रहा था।
पात्र है उपन्यास का जिसको वह लिख रहा है। लेकिन कवि और लेखक अपने पात्रों के साथ जीने लगते हैं। इतने सच्चे हो जाते हैं वे। कल्पनाएं इतनी प्रगाढ़ हो जाती हैं।
टॉल्सटॉय एक दफा सीढ़ियां चढ़ रहा था लाइब्रेरी की। उसके साथ एक औरत चल रही थी ऐसे ही, काल्पनिक औरत जिससे वह बातचीत कर रहा था। जो उसके उपन्यास में पार्ट करने वाली थी। वे दोनों चले जा रहे थे सीढ़ियां चढ़ते। सीढ़ियां संकरी थीं, दो की जगह थी। ऊपर से एक सज्जन नीचे उतर रहे थे, तीन के लायक जगह नहीं थी। और स्त्री को कहीं धक्का न लग जाए ऊपर वाले का इसलिए टॉल्सटॉय बचा। बचा तो सीढ़ियों से चूक गया और नीचे गिर कर पैर तोड़ लिया। ऊपर वाले आदमी ने कहाः महानुभाव, आप हटे क्यों? हम दो के लिए काफी जगह थी। हटने की कोई जरूरत न थी।
टॉल्सटॉय ने कहाः दो! और तीसरी स्त्री कहां गई जो मेरे साथ थी?
कोई तीसरी स्त्री वहां नहीं है। लोगों ने कहाः यहां तो कोई तीसरी स्त्री नहीं थी।
तब टॉल्सटॉय चौंका और उसने कहाः अरे, बड़ी भूल हो गई, माफ करें। मैं भूल
ही गया। मेरी एक पात्रा मेरे साथ चल रही थी। मैं उससे बातें कर रहा था। उसको धक्का न लग जाए, इसलिए मैं नीचे बचा और व्यर्थ टांग तोड़ ली। एक ऐसी औरत के लिए जो थी नहीं, एक ऐसी टांग टूट गई जो बिल्कुल थी।
अलेक्जेंडर ड्यूमा का नाम सुना होगा, एक दूसरा बहुत बड़ा नाटककार था। उसने पेरिस में अपना मोहल्ला बदला। एक मोहल्ले में रहता था, वहां के लोग तो परिचित हो गए थे उससे, उसके पागलपनों से। लेकिन मोहल्ला बदल लिया, दूसरे मोहल्ले के लोगों को कोई पता नहीं था। रात मोहल्ले के लोगों की, आधी रात नींद खुल गई। कोई बड़ा झगड़ा मचा हुआ था। नया जो मेहमान आया हुआ था, उसके कमरे में ऐसा मालूम हो रहा था कि कोई हत्या हो जाएगी। दो आदमी लड़ रहे थे, तलवारों की खटाखट आवाज आ रही थी। दो आदमियों की आवाजें आ रही थीं, दो अलग आवाजें आ रही थीं, एक-दूसरे को गालियां दे रहे थे, कोई झगड़ा हो गया था। दरवाजे सब तरफ से बंद। मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए, उन्होंने पुलिस को खबर की। दरवाजे तोड़ कर अंदर घुसा जा सका।
अलेक्जेंडर ड्यूमा अकेला ही तलवार लिए दरवाजे के सामने खड़ा था। पूछा
कि दूसरा आदमी कहां है?
ड्यूमा ने कहाः कौन सा दूसरा आदमी? लोगों को देख कर वह थोड़ा ठंडा हुआ।
पसीना-पसीना हो रहा था, तलवार लिए हुए था। उसने कहाः माफ करिए, आप जाइए।
मैं अपने नाटक के एक पात्र के साथ द्वंद्व-युद्ध कर रहा था।
लोगों ने कहा कि दो आवाजें आ रही थीं।
उन्होंने कहाः जब मैं अपने पूरे जोश में आ जाता हूं तो अपनी तरफ से भी बोल लेता हूं, उसकी तरफ से भी बोल लेता हूं। मुझे पता भी नहीं चलता है कि यह क्या हो रहा है! लेकिन जब मैं इस तरह जी लेता हूं किसी घटना को तभी मैं लिख पाता हूं, तभी वह जिंदा हो जाती है, नहीं तो मुर्दा हो जाती है। बैठ कर मैं नहीं लिख सकता। पसीना-पसीना! तलवार लिए खड़ा है!
ये ऐसे लोग अगर भगवान के दर्शन करना चाहें, इन्हें देर लगेगी? इनको क्षण भर देर न लगेगी। ये जब चाहें, मुरली बजाने वाले भगवान इनके सामने खड़े हो सकते हैं। जब चाहें, धनुर्धारी राम खड़े हो सकते हैं। कोई भी खड़ा हो सकता है। इनकी कल्पना की ईजाद और इनका इतना भावाविष्ट मन! इतना इमेजिनेटिव! ये कोई भी चीज को अनुभव कर सकते हैं। लेकिन यह कोई भगवान का अनुभव न होगा। यह प्रोजेक्शन है, यह मन का ही प्रक्षेप है। मन समर्थ है कल्पनाएं देखने में। तो भक्ति सिर्फ एक कल्पना है, और भक्ति के द्वारा आप जैसे भगवान को चाहें

बिल्कुल देख सकते हैं। लेकिन वह भगवान आपकी कल्पना के सिवाय और कहीं नहीं है।
और यह हो सकता है कि एक राम के भक्त को, एक कृष्ण के भक्त को, एक क्राइस्ट के भक्त को, तीनों को एक कमरे में एक रात बंद कर दिया जाए, तो कृष्ण का भक्त कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए देखता रहेगा उसी कमरे में, उसी में राम का भक्त धनुर्धारी राम को देखता रहेगा, उसी कमरे में क्राइस्ट का भक्त सूली पर लटके हुए क्राइस्ट को देखता रहेगा। और अगर बाकी से पूछा जाए कि तुमको इनके भगवान दिखाई पड़े थे? तो वह हंसेगा, कहेगाः इनके भगवान कहां? मेरे भगवान थे! इनके तो कोई थे नहीं। तीनों विवाद करेंगे कि तुम्हारे भगवान कहां हैं, हमें तो दिखाई नहीं पड़ते। अपने-अपने भगवान तीनों को दिखाई पड़ते रहेंगे। किसी दूसरे का भगवान किसी दूसरे को दिखाई नहीं पड़ेगा।
अपनी कल्पना है, अपनी कल्पना का लोक है और हजारों वर्षों तक धर्म को
इस कल्पना के जोड़ने के कारण ही धर्म एक विज्ञान, एक साइंस नहीं बन पाया। और आज सारी दुनिया में साइंस के मुकाबले धर्म को रोज हार खानी पड़ रही है। उसके पीछे यह कल्पना का सारा जाल है। अगर पांच हजार वर्षों में कल्पना से धर्म को बचाया होता और तथ्य और सत्य की खोज में एक वैज्ञानिक विधि को विकसित किया होता तो आज विज्ञान से धर्म को हार जाने का कोई कारण न था। विज्ञान के सामने धर्म मात खा रहा है, रोज हार रहा है, रोज जमीन खो रहा है।
उसका एकमात्र कारण हमने जो धर्म खड़ा किया हुआ है वह एकदम कल्पना पर खड़ा किया है। सत्य पर, यथार्थ पर नहीं, विज्ञान की विधि पर नहीं, मन की कविता पर खड़ा है।
कविता धर्म नहीं है। काव्य कर लेना और बात है। खूबसूरत है काव्य। कल्पनाएं कर लेना और बात है। सुंदर हैं कल्पनाएं। उनमें आनंद भी आ सकता है। सपने सुखद भी हो सकते हैं। लेकिन सुखद होने से कोई सपना सत्य नहीं हो जाता।
मेरा निवेदन है, एक वक्त जमीन के इतिहास में आ गया है, एक समय आ गया मनुष्य की चेतना में, कि उस धर्म का जन्म हो जो भक्ति न हो, विज्ञान हो, साइंस हो। उस धर्म का जन्म हो जो कल्पना न हो, सत्य हो। धर्म का जन्म हो जो हमारी आशाओं और इच्छाओं पर नहीं, हमारी कल्पनाओं और विचारों पर नहीं, बल्कि हमारे प्राणों के सीधे साक्षात और अनुभव पर खड़ा हो।
आसान हैं ये सारी बातें। कल्पना कर लेनी आसान है और अनुभव कर लेना भी।
और इस अनुभव के लिए सहारे भी खोज लिए गए हैं।
क्या आपको पता है, दुनिया में बड़ा भाग भक्तों का, संन्यासियों का गांजा, अफीम, शराब और न मालूम क्या-क्या नशे करता आ रहा है। क्यों? क्या आपको पता है, यह अकारण है? यह अकारण नहीं है। चाहे दूर मेक्सिको में, चाहे तिब्बत में, चाहे भारत में, चाहे चीन में, चाहे यूनान में, दुनिया के कोने- कोने में इस तरह के काल्पनिक भगवान के खोजियों ने नशे का उपयोग किया है, क्यों?
नशे से कल्पना आसान हो जाती है। नशे में कल्पना प्रखर हो जाती है। होश
खो जाता है, कल्पना तीव्र हो जाती है। जितना तेज नशा हो उतनी ही कल्पना तेज और आसान हो जाती है। फिर उस कल्पना की लहरों में कुछ भी देखा जा सकता है। भांग में, अफीम में, गांजे में, और अभी नई-नई ईजादें हो रही हैं अमेरिका में। अमेरिका में नये भक्तों का संप्रदाय खड़ा हो रहा है। अल्डुअस हक्सले उनके नेता हैं। वहां भक्तों का एक संप्रदाय बन रहा है। उन्होंने नई ईजादें कर ली हैं वैज्ञानिक। मैस्कलीन नाम का एक इंजेक्शन बना लिया है और एल एस डी नाम का एक एसिड तैयार कर लिया है। मैस्कलीन का इंजेक्शन लगवा लीजिए, छह घंटे तक भगवान के दर्शन करिए। क्योंकि मैस्कलीन जो है, शुद्ध से शुद्ध नशा है खींचा हुआ। उसे आपकी नसों में डाल दिया, छह घंटे के लिए मस्त हो जाइए। समाधि में पहुंच जाइए, नाचिए, कूदिए, खूब भगवान का कीर्तन कीजिए और खूब आनंद अनुभव कीजिए और जैसा भगवान चाहिए वैसा देख लीजिए। क्रिश्चियन को लगा दो, क्राइस्ट दिखाई पड़ने लगते हैं। और हिंदू को लगा दो, तो कृष्ण दिखाई पड़ने लगते हैं। मैस्कलीन बड़ा अदभुत है। जैसा भगवान चाहो वैसा पैदा हो जाता है।

असल में जो कल्पना आपके मन में बैठी है, वह नशा उसे जीवन दे देता है। उसे छोड़ देता है, उसे रिलीज कर देता है आपके चित्त से। वह आपके सामने खड़ी हो जाती है। नशे में लोग और चीजें तो देखते ही हैं और न मालूम क्या-क्या देखते रहे हैं, भगवान भी देख लिया। तो पश्चिम में बहुत जोर का फैड पैदा हुआ है। मैस्कलीन लगवाओ। हो सकता है आने वाले दिनों में हिंदुस्तान में भी वे दवाइयां आ जाएंगी। कितनी देर लगेगी? अमेरिका हिंदुस्तान में फासला कितना है? और अमेरिका के बड़े-बड़े लोग उसकी तारीफ कर रहे हैं कि बड़ा आसान है। अल्डुअस हक्सले ने कहा कि पुराने साधुओं को, कितनी बेचारों को तकलीफ उठानी पड़ी। सालों तपश्चर्या करो, वह यह करो, उलटे-सीधे खड़े होओ, योगासन खड़े करो, सिर नीचा करो, पैर ऊपर करो, उपवास करो, कितनी तकलीफें उठानी पड़ीं। अब हमने ज्यादा अच्छी एक तरकीब निकाल ली। मैस्कलीन लगाओ और समाधि में आनंदित, मग्न हो जाओ। अल्डुअस हक्सले का कहना है कि जैसे पुराने जमाने के लोग बैलगाड़ी में चलते थे, बहुत वक्त लगता था। ऐसे पुराने भक्ति के रास्ते थे। यह नया रास्ता है। इससे सीधा जेट प्लेन की तरह आप न मालूम कितनी लंबी यात्रा एकदम कर लेते हैं। फर्क दोनों में नहीं है। कल्पना में खड़ा हुआ जो धर्म है वह नशे का उपयोग है ही। कल्पना खुद एक नशा है।
आपने देखा है, जब आप चित्त में कल्पना से भर जाते हैं तो कैसे नशे में झूम उठते हैं। जब भी कोई कल्पना मन को पकड़ती है तो कैसे इनटॉक्सीकेट अनुभव करने लगते हैं, कैसा नशा मालूम होने लगता है। अलमस्त हो जाते हैं, मस्ती छा जाती है।
और नशे की स्थिति के अलावा भी बहुत तरकीबें की गई हैं जिनका ठीक-ठीक हिसाब लगाना आज कठिन हो गया है। एक आदमी लंबा उपवास कर ले तो हम कहते हैं, बड़ी तपश्चर्या कर रहा है। लेकिन आपको पता है, लंबे उपवास के बाद कल्पना आसान हो जाती है, जैसा नशे से आसान हो जाती है। लंबे उपवास में शरीर की शक्ति गिर जाती है। शक्ति गिरने से कल्पना तीव्र हो जाती है।
आपको अगर लंबा बुखार आया हो और भोजन न मिला हो तो आपको पता होगा, लंबे बुखार में भोजन न मिला हो तो खाट आसमान में उड़ सकती है, देवी-देवता दिखाई दे सकते हैं। और सब कुछ हो सकता है। कमजोरी में चित्त काल्पनिक हो जाता है। ताकत में चित्त काल्पनिक नहीं होता। इसलिए जितना कमजोर आदमी हो उतना अच्छा भक्त हो सकता है। जितना शक्तिशाली आदमी हो उतना जरा भक्ति मुश्किल है। इसलिए कोई शक्तिशाली हो तो उपवास करवा-करवा कर उसको कमजोर कर देने का उपाय है। तब फिर वह आसानी से भक्त हो सकता है। उस कमजोरी में, चित्त जहां कमजोर है वहां कल्पना प्रबल हो जाती है। तो उस कल्पना की प्रबलता में फिर जिसको देखना हो उसको देखा जा सकता है।
लेकिन, यह कीर्तन और भजन और भक्ति कहीं ले जाते नहीं। हां, थोड़ी देर को राहत देते हैं, शांति देते हैं, थोड़ी देर को मन को उलझाने का साधन हो जाते हैं। एस्केप बन जाती है, पलायन मिल जाता है, थोड़ी देर को बचाव मिल जाता है। इससे ज्यादा नहीं। लेकिन जिसको सच में परमात्मा की खोज की तरफ आंखें उठानी हों, जिसके मन में यह ख्याल हो कि खोजना है सत्य को, उसे स्मरण रखना होगा कि चित्त की सारी की सारी कल्पनाओं के जाल तोड़ देने होंगे। वे खूंटियां हटा देनी होंगी जो झूठी हैं, कल्पना की हैं और वे रस्सियां काट देनी होंगी जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। और उस सत्य को खोजना होगा जो है। उस सत्य की हमें कोई कल्पना करने की जरूरत नहीं है। अगर वह है तो हम शांत होकर खड़े हो जाएं, वह हमें दिखाई पड़ेगा। और अगर वह नहीं है तो ही हमें उसे खोजना और निर्मित करना होगा।
एक व्यक्ति आज ही मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि मैं तो निरंतर भाव रखता हूं कि सब जगह ब्रह्म छाया हुआ है, सब जगह ब्रह्म व्याप्त है।
तो मैं पूछता हूंः अगर यह अनुभव हो रहा हो कि ब्रह्म सब जगह व्याप्त है, तो इसके भाव करने की कौन सी जरूरत है? अगर एक आदमी सुबह से उठ कर दिन भर यह कहे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं, तो आपको शक हो जाएगा कि इसको खुद भी कोई शक है पुरुष होने का। अगर यह पुरुष है तो इसको दोहराने की क्या जरूरत है? अगर यह है, तो बात हो गई। अगर किसी को यह अनुभव हो रहा है कि सब जगह भगवान व्याप्त है तो इसको दोहराने की क्या जरूरत है कि सब जगह भगवान व्याप्त है, सब जगह भगवान व्याप्त है। जो इसे दोहरा रहा है, उसे अनुभव नहीं

हो रहा है। उसे अनुभव न होने के लिए ही वह दोहरा रहा है। और दोहरा-दोहरा कर कल्पना कर रहा है कि सब जगह भगवान व्याप्त है। ऐसी कल्पना अगर वह कर भी ले तो वह कल्पना भगवान का अनुभव नहीं है। वह हमारी ही कल्पना का अनुभव है। अंतिम रूप से आज की चर्चा में यह कहना चाहूंगा कि मनुष्य का चित्त जब
सब तरह की कल्पनाओं को छोड़ कर शांत होता है, जब कोई कल्पना चित्त में नहीं रह जाती, तभी उसी निर्दोष और शांत क्षण में, उसी झील की भांति मौन चित्त में उसका दर्शन होता है, जो है। अगर उसे जानना है जो है तो उसे छोड़ देना होगा जो हमने कल्पित किया हुआ है, तभी अनुभव हो सकता है सत्य का। इसलिए मैंने खूंटियों वाली कहानी कही। हम बहुत सी खूंटियों से बंधे हैं जो हमारी अपनी ईजाद हैं, जिनका कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। वे सब कल्पना की खूंटियां हैं, कल्पना के जाल हैं। और उनको ही धर्म कहा जाता रहा है। इसलिए आज अगर आपसे मैं कहूं कि वह धर्म नहीं है तो बड़ी चोट पहुंचती है। चोट पहुंचनी स्वाभाविक है।
अगर उस ऊंट को भी कोई कहता कि पागल, तू जहां बंधा है वहां कोई खूंटी नहीं है, तो वह भी नाराज होता। और अगर कोई बहुत तेज ऊंट होता, तो झगड़ा करने को खड़ा हो जाता। और अगर कोई सिद्धांतवादी ऊंट होता, तो तर्क करने को खड़ा हो जाता। वह तो बेचारा ऊंट था, न तो उससे किसी ने कहा और न झगड़ा हुआ और न पता चल सका कि उस ऊंट का क्या ख्याल था इस मामले में।
लेकिन अगर आपसे कोई कहे कि आप बिल्कुल कल्पना से बंधे हैं, तो आप नाराज हो जाएंगे, क्योंकि हमारे अहंकार को यह स्वीकार नहीं होता है कि हम कल्पना से बंधे हैं। हमारा तो ख्याल यह होता है कि हम सत्य के साथ खड़े हैं। हरेक को यह ख्याल है कि मैं सत्य के साथ खड़ा हूं। लेकिन अगर आप सत्य के साथ खड़े हैं तो आपके जीवन में परम आनंद की वर्षा हो जाती। तो आपके जीवन में आलोक बरस जाता। तो आपका जीवन मंगल से भर जाता। तो आपके जीवन में दुख-पीड़ा विलीन हो जाती। तो आपके जीवन में विसंगीत न रह जाता। तो आपके जीवन में आती एक सुगंध, आता एक संगीत, आती ताजी हवाएं जो आपको मुक्त कर देतीं।
लेकिन वह तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। न तो वह संगीत सुनाई पड़ता है जीवन
से, न वे ताजी हवाएं जीवन में मालूम होती हैं, न वह आह्लाद, न वह आनंद, न कोई अर्थ, न कोई प्रकाश, न कोई थिरक, न कोई पुलक, कुछ भी तो नहीं मालूम होता। तो कैसे मान लें कि सत्य के साथ आप खड़े हैं? अगर हम किसी बगीचे के पास जाएं और न वहां सुगंध आती हो, न ठंडी हवाएं आती हों, न वहां कोई हरियाली दिखाई देती हो और कोई हमसे कहे कि आप बगीचे में खड़े हैं तो हम कहेंगे--बगीचे में कैसे खड़े हैं? न कोई ठंडक मालूम होती है, न कोई शीतल हवाओं का पता चलता है, न कोई सुगंध! कैसा है यह बगीचा? तो वह कहेः यह बगीचा ऐसा है, जिसमें कोई पौधे वगैरह नहीं हैं, फूल वगैरह नहीं हैं, ऐसा बगीचा है यह। तो फिर बात अलग है। जिस सत्य के साथ मनुष्य-जाति खड़ी है, अगर वह ऐसा सत्य है कि न उसमें कोई आनंद है, न कोई सौंदर्य है, न कोई स्वतंत्रता है, तो फिर ठीक है। अगर ऐसा कोई बगीचा है जहां कोई पौधे, फल-फूल कुछ भी नहीं हैं तो नाम ही है बगीचा, ऐसे है मरुस्थल। तो ऐसे अगर किसी सत्य के पास खड़े हैं तो बात अलग है। लेकिन जांचिए और परखिए और खोज करिए कि जिसे हम सत्य मान रहे हैं अगर वह सत्य होता तो हम दूसरे तरह के आदमी हो गए होते। लेकिन हम तो कीड़ों-मकोड़ों की तरह करीब-करीब जीवन गुजार रहे हैं। तो निश्चित ही इस बात की सूचना है कि हम सत्य के निकट नहीं हैं, हम किसी असत्य को सत्य मान कर बैठे हुए हैं, इसलिए हमारा सारा श्रम व्यर्थ जा रहा है। हमारी सारी साधना व्यर्थ जा रही है। हमारी सारी खोज व्यर्थ जा रही है। कहीं हम पहुंचते नहीं, कहीं हम कुछ पाते नहीं। एक कोल्हू के बैल की तरह का घेरा है, उसमें हम घूमते हैं, घूमते हैं और समाप्त हो जाते हैं।
इसलिए यह जानते हुए भी कि मेरी बातें शायद आपको चोट पहुंचाएं, मैं उन बातों को कहने को तैयार हूं जो कई बार ऐसी लगती हैं कि आपके मन पर हिंसा हो जाएगी, आपको दुख पहुंचेगा, चोट पहुंचेगी। लेकिन कई बार ऐसा हो जाता है कि घाव मिटाने को कुछ चोट पहुंचानी पड़ती है ताकि वह फूट जाए और बह जाए। और कई बार ऐसा हो जाता है कि जो आपको प्रेम करते हैं उनको भी आपके साथ सर्जरी करनी होती है। मैं जो भी कर रहा हूं, मेरे प्रेम से कर रहा हूं, और कोई भी कारण नहीं है, और कोई वास्ता भी नहीं है। मुझे जो बात ठीक लगती है वह आपसे

कह रहा हूं। आपको चोट पहुंचे, जानता हूं कि पहुंचेगी। चाहता हूं, पहुंचनी चाहिए। शायद चोट पहुंच जाए तो आपके भीतर विचार पैदा हों, शायद कोई धक्का दे दे, आपकी नींद खुल जाए।
नाराज तो आप होंगे उससे, जो आपको धक्का देकर नींद खुलाएगा, क्योंकि नींद टूटना किसी को भी पसंद नहीं आता है। नाराज तो आप होंगे कि इस आदमी ने बेवक्त नींद तोड़ दी। अभी तो हम अच्छा-अच्छा सपना देख रहे थे, इसने जगा दिया।
कितना ही अच्छा सपना हो, लेकिन जागरण के मुकाबले कुछ भी नहीं है। टूट जाए और जागरण आ जाए तो चाहे कितना ही मधुर रहा हो सपना, जागते ही आप पाएंगे कि सपना झूठा था, जागरण सत्य है। उसकी ही खोज कर रहे हैं।
कल अंतिम दिन और, अंतिम सूत्रों पर आपसे बात करूंगा कि वह जागरण कैसे फलित हो सकता है जो सारी कल्पनाओं से मुक्त कर दे और सत्य के सामने ले जाए और पहुंचा दे वहां जहां परमात्मा है--उसकी कल हम अंतिम बात करेंगे। अभी कुछ और प्रश्न हैं, वह कल मैं ले लूंगा।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए पंद्रह मिनट के लिए बैठेंगे। थोड़ा सा रात के ध्यान के संबंध में आप समझ लेंगे और फिर दूर-दूर फैल जाएंगे।
आप पहले हट ही जाएं दूर-दूर, चूंकि लेट जाना होगा ध्यान के लिए, इसलिए अपना-अपना स्थान बना लें।

अपने माहिं टटोल
आठवां प्रवचन

अहंकार का भ्रम

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीते दो दिनों में, मनुष्य के मन पर कौन सी जंजीरें हैं, उन जंजीरों में से दो जंजीरों की हमने बात की है। और आज तीसरी जंजीर की बात करेंगे। पहली जंजीर इस बात की है, यह बोध, यह भ्रम, यह ख्याल कि मैं जानता हूं। ज्ञान का भ्रम मनुष्य के मन की कारागृह की पहली ईंट है। दूसरा, मैं कर्ता हूं, कर्म का मालिक हूं, अपना मालिक हूं, यह भाव भी एकदम भ्रांत और झूठा है। ये दोनों बातें हमने विचार कीं। आज तीसरी और सर्वाधिक कठिन बात पर हम विचार करेंगे।
शायद ये दो बातें ख्याल में भी आई हों, तीसरी बात ख्याल में आनी और भी थोड़ी मुश्किल है। लेकिन जिन लोगों ने दो सीढ़ियों को समझा है, वे जरूर ही तीसरी भी समझ सकेंगे।
मैं जानता हूं, यह भ्रम है। मैं कर्ता हूं, यह भ्रम है। और सबसे बड़ा भ्रम यह है कि मैं हूं, मेरा होना। मेरा होना सबसे बड़ा भ्रम है। मैं हूं, यह मनुष्य के जीवन का केंद्रीय भ्रम है, केंद्रीय असत्य है। और इसी असत्य के आस-पास वह जीता है। इसलिए जो जीवन खड़ा होता है, वह सारा जीवन ही मिथ्या और झूठ हो जाता है। इस संबंध में हम आज की सुबह बात करेंगे।
मैंने कहा, कठिन होगी यह बात ख्याल में लानी, क्योंकि इसे तो हमने जन्म के साथ ही स्वीकार कर लिया है कि मैं हूं। और हमने न इस पर कभी विचारा, न इसकी कभी खोज की कि यह मैं क्या है? यह है भी या नहीं है? यह मैं कौन हूं? न हमने इसे खोजा, न सोचा, न हमने इसका कोई अनुसंधान किया। हमने इसे मान लिया है, हमने इसे स्वीकार कर लिया है। यह स्वीकृति हमारी एकदम अंधी है, यह तो इस बात से ही ज्ञात हो जाएगा कि हमें पता नहीं है कि मैं कौन हूं। जिस मैं को हम माने हुए बैठे हैं, उसका हमें कोई भी पता नहीं है कि वह क्या है। और जिस चीज का हमें पता ही न हो कि वह क्या है, उसे मान लेना अंधा तो होगा ही। लेकिन सामान्यतया हमने कुछ कामचलाऊ ख्याल पैदा कर लिए हैं, जिनसे हमें लगता है कि मैं हूं, यह हूं, वह हूं!
एक छोटी सी कहानी कहूं और उससे ही अपनी चर्चा शुरू करूं।
एक रात एक सराय में एक नया मेहमान आया। सराय भरी हुई थी, रात बहुत बीत चुकी थी, उस गांव के दूसरे मकान बंद हो चुके और लोग सो चुके थे। सराय का मालिक भी सराय को बंद करता था, तभी वह मेहमान अपने घोड़े को लेकर वहां पहुंचा और उसने कहाः कुछ भी हो, कहीं भी हो, मुझे रात भर टिकने के लिए जगह चाहिए ही। इस अंधेरी रात में अब मैं कहां खोजूं और कहां जाऊं?
सराय के मालिक ने कहाः ठहरना तो हो सकता है, लेकिन अकेला कमरा मिलना कठिन है। एक कमरा है, उसमें एक मेहमान अभी-अभी आकर ठहरा है, वह जागता होगा, क्या तुम उसके साथ ही उसके कमरे में सो सकोगे?
वह व्यक्ति राजी हो गया। एक कमरे में दो मेहमान ठहरा दिए गए। जो नया मेहमान आया था, वह अपने बिस्तर पर लेट गया। न तो उसने जूते खोले, न अपनी पगड़ी निकाली, न अपना कोट अलग किया, वह सब कपड़े पहने हुए लेट गया। दूसरा आदमी जो वहां ठहरा हुआ था, उसे हैरानी भी हुई, लेकिन अपरिचित आदमी से कुछ कहना ठीक न था, वह चुप रहा। लेकिन जो आदमी पगड़ी बांधे ही सो गया था, वह करवटें बदलने लगा और नींद आनी उसे कठिन हो गई। दूसरे मेहमान ने अंततः संकोच तोड़ा और उसने कहाः मित्र, अगर बुरा न मानें, तो मैं सोचता हूं, आपको इसीलिए नींद नहीं आ पा रही है कि आप जूते पहने हैं, सारे कपड़े पहने हैं, पगड़ी बांधे हुए हैं। ऐसे कभी कोई सोया है? थोड़े शिथिल हो जाएं, थोड़े इन कपड़ों को अलग कर दें, थोड़े आराम से हो जाएं, तो शायद नींद आ जाए।
वह आदमी उठ कर बैठ गया और उसने कहाः मैं भी सोचता हूं कि कपड़े अलग कर दूं, जूते अलग कर दूं। लेकिन एक बड़ी कठिनाई है, उस वजह से मैं अलग नहीं कर पा रहा हूं। अगर मैं अकेला होता इस कमरे में, तो मैं कपड़े अलग कर देता, पगड़ी अलग कर देता, आराम से सो जाता, लेकिन तुम भी हो।

तो उस आदमी ने कहाः मेरे होने से क्या कठिनाई है?
वह व्यक्ति बोलाः कठिनाई यह है कि अगर मैंने अपने सारे कपड़े उतार कर
रख दिए, तो सुबह मैं कैसे पहचानूंगा कि मैं कौन हूं? कपड़ों के कारण ही तो मैं पहचानता हूं कि मैं कौन हूं। अगर अकेला होता, तो मैं समझ जाता कि मैं वही हूं और ये कपड़े मेरे हैं। लेकिन यहां दो आदमी हैं और रात भर की नींद के बाद जब मैं उठूंगा तो यह तय कैसे होगा कि मैं कौन हूं और ये कपड़े किसके हैं?
वह आदमी बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः आश्चर्य की बात है, क्या आप अपने
को अपने कपड़ों से पहचानते हैं?
उस आदमी ने कहाः मैंने आज तक एक आदमी ऐसा नहीं देखा जो कपड़ों के अलावा
और किसी चीज से अपने को पहचानता हो।
कपड़ों से ज्यादा पहचान किसी की गहरी नहीं है। भीतर कौन है, उसे तो कोई
भी नहीं जानता; बाहर जो है, उसी को हम सब जानते हैं। वह तो कपड़ों से ज्यादा नहीं है। आदमी ने तो बात बड़ी अदभुत कही।
उस दूसरे व्यक्ति ने कहाः तब एक काम करें, नींद तो लेनी जरूरी है और आपने जो मसला उठा दिया वह बहुत कठिन है। अब एक ही रास्ता है, और आप न सो पाए तो मैं भी न सो पाऊंगा। उस कमरे में, उन दोनों मेहमानों के पहले जो लोग ठहरे होंगे, उनके बच्चे खेलने की एक गुड़िया और एक फुग्गा छोड़ गए थे। उस दूसरे आदमी ने इस पगड़ी बांधे वाले आदमी से कहाः आप कृपा करें, कपड़े उतार दें, यह गुब्बारा पड़ा हुआ है, इसको अपने पैर में बांध लें और यह गुड़िया अपने बिस्तर पर रख लें, ये आपके चिह्न हो जाएंगे, सुबह जब आप उठेंगे तो आप जान लेंगे कि मैं कौन हूं और अपने कपड़े पहन लेना। यह बात तय हो गई। उस आदमी ने कपड़े उतार दिए, पैर में गुब्बारा बांध लिया और गुड़िया पास रख ली और सो गया।
थोड़ी ही देर बाद लेकिन उस दूसरे आदमी को मजाक सूझी। उस सोए हुए आदमी
के पैर से गुब्बारा निकाल कर उसने अपने पैर में बांध लिया और उसकी गुड़िया उठा कर अपने बिस्तर पर रख ली। कोई चार बजे रात वह आदमी घबड़ा कर उठा और जोर से चिल्लाने लगा और दूसरे आदमी को उसने हिला कर उठाया और कहा कि मेरे मित्र, मैंने जो कहा था, वह गड़बड़ मालूम होता है हो गई, कठिनाई खड़ी हो गई। मेरा नाम मुल्ला नसरुद्दीन है--था। जब मैं कपड़े पहने हुए था, मैं जानता था कि मैं मुल्ला नसरुद्दीन हूं। तुमने कहा था कि पैर में गुब्बारा बांध लो। वह गुब्बारा कहां है? वह तुम्हारे पैर में बंधा हुआ है। वह गुड़िया तुम्हारे पास रखी हुई है। इससे तय हो गया कि तुम मुल्ला नसरुद्दीन हो, लेकिन मैं कौन हूं अब? अब मैं कौन हूं, यह बड़ी मुश्किल हो गई पहचाननी। और अब इस जिंदगी में बड़ी कठिनाई हो जाएगी। आइडेंटिटी खो गई, मेरा नाम खो गया, मेरा व्यक्तित्व खो गया।
यह कहानी बड़ी अनूठी मालूम पड़ती है। लेकिन आपको भी शायद पता नहीं है, आपके कपड़े छीन लिए जाएं, आपकी पदवियां छीन ली जाएं, आपका नाम छीन लिया जाए, तो आप क्या रह जाएंगे? आपकी आइडेंटिटी भी खो जाएगी, आपका व्यक्तित्व भी खो जाएगा। आप भी खड़े हो जाएंगे, ना-कुछ, नोबडी, जिसकी कोई पहचान नहीं है, जिसकी कोई रिकग्नीशन नहीं है, जिसका कोई नाम नहीं है, जिसका कोई ठिकाना नहीं है। हम अपने मैं को कैसे पहचानते हैं? कौन से रास्तों से पहचानते हैं?
एक सम्राट ने एक महाकवि को अपने घर भोजन पर आमंत्रित किया था। तो वह कवि दरिद्र था, वह अपने फटे-पुराने कपड़ों को पहन कर पहुंच गया। लेकिन द्वार पर खड़े द्वारपालों ने उसे वापस लौटा दिया और कहाः भाग जाओ, सम्राटों से मिलने योग्य तुम्हारी सूरत नहीं मालूम होती।
बात सच थी। वह कोई भिखमंगा मालूम पड़ता था। वह वापस लौट आया। उसने अपने मित्रों को कहा। मित्रों ने कहाः तुम पागल हो। सम्राटों के द्वार पर आदमी नहीं, कपड़े पहचाने जाते हैं। सच्चाई तो यह है कि किसी द्वार पर आदमी नहीं पहचाने जाते, हर द्वार पर कपड़े पहचाने जाते हैं। तुम व्यर्थ ही दरिद्र कपड़े पहन कर वहां पहुंच गए। अगर एक मुर्दा आदमी भी अच्छे कपड़े पहन कर पहुंच जाता, तो उसका स्वागत होता। क्योंकि कपड़े दिखाई पड़ते हैं, आदमी तो दिखाई पड़ता नहीं। और आदमी का पता किसको है कि आदमी क्या है? कपड़े दिखाई पड़ते हैं, कपड़े पहचाने जाते हैं, कपड़े सब कुछ हैं।

उस कवि की बुद्धि में बात आ गई, उसने उधार कपड़े मांगे मित्रों से और अच्छे कपड़े पहन कर वह थोड़ी देर बाद वापस उसी द्वार पर पहुंच गया। संतरी भागे हुए आए, राजा को खबर दी गई, राजा खुद द्वार पर महाकवि को लेने आया, उसके हाथ में हाथ डाल कर वह भीतर गया। उसे भोजन पर बिठाया। बहुत स्वर्ण की थालियों में बहुत बहुमूल्य भोजन आए। वह महाकवि, वह राजा आमने-सामने बैठे। उस राजा ने कहाः शुरू करें भोजन, कृपा करें।
उस कवि ने कहाः शुरू करूं। भोजन उठाया और अपने कोट से बोला, मेरे कोट,
तू पहले भोजन कर ले। अपनी पगड़ी को भोजन लगाया और कहा, तू भोजन कर ले। अपने जूते को भोजन लगाया।
राजा ने कहाः महानुभाव, बड़ी अजीब आदतें हैं आपकी भोजन शुरू करने की। ऐसी आदतें मैंने कभी देखीं नहीं। यह क्या कर रहे हैं आप?
उस कवि ने कहाः मैं तो पहले भी आया था, लेकिन द्वार पर जगह न मिल सकी।
अब जिन कपड़ों के कारण द्वार खुले हैं, अगर उन्हें भूल जाऊं तो बड़ी अशिष्टता होगी। ये कपड़े हकदार हैं पहले भोजन कर लेने के, ये ही मुझे यहां लाए हैं। सच तो यह है, ये ही यहां आए हैं, मैं कहां हूं! क्योंकि मैं तो पहले भी आया था, लेकिन द्वार बंद पाए थे।
कपड़ों से आदमी पहचाना जाता है। दूसरे पहचानते हों, यह तो ठीक है, हम खुद भी अपने को अपने ही कपड़ों से पहचानते हैं।
एक यहूदी मित्र ने, जो जर्मनी से भारत की यात्रा पर आया, मुझसे एक बात कही। उससे मैं यह कह रहा था, उससे मैं यह कह रहा था कि आदमी अभी कपड़ों के ऊपर नहीं उठ सका, आत्मा की बात बहुत दूर है। उसने अपनी एक घटना सुनाई। हिटलर के जमाने में वह जर्मनी के एक जेलखाने में बंद रहा। यहूदियों की हत्या की हिटलर ने, पांच सौ यहूदी रोज मारे जाते रहे। अकेले हिटलर ने कोई बीस लाख यहूदी मारे। पांच सौ यहूदी रोज नियमित हत्या करने की योजना रही। वह भी यहूदी था, वह भी पकड़ लिया गया था। यह बिल्कुल संयोग की बात थी कि वह बच गया, क्योंकि वह आखिरी दिनों में पकड़ा गया और उसके मरने की लिस्ट थोड़ी दूर थी और युद्ध समाप्त हो गया। उसने मुझे बताया कि जब मैं पहली दफा ले जाया गया, तो मेरे साथ कोई दो हजार यहूदी और थे। हम सारे लोगों को जेल में ले जाकर सबसे पहला काम यह किया गया कि हमारे सारे कपड़े छीन लिए गए और हम नग्न कर दिए गए। दो हजार लोग नग्न कर दिए गए। फिर हमारे सिर घोंट डाले गए, हमारी मूंछें बना दी गईं, हमारे सारे बाल साफ कर दिए गए। और तब उसने कहा कि मैं इतना घबड़ा गया, आप ठीक कहते हैं, दो हजार नंगे और सिर घुटे लोगों में पहचानना मुश्किल हो गया कि कौन कौन है! जो अपने मित्र थे, वे भी समझ में नहीं आने लगे कि ये कौन हैं? खुद को आईने में देख कर शक होने लगा कि यह मैं मैं ही हूं?
कपड़ों ने--और कपड़ों से मेरा मतलब बहुत सी बातों से है। जो कपड़े हम पहने हुए हैं, वे तो कपड़े हैं ही, हमने और तरह के कपड़े भी पहन रखे हैं--पद के, पदवियों के, वंशों के, नामों के, परिवारों के--वे भी हमारे कपड़े हैं, वे भी हमने ओढ़ रखे हैं।
एक आदमी मिनिस्टर हो जाए, तो बड़े ऊंचे कपड़े मन पर उसके ओढ़ लिए जाते हैं। एक आदमी राष्ट्रपति हो जाए, तो उसकी आत्मा पर बड़े गहरे लबादे ओढ़ लिए जाते हैं। और उसी राष्ट्रपति को नीचे उतार लो उसकी कुर्सी से, उसके कपड़े छिन जाएंगे, वह ना-कुछ हो जाएगा। उसे फिर कोई पूछेगा नहीं, कोई फिकर नहीं करेगा।
बहुत तरह-तरह के कपड़े हमारे ऊपर इकट्ठे हैं। और इन्हीं कपड़ों को हम समझते हैं--मेरा होना, मेरा अस्तित्व, मैं! धन हो, पद हो, यश हो, पदवी हो, प्रतिष्ठा हो, तो मेरा मैं मजबूत हो जाता है। न हो, तो मेरा मैं छोटा हो जाता है, क्षीण हो जाता है।
मरते वक्त नेपोलियन हार चुका था युद्ध में और एक छोटे से द्वीप सेंट हैलेना में उसको बंद कर दिया गया था। अब नेपोलियन उन थोड़े से लोगों में से था, जिन्होंने सारी जमीन को हिला दिया। जिन्होंने पहाड़ों से कहा--हट जाओ! तो पहाड़ों को हट जाना पड़ा। जिन्होंने कौमों से कहा--मिट जाओ! तो कौमों को मिट जाना पड़ा। उन थोड़े से लोगों में एक था। आखिरी वक्त हार गया और हैलेना में बंद कर दिया गया। पहले ही दिन सुबह उठ कर वह घूमने निकला, एक छोटी सी

पगडंडी पर। उसका मित्र, उसका डाक्टर उसके साथ था। छोटी थी, संकरी थी पगडंडी। उस तरफ से एक घास लेने वाली औरत घास का गट्ठा सिर पर लिए हुए आती थी। नेपोलियन के डाक्टर मित्र ने चिल्ला कर कहाः घसियारिन, रास्ता छोड़ दे! देखती नहीं कौन रास्ते पर आ रहा है?
लेकिन नेपोलियन ने कहाः मेरे मित्र, तुम भूल करते हो। रास्ता हमें छोड़ देना चाहिए। अब नेपोलियन कहां है! अब मैं कौन हूं! एक कैदी से ज्यादा नहीं।
और नेपोलियन छोड़ कर रास्ता खड़ा हो गया और उसने कहाः घासवाली को निकल जाने दो, वह कुछ है, मैं तो अब कुछ भी नहीं हूं। मैं नेपोलियन था कल तक और मैंने पहाड़ों से कहा होता--रास्ते से हट जाओ, तो पहाड़ हट गए होते। लेकिन आज, आज मैं क्या हूं! एक घासवाली फिर भी कुछ है, मैं तो कुछ भी नहीं, ना-कुछ, नोबडी। मुझे हट जाने दो।
वह नेपोलियन हट गया। यह नेपोलियन कल तक सब कुछ था, आज ना-कुछ कैसे हो गया? क्या छिन गया इसके पास से? इसके वस्त्र छिन गए, इसके कपड़े छिन गए, इसकी कुर्सी छिन गई, अब यह ना-कुछ है।
हम सारे लोगों को भी यह जो ख्याल है कि मैं कुछ हूं, क्या यह हमें पता
है कि हम क्या हैं, उसका यह ख्याल है या केवल उन वस्त्रों का जो हमने पहन रखे हैं? हमने जो वस्त्र पहन रखे हैं, हमने जो नकाब ओढ़ रखे हैं, हमने जो मुखौटे पहन रखे हैं, हमने जो नाटक और अभिनय सीख लिया है, वही है हमारा मैं या कुछ और भी है? कोई और गहरा परिचय है या इसी से परिचय है? अगर इसी से परिचय है तो यह बड़ा झूठा मैं है और इसे छोड़ देना जरूरी है।
यह मैं, यह मेरे होने का भाव अत्यंत मिथ्या है, इसकी कोई सत्ता नहीं है, यह प्याज की भांति है। हम प्याज के छिलके निकालते चले जाएं, निकालते चले जाएं, आखिर में क्या बच रहता है? बस छिलके निकल जाते हैं और निकल जाते हैं, और भीतर कुछ भी नहीं है। वस्त्र ही वस्त्र हैं प्याज में, उसके भीतर कुछ भी नहीं है। ऐसा ही हमारा यह मैं है, इसमें वस्त्र ही वस्त्र हैं, निकालते चले जाएं, निकालते चले जाएं, भीतर बच रहता है ना-कुछ। भीतर कुछ पता नहीं चलता कि क्या है।
क्या हैं आप? उसको थोड़ा छीलना शुरू करें, उसके कपड़े निकालना शुरू करें। और धीरे-धीरे आप पाएंगे कि भीतर रह गया शून्य, वहां किसी मैं का कोई पता नहीं चल रहा कि मैं कौन हूं। इसीलिए तो कोई भीतर नहीं जाना चाहता।
हम बातें इतनी सुनते हैं कि अपने को जानो, भीतर जाओ। सुन लेते हैं, लेकिन कभी भीतर जाना नहीं चाहते। क्योंकि भीतर जाने में बड़े प्राणों पर संकट आ जाएगा। खुद की चमड़ी निकाल-निकाल कर अलग करनी होगी, तभी तो कोई भीतर जा सकता है।
ये जितने वस्त्र हमने पहन रखे हैं, अपने मैं के आस-पास हमने जो सजावट
कर रखी है, वह उखाड़ देनी पड़ेगी, तभी तो हम भीतर प्रवेश कर सकते हैं। उसको उखाड़ने में कोई भी डरता है, घबड़ाता है। वही तो मैं हूं। इसलिए भीतर जाने में एक भय, एक फियर, एक चिंता, एक संताप मालूम होता है।
आज की सुबह इस मैं की पर्तों को उखाड़ने का ही हम काम करेंगे। इस मैं की प्याज के छिलकों को अलग करने की कोशिश करेंगे, ताकि भीतर जाया जा सके और जाना जा सके कि वहां क्या है? वहां कौन छिपा है? कौन सी सत्ता? कौन सी आत्मा वहां निवास करती है?
आत्मा को जानने के पहले मैं की पर्तों को उखाड़ लेना जरूरी है। जैसे कोई कुआं खोदता है, मिट्टी निकालता है, पत्थर निकालता है, खोदता है जमीन को, पर्त-पर्त जमीन को अलग करता है, ताकि भीतर छिपे जल के स्रोत उपलब्ध हो सकें। ऐसे ही मनुष्य की आत्मा की खोज में भी खुदाई करनी होती है और मैं की बहुत सी पर्तें जो कि जमीन की भांति आत्मा के जल को घेरे हुए हैं, उन्हें तोड़ना पड़ता है और निकालना पड़ता है। और जब सारी मैं की पर्तें उखड़ जाती हैं, तब जो शेष रह जाता है, वही आत्मा है, वही मैं हूं।
मैं की झूठी पर्तों को जो उखाड़ने में समर्थ होता है, वही सच्चे मैं को जानने में समर्थ हो पाता है। और जो मैं की पर्तों को मजबूत किए जाता है, वह सदा के लिए आत्मा से दूर हो जाता है।

हम सारे लोग मैं की पर्तों को मजबूत करने में लगे रहते हैं। छोटा मकान मैं को उतनी मजबूत पर्त नहीं देता, बड़ा मकान और मजबूत पर्त देता है। इसलिए छोटे मकान से बड़े मकान की दौड़ चलती है। थोड़े रुपये मैं को मजबूती नहीं देते, बहुत रुपये मैं को मजबूती देते हैं। इसलिए थोड़े रुपयों से बहुत रुपयों की तरफ दौड़ चलती है।
एंड्रू कारनेगी मरा, अमेरिका का एक अरबपति। मरते वक्त उसके पास कोई चार अरब रुपये थे। चार अरब रुपये बहुत रुपये हैं, लेकिन दूसरे के पास हों तो, अगर खुद के पास हों तो बहुत कम हैं। अगर आपके पड़ोसी के पास चार अरब रुपये हैं, तो आपको लगेगा बहुत हैं। लेकिन अगर आपके पास हों, तो आपको लगेगा--क्या है, केवल चार अरब ही तो हैं! एंड्रू मरा, उसके पास चार अरब रुपये थे, उसकी जीवनकथा लिखने वाले एक लेखक ने उससे मरने के दो दिन पहले पूछा कि मित्र, तुम तो तृप्त हो गए होओगे, तुम्हारे पास तो अटूट और अपार संपत्ति है।
एंड्रू कारनेगी ने कहाः क्या कहते हो? दस अरब की मेरी योजना थी, मैं एक असफल आदमी हूं, केवल चार अरब कमा पाया। मैं दुखी हूं, मैंने जितना चाहा था, मैं उतना नहीं कमा पाया। अमेरिका में ऐसे लोग भी हैं जिनके पास दस अरब रुपया भी है।
एंड्रू कारनेगी के पास चार अरब रुपये का होना कोई सुख का कारण नहीं है, लेकिन अमेरिका में ऐसे लोग हैं जिनके पास दस अरब रुपया है, यह दुख का कारण जरूर है। क्यों है यह दुख का कारण? जिनके पास दस अरब हैं, उनका अहंकार और भी प्रगाढ़ और मजबूत है। एंड्रू कारनेगी उनके सामने छोटा है, वे बड़े हैं। उनकी अस्मिता, उनकी ईगो और मजबूत है। कारनेगी की बेचारे की थोड़ी छोटी है, उसके पास केवल चार अरब रुपये हैं।
कारनेगी दुखी मरा। दुनिया में कोई आदमी सुखी नहीं हो सकता। अहंकार किसी को सुखी नहीं होने देगा, क्योंकि अहंकार की सतत मांग यह होती है--और आगे, और आगे। क्योंकि जितना मिल जाता है, वह तो अहंकार उसे आत्मसात कर लेता है और उसकी भूख खड़ी हो जाती है--और आगे चाहिए। उसकी कोई तृप्ति नहीं है। तृप्ति इसलिए नहीं है कि अगर अहंकार कोई वास्तविक चीज होती, तो उसकी तृप्ति भी हो सकती थी, वह बिल्कुल छाया है। छाया की कभी कोई तृप्ति नहीं हो सकती।
एक राजमहल के द्वार पर एक सुबह बहुत भीड़ लग गई थी। एक भिखारी आया था और उसने अपना भिक्षा-पात्र राजा के महल के द्वार के सामने फैलाया और राजा से उसने कहाः मुझे भिक्षा मिल सकेगी?
उस राजा ने कहाः जिस द्वार पर तुम खड़े हो, वहां से कभी कोई खाली हाथ वापस नहीं लौटता। क्या चाहते हो? जो चाहोगे, मिल सकेगा।
लेकिन उस भिक्षु ने कहाः सवाल यह नहीं है कि क्या मैं चाहूं, मेरी शर्त दूसरी है और आज तक मेरी शर्त कोई पूरी नहीं कर पाया।
एक भिखारी राजा से ऐसा कहे, तो राजा के अहंकार को चोट लग जानी स्वाभाविक है। राजा ने कहाः तुम पागल हो! क्या तुम्हारी शर्त है? बोलो, हम पूरा कर देंगे।
उस भिखारी ने कहाः बड़ी छोटी है मेरी शर्त, लेकिन पूरा करने का वचन देने के पहले बहुत सोच लेना। यह जो भिक्षा-पात्र है मेरे पास, जो तुम्हें देना हो, मिट्टी देनी हो मिट्टी सही, लेकिन एक शर्त पर स्वीकार करता हूं-- मेरा पूरा पात्र भर देना, अधूरा मत रखना, खाली मत रखना। चाहे मिट्टी डाल देना, तो राजी हूं, लेकिन अधूरा पात्र लेकर वापस न जाऊंगा, पात्र पूरा भरना पड़ेगा।
राजा हंसने लगा, छोटा सा पात्र था। और राजा के पास क्या थी कमी, सारी जमीन जीत चुका था। उसने अपने मंत्रियों को कहाः जाओ, हीरे-जवाहरातों से इसके पात्र को भर दो। यह भी याद रखे कि राजाओं के द्वार पर मिट्टी दान में नहीं मिलती। और क्या छोटी सी तेरी मांग है कि पात्र को पूरा भर दो। और पात्र ही लाना था तो कोई बड़ा ले आना था!
भिक्षु लेकिन खड़ा मुस्कुराता रहा। सदा ऐसा हुआ है, भिक्षु हमेशा राजाओं पर मुस्कुराते रहे हैं, लेकिन बहुत कम राजा समझ पाए हैं कि भिक्षु क्यों मुस्कुराते हैं। वह भिक्षु मुस्कुराता रहा। वजीर भर कर ले आए हीरे-

जवाहरात, बहुत ज्यादा ले आए थे, पात्र बहुत छोटा था, ताकि भिक्षु देख ले और उसकी आंखें समझ लें कि किसके द्वार पर वह आ गया है। और वे हीरे-जवाहरात उस पात्र में डाले गए। लेकिन भिक्षु हंसता रहा। वह हतप्रभ न हुआ उस चमक को देख कर।
और थोड़ी देर में राजा की मुस्कुराहट खो गई, आंखों की रोशनी जाने लगी। भिक्षु का पात्र कुछ अजीब था, जितना भी उसमें डाला गया, खो गया, उसे भरना कठिन हो गया। खजाने खाली होने लगे, सुबह बीत गई, दोपहर आने लगी। नगर भर में खबर पहुंच गई, भीड़ बढ़ने लगी, द्वार के समक्ष राजधानी इकट्ठी होने लगी। भिक्षु खड़ा था और हंस रहा था। और राजा की हंसी समाप्त हो गई थी। और वजीर भागे हुए तिजोरियों से सोने-चांदी को लाने लगे, हीरे-जवाहरात चुक गए थे, सोना-चांदी डाला जाने लगा। लेकिन पात्र था अजीब, भरता नहीं था। जो भी डाला जाता था, खो जाता था उसमें।
सांझ हो गई और राजा हार गया। असल में सांझ होते-होते कौन राजा हार नहीं जाता है, सभी हार जाते हैं। सांझ हो गई, राजा हार गया और पैरों पर गिर पड़ा उस भिखारी के और कहाः क्षमा कर दो! भूल हो गई हमसे! कैसा है यह भिक्षा- पात्र तुम्हारा? क्या है जादू इसमें? देखने में इतना छोटा और भरने में इतना अपूर, इतना दुष्पूर! खजाने मेरे खाली हो गए और तुम्हारा पात्र खाली का खाली है! कहां गया सब जो इसमें डाला गया? क्या है इसका रहस्य? क्या है मिस्ट्री?
वह भिक्षु बोलाः कोई रहस्य नहीं, कोई जादू नहीं। एक मरघट से निकलता था, एक आदमी की खोपड़ी मिल गई, उसी से मैंने यह भिक्षा-पात्र बना लिया। और यह तो आप जानते हैं, आदमी की खोपड़ी कभी नहीं भरती, इसलिए भिक्षा-पात्र भी कभी नहीं भरता है। बहुत राजा इस भिक्षा-पात्र के सामने हार चुके हैं, यह कभी नहीं भरा है।
और यह कहानी कुछ ऐसी नहीं है कि किसी एक महल के द्वार पर घट कर समाप्त
हो गई हो, यह हर आदमी के द्वार पर रोज घट रही है। हम अपनी-अपनी खोपड़ी के भिक्षा-पात्र को भरने में लगे हैं। कभी भरता नहीं, भर नहीं सकता, भरने का कोई उपाय नहीं है। कारण है कुछ न भरने का। कुछ कारण है। और वह कारण यह है कि जो चीज हो, वह भरी भी जा सकती है; लेकिन जो हो ही न, उसे कैसे भरा जा सकता है? जो चीज हो, उसे भरा जा सकता है; लेकिन जो हो ही नहीं, उसे कैसे भरा जा सकता है? जिसका अस्तित्व हो, उसके साथ कुछ किया जा सकता है, उसे भरा जा सकता है, खाली किया जा सकता है; लेकिन जिसका कोई अस्तित्व न हो, जिसका होना केवल कल्पना हो, उसके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।
जैसे इस कमरे में अंधकार भरा हो और हम सारे लोग अंधकार को निकालने की कोशिश करें, तो क्या हम अंधकार को निकाल पाएंगे? हम कितनी ही गठरियां बांधें, गठरियां बाहर चली जाएंगी, अंधकार यहीं रह जाएगा। हम कितने ही धक्के दें और पहलवानों को लिवा लाएं, पहलवान थक जाएंगे और अंधकार यहीं रहेगा। अंधकार को निकाला नहीं जा सकता। अंधकार को लाया जा सकता है? न निकाला जा सकता है, न लाया जा सकता है। अगर हम सारे लोग निकल पड़ें कि चलो आज थोड़ा-थोड़ा अंधकार ले आएं इस कमरे में भरने को, सांझ को हम खाली हाथ वापस लौट आएंगे, अंधकार कोई भी ला नहीं सकेगा। न अंधकार लाया जा सकता, न निकाला जा सकता। क्यों? क्योंकि वस्तुतः अंधकार है ही नहीं, उसका कोई एक्झिस्टेंस नहीं है, उसकी कोई सत्ता नहीं है। वह केवल दिखाई पड़ता है, है नहीं। हां, प्रकाश लाया जा सकता है। और प्रकाश आ जाए, तो अंधकार विलीन हो जाता है। विलीन हो जाता है, यह कहना भी गलत है, क्योंकि जो था ही नहीं, वह विलीन कैसे होगा? उचित होगा यही कहना कि प्रकाश होते ही पाया जाता है कि अंधकार नहीं है और प्रकाश बुझते ही पाया जाता है कि अंधकार है।
अंधकार फिर क्या है? अंधकार केवल प्रकाश का अभाव है, एब्सेंस। अंधकार
की अपनी कोई प्रेजेंस, अपनी कोई उपस्थिति नहीं है अंधकार की, वह खुद नहीं है, वह किसी का न होना है, वह किसी की गैर-मौजूदगी है, वह किसी की एब्सेंस है, वह किसी की अनुपस्थिति है। खुद का उसका कोई होना नहीं है।
इसलिए अंधकार के साथ हम कुछ भी नहीं कर सकते। न हम उसे ला सकते, न निकाल सकते। अंधकार के साथ डायरेक्ट एक्शन नहीं हो सकता, कोई सीधा कृत्य

नहीं हो सकता। अंधकार के साथ कुछ करना हो, तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ता है। उलटे रास्ते से, इनडायरेक्ट जाना पड़ता है।
अंधकार की ही तरह है हमारा अहंकार, उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। इसलिए अहंकार को न तो कोई भर सकता और न कोई निकाल सकता। उसका अपना कोई होना नहीं है। अगर उसके साथ कुछ भी करना हो, तो आत्मा के साथ कुछ करना पड़ता है। आत्मा की अनुपस्थिति है अहंकार, आत्मा की एब्सेंस है अहंकार। जैसे अंधकार प्रकाश की अनुपस्थिति है, वैसे अहंकार आत्मा की अनुपस्थिति है। अहंकार के साथ सीधा कुछ भी नहीं किया जा सकता।
लेकिन अहंकार के साथ हम दो काम करते हैं, हजारों वर्ष से करते रहे हैं। एक काम तो है अहंकार को भरने का। उसकी कथा वही है जो उस भिक्षु की कथा है और उसके पात्र की। भरते हैं, भरते हैं, भरते हैं, भरते-भरते खुद मिट जाते हैं और पाते हैं कि अहंकार नहीं भरा, वह वहीं का वहीं, उतना का उतना, वैसा का वैसा खाली है। क्या आप सोचते हैं, सिकंदरों, नेपोलियनों, हिटलरों के अहंकार भर जाते हैं? नहीं। सिकंदर ने मरने के पहले दुख जाहिर किया था। उसने कहा था कि मैं बहुत दुखी हूं, भगवान बहुत अजीब है, इसने केवल एक ही दुनिया बनाई, कम से कम दो तो बनानी थीं, ताकि कोई आदमी जीतना चाहे तो दो दुनिया जीत सके। एक ही दुनिया! केवल एक दुनिया है जीतने को!
सिकंदर को दुख था कि कम से कम दो दुनिया होनी चाहिए। कम से कम दो तो बनानी थीं, जीतने वाले को कुछ सुविधा तो होती। एक ही दुनिया है केवल! अहंकार अगर पूरी दुनिया जीत ले, तो फौरन सोचेगा कि दूसरी दुनिया कहां है? यह जो चांद-तारों पर जाने की इतनी कोशिश चल रही है, इसके पीछे बहुत गहरे में मनुष्य का अहंकार है। जमीन काफी नहीं है। चांद-तारे जीतने होंगे, दूर के सितारों पर राज्य कायम करना होगा, वहां झंडे गाड़ने होंगे। और इसलिए बड़ी जोर की दौड़ है। पता नहीं रूस पहले झंडा गाड़ दे चांद पर कि अमेरिका! कौन मालिक हो जाए उसका?
अब अहंकार आकाश में लड़ रहे हैं, दूसरी दुनिया की खोज हो गई। अगर सिकंदर को उसकी कब्र में पता चल जाए, तो बड़ी बेचैनी होगी उसे, कि चांद खोज लिया गया। बड़ी गलती की जो दो हजार साल पहले पैदा हुए, आज पैदा होना था, तो न केवल जमीन के मालिक हो सकते थे बल्कि चांद के भी।
लेकिन कोई चांद से हल होने को नहीं है। क्योंकि दुनिया बहुत बड़ी है और अहंकार अपूर है, दुष्पूर है, उसे भरने का कोई रास्ता नहीं है। कितना ही भरें, वह खाली रह जाता है। और खाली रह जाने से दुख होता है, पीड़ा होती है। खाली रह जाने से चिंता होती है, उसे भरने का मन होता है। हम सारे लोग जो दुखी और पीड़ित हैं, उस दुख और पीड़ा में क्या है? वह अहंकार जो नहीं भरा जा सक रहा है, वह जगह खाली है। तो सोचते हैं कि शायद आगे जगह पहुंचने से वह भर जाए, तो जिस छोटी कुर्सी पर मैं बैठा हूं, बड़ी कुर्सी पर पहुंच जाऊं तो भर जाए। लेकिन हमारी आंखें अंधी हैं, हम देखते नहीं कि उस बड़ी कुर्सी पर जो बैठा है, वह भी उतना ही दुखी है और आगे की बड़ी कुर्सी को देख रहा है। उस बड़ी, और बड़ी कुर्सी पर जो बैठा है, वह भी उतना ही दुखी है और आगे की बड़ी कुर्सी को देख रहा है। जमीन पर कहीं कोई एकाध आदमी ऐसा है जो आगे न देख रहा हो? अगर कहीं कोई ऐसा आदमी मिल जाए, तो समझ लेना कि वह आदमी परमात्मा का आदमी है, जो आगे न देख रहा हो। और जान लेना कि उस आदमी ने आत्मा जैसी कोई चीज जानी होगी। क्योंकि जो आगे की तरफ देख रहा है, वह अहंकार की दौड़ में है। फिर हो सकता है कि वह आगे उदयपुर से दिल्ली की तरफ देख रहा हो, या यह भी हो सकता है कि उदयपुर से स्वर्ग की तरफ देख रहा हो, या यह भी हो सकता है कि उदयपुर से मोक्ष की तरफ देख रहा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आगे की तरफ जो देख रहा है, वह अहंकार की दौड़ में है। ख्याल है कि वहां पहुंच जाऊं तो पूर्ति हो जाएगी। लेकिन जो आदमी इस भाषा में सोचता है कि वहां पहुंच जाऊं तो सब ठीक हो जाएगा, वहां पहुंचने पर भाषा तो यही रहेगी, दिल तो यही रहेगा, दिमाग तो यही रहेगा, वह और आगे का सोचने लगेगा--वहां पहुंच जाऊं तो सब ठीक हो जाएगा। और यह मन कहीं नहीं बदलता, इसलिए मनुष्य की खोपड़ी का भिक्षा-पात्र कभी नहीं भरता है। यह हमारा अहंकार है, जो नहीं भरने देता। अहंकार दुख और पीड़ा है।
फिर क्या करें?

तो शिक्षक और उपदेशक मिल जाते हैं, जो कहते हैंः छोड़ दो इस अहंकार को।
यह अहंकार दुख है, तो छोड़ दो। अहंकार दुख है, तो हटा दो। अहंकार दुख है, तो भगवान के चरणों में डाल दो, समर्पण कर दो। अहंकार दुख है, तो विनम्र हो जाओ, निर-अहंकारी हो जाओ। बड़ी ठीक बात मालूम पड़ती है, तर्कयुक्त मालूम पड़ती है-- छोड़ दो अहंकार को।
लेकिन जो है ही नहीं, उसे क्या छोड़ा जा सकता है? जो है ही नहीं, उसे छोड़ा जा सकता है?
यह बात तो बड़ी लॉजिकल, बड़ी तर्कयुक्त मालूम पड़ती है, हजारों साल से कही जा रही है--अहंकार छोड़ो। छोटे-छोटे बच्चों को हम समझाते हैं--अहंकार छोड़ो। स्कूल में समझाते हैं, समाज में समझाते हैं, शिक्षक, गुरु, साधु, संन्यासी समझा रहे हैं--अहंकार छोड़ो। लेकिन इससे ज्यादा मूर्खतापूर्ण और कोई बात नहीं हो सकती है। अहंकार छोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि अहंकार है ही नहीं। अगर होता, तब तो हम उसे भर ही लेते, छोड़ने का सवाल क्या था! जैसे अंधकार नहीं छोड़ा जा सकता, वैसे ही अहंकार भी नहीं छोड़ा जा सकता है। अगर छोड़ा जा सकता होता, तो दुनिया की ये धार्मिक शिक्षाएं आदमी को अब तक बदल देतीं। नहीं छोड़ा जा सकता, बल्कि उलटे परिणाम होते हैं। अहंकार छोड़ने वाला जितना अहंकारी हो जाता है, वैसा अहंकारी खोजना कठिन है। बड़ी सूक्ष्म हो जाती है उसकी अस्मिता, बड़ा दबा लेता है अपने अहंकार को।
विनम्र लोगों की आंखों में देखें, जो लोग कहते हैं कि हमने अहंकार छोड़ दिया, उनके पास जाएं, तो हैरान हो जाएंगे, उनका अहंकार बहुत अदभुत है। हां, उनके अहंकार के रास्ते दूसरे हैं, इसलिए पहचानने में देर लग सकती है। लेकिन अहंकार वहां मौजूद है, बड़े सूक्ष्म मार्गों से।
जो यह कहता है, मैं विनम्र हूं, यह घोषणा भी अहंकार की ही घोषणा है। मैं विनम्र हूं, यह घोषणा भी अहंकार की ही घोषणा है। क्योंकि जहां अहंकार नहीं है, वहां यह दावा कौन करेगा कि मैं विनम्र हूं? कौन करेगा यह दावा? और अगर आप किसी ऐसे आदमी से, जो कहता है मैं विनम्र हूं, कह दें कि हां, आप तो हैं, लेकिन हमारे गांव में आपसे भी ज्यादा विनम्र आदमी है; तो वह दुखी हो जाएगा, उसके अहंकार को चोट लग जाएगी कि मुझसे भी ज्यादा विनम्र आदमी कोई और हो सकता है?
इसलिए विनम्र आदमी इस बात की कोशिश करते हैं कि मैं विनम्र हूं और दूसरे जो विनम्र हैं वे झूठे विनम्र हैं, वह सच्ची विनम्रता नहीं है। एक साधु दूसरे साधुओं के बाबत समझाता फिरता है कि वे काहे के साधु हैं, अहंकारी हैं, विनम्र तो मैं हूं।
लेकिन यह घोषणा कौन कर रहा है? यह सूचना कौन कर रहा है? यह विज्ञप्ति कौन कर रहा है कि मैं विनम्र हूं? यह मैं की विनम्रता कोई विनम्रता हो सकती है? यह अहंकार की ही सूक्ष्मतम पर्त है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि हम एक ही तरह के अहंकार को जानते हैं, भरने वाले अहंकार को। खाली करने वाले अहंकार को हम नहीं जानते। हम भोग के अहंकार को जानते हैं, लेकिन त्यागी के अहंकार को नहीं जानते। लेकिन त्यागी भी अत्यंत अहंकारी होता है। यह अहंकार होता है--मैंने किया त्याग। और इसलिए त्याग करने वाले भोग की निरंतर निंदा करते देखे जाते हैं। निंदा क्यों? संसारी को संन्यासी गाली देता देखा जाता है, पापी कहता देखा जाता है। क्यों? इसी में उसके अहंकार की तृप्ति और मजा है कि मैं हूं त्यागी और तुम हो भोगी। मैं जाऊंगा स्वर्ग और तुम सड़ोगे नरक में। मैं भगवान के पास बैठूंगा और तुम, तुम नरक की ज्वालाओं में सताए जाओगे।
क्राइस्ट को जिस रात पकड़ा गया और सुबह सूली दी गई, जब उन्हें उनके दुश्मन पकड़ कर ले जाने लगे, तो उनके शिष्यों ने पूछा कि जीसस, तुम तो चले, लेकिन एक बात बताते जाओ, हो सकता है दुश्मन तुम्हारी हत्या कर दें, एक बात समझा दो। तुमने हमसे कहा था, भगवान का राज्य होगा, किंग्डम ऑफ गॉड, स्वर्ग का राज्य, और तुमने हमें बताया था कि भगवान के सिंहासन के पास तुम बैठोगे, क्योंकि तुम इकलौते पुत्र हो भगवान के। लेकिन हमारी पोजीशंस क्या होंगी? हमारी जगह क्या होंगी? हम कहां बैठेंगे? तुम भगवान के बगल में बैठोगे, लेकिन हम लोगों के स्थान क्या होंगे भगवान के आस-पास स्वर्ग के राज्य में,

कृपा करके यह तो बता दो! हमने कितना त्याग किया, इसका स्मरण रखना, भूल मत जाना।
इन्होंने त्याग किया था इसलिए ताकि भगवान के पास कोई विशेष जगह पर बैठने का मौका मिल जाए। भगवान का दरबार अगर कहीं हो, तो उसमें कोई नंबर पीछे न लगे, आगे रहे। यह ख्याल कि हमने त्याग किया था, उसका बदला क्या होगा स्वर्ग में, यह क्या है? यह अहंकार नहीं तो और क्या है? त्यागी का अपना अहंकार है, भोगी का अपना अहंकार है। होगा भी, क्योंकि त्यागी भी छोड़ रहा है।
एक साधु ने मुझसे कहा कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। मैंने पूछाः यह लात कब मारी? उन्होंने कहाः कोई बीस-पच्चीस वर्ष हो गए होंगे। तो मैंने उनसे निवेदन किया कि लात ठीक से लग नहीं पाई, नहीं तो तीस वर्ष तक उसके स्मरण रखने की कोई भी जरूरत नहीं थी। उसे कहने और बताने का भी कोई कारण नहीं था, लात अगर लग गई होती तो। लेकिन लात लग नहीं पाई। यद्यपि रुपये खो गए, लेकिन लात नहीं लग पाई। और जब लाखों रुपये उनके पास रहे होंगे, तो मैंने उनसे कहा कि जरूर आपको इसका रस आता रहा होगा कि लाखों रुपये मेरे पास हैं, मैं कुछ हूं। और फिर जब आपने उन लाखों रुपयों को छोड़ दिया, तो दूसरा रस आने लगा कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी, मैं कुछ हूं। उस मैं कुछ हूं में कोई फर्क नहीं पड़ा, वह वहीं का वहीं खड़ा है। लाखों रुपये थे तो वह था, लाखों रुपये छोड़ दिए तो वह है। और मैं आपसे निवेदन करता हूंः पहले होने से दूसरा होना ज्यादा मजबूत है। पहला होना बहुत कच्ची दीवाल पर खड़ा हुआ था कि लाखों रुपये हैं। लाखों रुपये छिन भी सकते थे, दीवाला निकल सकता था, नुकसान हो सकता था, हुकूमत बदल सकती थी, न मालूम क्या-क्या हो सकता था। लाखों रुपये छिन सकते थे और वह मैं कुछ हूं मिट सकता था। लेकिन लाखों रुपयों का त्याग अब कोई भी नहीं छीन सकता, इसका कोई दीवाला नहीं निकल सकता। अब यह अहंकार बहुत परमानेंट है, अब यह बहुत स्थायी है। रुपये का दंभ बहुत अस्थायी है, त्याग का दंभ बहुत स्थायी है, उसे अब कोई नहीं छीन सकता, अब कोई रास्ता नहीं है। अब हुकूमत बदले तो बदल जाए, दुनिया बदले तो बदल जाए, लेकिन अब यह त्याग छिन नहीं सकता। यह बड़ी हैरानी की बात है!
और इसीलिए त्यागी को लगता है कि मैंने कोई स्थायी संपत्ति कमा ली। वह अहंकार की ही स्थायी संपत्ति है। क्योंकि त्याग को छीनने का कोई उपाय नहीं है, धन को तो छीना जा सकता है। लेकिन है वह अहंकार, क्योंकि जिसे यह स्मरण है कि मैंने त्यागा, उसका अहंकार मौजूद है। अहंकार छोड़ा नहीं जा सकता।
फिर क्या किया जाए? न अहंकार भरा जा सकता है, न अहंकार छोड़ा जा सकता है। फिर क्या किया जाए? ये दोनों रास्ते नहीं हैं। ये दोनों रास्ते गलत साबित हुए हैं। इन दोनों रास्तों ने हजारों साल से मनुष्य के मन को पीड़ित किया है और परिणाम नहीं आया। आगे भी इनसे परिणाम आने को नहीं है। बुनियादी रूप से यह बात गलत है।
सबसे पहली बात, सबसे पहला सूत्र अहंकार की खोज में यह होगा कि मैं पहले यह तो देख लूं कि जिसे मैं भरने या जिसे मैं छोड़ने चला हूं, वह है भी या नहीं? एक आदमी अगर अपने घर से कोई चीज निकालना चाहता हो, तो पहले यह तो पता लगा ले कि वह है भी या नहीं? या कोई चीज भरना चाहता हो, तो यह तो पता लगा ले कि वह है भी या नहीं? कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति पहले यह तो जान ले कि यह अहंकार है? कहां है? क्या है? अगर यह है, तो फिर इसके साथ कुछ किया जा सकता है। लेकिन आश्चर्यों का आश्चर्य यही है कि जो लोग अहंकार को खोजने जाते हैं, वे पाते हैं कि वह है ही नहीं। तो न तो उसे भरना पड़ता है और न छोड़ना पड़ता है। वह नहीं पाया जाता है।
भारत से एक भिक्षु कोई चौदह सौ वर्ष पहले चीन गया, नाम था उसका बोधिधर्म। वह चीन पहुंचा। उसके पहुंचने के पहले उसकी ख्याति चीन पहुंच गई। वह बहुत अदभुत व्यक्ति रहा होगा। चीन का सम्राट उसे लेने चीन की सीमा पर आया। उसने स्वागत किया बोधिधर्म का और एकांत में बोधिधर्म से कहाः भिक्षु, बड़ी प्रशंसा मैंने सुनी है तुम्हारी और बड़े दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा करता हूं कि तुम कब आ जाओ। मेरे जीवन का एक दुख है, उसे मैं मिटाना चाहता हूं। अहंकार मुझे पीड़ा दे रहा है। और सैकड़ों-सैकड़ों

धर्मोपदेशकों ने मुझे समझाया है कि अहंकार छोड़ो तो दुख के बाहर हो जाओगे। लेकिन मैं अहंकार कैसे छोडूं? मैंने सब उपाय किए। मैंने उपवास किए, मैंने रूखे-सूखे भोजन किए, मैं गद्दियां छोड़ कर जमीन पर सोया, मैंने शरीर को कृशकाय कर लिया, मैं भूखों मरा, मैंने सब तरह के भोग बंद किए, मैंने सब तरह के अच्छे वस्त्र पहनने बंद कर दिए, सर्दियां और गर्मियां मैंने लंगोटियों पर गुजारीं। लेकिन भीतर मैं पाता हूं कि अहंकार मरता नहीं, वह मौजूद है। धन भी मैंने देख लिया, राज्य भी मैंने देख लिया, त्याग भी मैंने देख लिया, मैं बड़ा परेशान हूं, यह अहंकार तो जाता नहीं, वह तो मौजूद है, वह कहीं छोड़ता नहीं पीछा। अब मैं क्या करूं?
उस बोधिधर्म ने कहाः मेरे मित्र, तुमने जो भी किया, वह व्यर्थ है, क्योंकि तुमने सबसे बुनियादी बात नहीं की। वह बुनियादी बात कल सुबह हम करेंगे, तुम चार बजे आ जाओ, मैं तुम्हारे अहंकार को खत्म ही कर दूंगा।
वह राजा बहुत हैरान हुआ! इतनी आसान है क्या बात, जिसे जीवन भर उसने खत्म करने की कोशिश की है, यह कहता है व्यक्ति कि चार बजे रात आ जाओ, खत्म कर देंगे! खैर देखें। वह राजा उतरने लगा उस मंदिर की सीढ़ियां जहां बोधिधर्म ठहरा था, वह आधी सीढ़ियों पर होगा कि बोधिधर्म ने कहा कि सुनो, एक बात ख्याल रखना, जब आओ तो अकेले मत आ जाना, अहंकार को साथ ले आना।
राजा थोड़ा हैरान हुआ, क्योंकि उसने कहा कि यह क्या बात हुई कि अहंकार
को साथ ले आना! बोधिधर्म ने कहाः इसलिए कहता हूं कि तुम अगर अकेले आ गए, तो मैं हत्या किसकी करूंगा? साथ ले आना अहंकार को, तो उसको खत्म कर दूंगा, एकबारगी में मामला निपट जाएगा, बात खत्म हो जाएगी।
चार बजे वह आया। आते ही से बोधिधर्म ने पूछाः ले आए अहंकार?
उसने कहाः आप भी कैसी बातें करते हैं! अहंकार कोई वस्तु तो है नहीं कि मैं ले आता।
बोधिधर्म ने कहाः चलो एक बात तय हो गई कि अहंकार कोई वस्तु नहीं है। फिर क्या है अहंकार?
उस राजा ने कहाः अहंकार तो एक भाव है, एक चित्त की दशा है।
उसने कहाः चलो दूसरी बात मान लेता हूं कि अहंकार भाव है। अब आंख बंद करके बैठ जाओ और खोजो कि वह भाव कहां है? और तुम्हें मिल जाए तो मुझे बता देना, वहीं मैं उसकी हत्या कर दूंगा।
उस अंधेरी रात में, चार बजे सुबह, वह राजा आंख बंद करके बैठ गया और खोजने लगा अपने भीतर कि अहंकार कहां है? और बोधिधर्म सामने डंडा लिए बैठा हुआ था, वह डंडा हमेशा अपने हाथ में रखता था। और उसने कहाः तुम्हें मिल जाए, तो मुझे बस बता भर देना कि पकड़ लिया, मैं उसकी हत्या कर दूंगा। वह सामने बैठा है और राजा को बीच-बीच में डंडे से धक्के देते जाता है कि देखो, ख्याल से खोजो, कोई जगह चूक न जाए, कोई कोना बिना जाना न रह जाए, सारे मन को खोज डालो कि कहां है अहंकार और पकड़ लो उसे वहां कि यहां है, यह है। और तुम जैसे ही कह सकोगे कि यह है, मैं उसकी हत्या कर दूंगा।
आधी घड़ी बीती, घड़ी बीती, वह जो राजा बैठा था, उसके चेहरे पर बड़ा तनाव, खोज रहा है। लेकिन धीरे-धीरे चेहरे का तनाव शिथिल होता गया, उसके चेहरे के स्नायु तंतु शिथिल होते गए, उसका चेहरा एकदम शांत होता गया। घंटा बीता, दो घंटा बीता, वह खोज रहा है। लेकिन अब, अब उसकी आंखों के आस-पास कोई बड़ी शांति इकट्ठी होने लगी। उसके ओंठों के आस-पास कोई मुस्कुराहट घनी होने लगी। वह खोज रहा है, और सुबह होने लगी और सूरज निकलने लगा और सूरज का प्रकाश आने लगा और उसके चेहरे पर सूरज की रोशनी पड़ने लगी। वह कोई दूसरा आदमी हो गया। और बोधिधर्म ने उसे हिलाया और कहाः मित्र, कब तक खोजते रहोगे?
उसने आंख खोली, उसने बोधिधर्म के पैर पड़े और कहाः मैं जाता हूं। जिसकी हत्या के लिए मैं आया था, वह है ही नहीं। मैंने आज तक खोजा नहीं, इसलिए वह था; आज मैंने खोजा, तो पाया कि वह नहीं है।
बोधिधर्म ने कहाः वैसा ही है यह, जैसे किसी घर में अंधेरा हो और किसी आदमी को हम कहें कि जाओ दीया ले जाओ और खोजो कि कहां है? दीया लेकर वह भीतर जाए, तो अंधेरा नहीं मिलेगा। अंधेरा होता है, क्योंकि दीया नहीं होता। और दीया लेकर भीतर कोई जाता है, तो पाता है, अंधेरा नहीं है। ऐसे ही जब कोई सम्यकरूपेण मन के भीतर होशपूर्वक दीया लेकर जाता है--विचार का, विवेक का,

प्रज्ञा का दीया लेकर खोजता है भीतर, तो पाता है, वहां कोई अहंकार नहीं है। जब तक नहीं जाता खोजने, तब तक अहंकार है। हमारी अनुपस्थिति अहंकार है, जैसे ही हम भीतर उपस्थित होते हैं खोजने को, वहां कोई अहंकार नहीं है। सुना है ऐसा मैंने कि एक बार अंधकार ने भगवान की अदालत में शिकायत कर
दी थी और अर्जी दे दी थी कि सूरज मेरे पीछे नाहक पड़ा हुआ है। रोज सुबह से सांझ तक मुझे परेशान करता है। और मैंने आज तक इसका कुछ बिगाड़ा नहीं, कोई कसूर नहीं किया, कोई झगड़ा नहीं है। पता नहीं करोड़ों-करोड़ों साल से इसको क्या सूझ गई है कि रोज सुबह से मौजूद हो जाता है और मुझे परेशान करता है, मेरा पीछा करता है। आप सूरज को समझा दें।
भगवान ने सूरज को बुलाया और कहा कि तुम क्यों पड़े हो व्यर्थ अंधेरे के पीछे? क्या बिगाड़ा है उसने तुम्हारा?
सूरज ने कहाः कैसा अंधेरा? कौन अंधेरा? मेरा आज तक उससे मिलना नहीं हुआ। कौन कहता है कि मैं उसके पीछे पड़ा हूं? मेरी कोई मुलाकात भी नहीं है। झगड़े का तो कोई सवाल नहीं है। कहां है वह अंधेरा? उसे मेरे सामने ले आएं। और अगर वह मेरी शिकायत करे तो मैं माफी मांग लूं और सदा के लिए उसका पीछा बंद कर दूं। लेकिन वह है कहां?
इस बात को हुए बहुत दिन हो गए। भगवान भी थक गए, वे अभी तक अंधेरे को सूरज के सामने नहीं ला सके हैं। मामला वहीं पड़ा हुआ है, फाइल के भीतर ही पड़ा हुआ है। और वह फाइल में ही पड़ा रहेगा। भगवान की अदालत में यह फैसला हो नहीं पाएगा कभी, क्योंकि अंधेरे को सूरज के सामने लाया नहीं जा सकता। आत्मा के सामने अहंकार को नहीं लाया जा सकता। ज्ञान के सामने अहंकार
को नहीं लाया जा सकता। अवेकंड माइंड के सामने, जागे हुए मन के सामने अहंकार को नहीं लाया जा सकता। तो सवाल क्या है? सवाल सीधा और साफ है। सवाल यह है कि हम किस भांति जाग जाएं और भीतर देख सकें। अगर हम भीतर जाग कर देख सकें तो वहां कोई ईगो, कोई अस्मिता, कोई अहंकार, कोई मैं वहां नहीं है। फिर वहां जो है वही परमात्मा है, फिर वहां जो है वही मोक्ष है, फिर वहां जो है वही निर्वाण है। फिर उसे कोई कोई नाम दे दे, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। वहां जो है, वही परम आनंद है, वही परम सत्य है।
कैसे हम जाग जाएं? कैसे हम भीतर ज्योति जगा लें? कैसे भीतर दीया जल जाए और हम खोज सकें?
जल सकता है। ज्योति मौजूद है, दीया मौजूद है, सब कुछ मौजूद है, सिर्फ हमारी दृष्टि उस ओर नहीं है, सिर्फ हमारा ख्याल, सिर्फ हमारे विचार की दिशा और गति उस ओर नहीं है। सब मौजूद है, चित्त पूरी तरह तैयार है, जागरण की पूरी की पूरी सामग्री साथ है। सिर्फ हमारा ख्याल नहीं है, हमारा विचार नहीं है, हमारी दृष्टि नहीं है। और हमारी दृष्टि जिस तरफ है, तीन दिनों मैंने आपसे बातें की हैं, उस तरफ की दृष्टि इस तरफ दृष्टि को जाने नहीं देती। एक ही सूत्र है समस्त जीवन के सार को उपलब्ध करने का, एक ही विज्ञान है, एक ही सीक्रेट है, और वह है स्वयं के भीतर जागरण को, होश को, अवेयरनेस को उपलब्ध कर लेना। कैसे जागें?
तीन छोटी-छोटी बातें इस संबंध में इस अंतिम चर्चा में आपसे मैं कहूंगा।
वे बातें छोटी हैं, लेकिन उनका प्रयोग बहुत वृहत परिणाम ला सकता है। उससे बड़ा और कोई परिणाम किसी बात से नहीं आता। एक छोटी सी चिनगारी पूरे पर्वत में आग लगा सकती है। ऐसे ही छोटे से तीन सूत्र हैं जागरण के, वे उपलब्ध हों तो अहंकार नहीं पाया जाता है। और जो पाया जाता है, वही आत्मा है।
पहला सूत्रः हमारे चारों तरफ जो जगत है, उसके प्रति हमें जाग्रत होना चाहिए, सोए हुए नहीं। हम उसके प्रति सोए हुए हैं। क्या आपको ख्याल है, कभी आपने सड़क पर चलते हुए लोगों को पांच मिनट के लिए रुक कर होश से देखा हो? क्या आपको ख्याल है कि दरख्तों के पास बैठ कर आपने पांच मिनट दरख्तों को होश से देखा हो? क्या आपको ख्याल है, सुबह उगते सूरज को पांच क्षण ठहर कर आपने पूरे विवेक से देखा हो, पूरे जागरण से? रात के आकाश के तारे कभी देखे हों? सब भांति शांत और मौन होकर देखा हो? सब तरह के विचार को छोड़ कर,

निर्विचार होकर, शांत होकर, चारों तरफ जो दुनिया फैली है, उसे पहचाना हो, उसके प्रति आंखें खोली हों?
नहीं खोली हैं, हम करीब-करीब सोए-सोए चले जाते हैं। चलते रहते हैं सोए-सोए। सोए-सोए चलने का, स्लीपिंग हालत में चलने का मतलब मेराः दुनिया बाहर होती है, हम भीतर आक्युपाइड होते हैं, भीतर विचार में उलझे होते हैं। विचार की एक धुंधली परत भीतर चलती रहती है। बाहर सड़क पर आप चले जा रहे हैं, लोग समझते हैं कि आप सड़क पर चल रहे हैं, और हो सकता है मन में आप आकाश में उड़ रहे हों। लोग समझ रहे हैं कि आप सड़क पर चल रहे हैं, और हो सकता है आप अपने घर में अपनी पत्नी से झगड़ा कर रहे हों। लोग समझते हैं कि आप सड़क पर चल रहे हैं, हो सकता है आप इजरायल में किसी की हत्या कर रहे हों। आप कहां हैं, चल कहां रहे हैं, ये दोनों दो बातें हैं। चित्त आपका कहीं और है, चलना कहीं और, तो चलना सोया हुआ होगा, जागा हुआ नहीं हो सकता। कोई भी क्रिया जागी हुई तब होती है, जब चित्त भी वहीं होता है जहां क्रिया होती है।
तो बाहर के जगत के प्रति जागरण का प्रयोग! कैसे करें?
कभी अचानक ठहर जाएं। चलते-चलते रास्ते पर रुक जाएं और जरा देखें-- चारों तरफ क्या है? कभी घर की छत पर आंख खोल कर बैठ जाएं और देखें--ये तारे क्या हैं? कुछ सोचें न, सिर्फ देखें। क्योंकि आपने सोचा कि आप कहीं और गए। सोचा कि आप सोए। आपने सोचना शुरू किया कि जो मौजूद है वह हट गया और कोई चीज जो मौजूद नहीं है, आ गई।
एक गुलाब के फूल के पास आप बैठे हैं, और आपने सोचना अगर शुरू कर दिया गुलाब के फूल के बाबत, तो वह जो फूल आपके सामने है, उसके प्रति आप सो गए। हो सकता है आपने गुलाब के फूल पर जो कविताएं पढ़ी हों, वे याद आ जाएं, और जिन मित्रों ने आपको गुलाब के फूल भेंट किए हों, वे याद आ जाएं, या गुलाब के फूल से जो-जो एसोसिएशन हों, जो-जो संबंध हों, वे याद आ जाएं, लेकिन यह गुलाब का फूल जो मौजूद है, इसके प्रति आप सो गए, आपका मन कहीं और गया।
चीजों के प्रति जागने का मतलब हैः सोचें नहीं, देखें। और हम देखने में इतने असमर्थ हो गए हैं कि एक पति अपनी पत्नी, जिसके पास वह वर्षों से रह रहा है, उसको भी नहीं देख पाता। उसको भी उसने कभी आंख भर कर पूरी तरह देखा नहीं है। एक पिता अपने बेटे को कभी देखता नहीं कि पूरी तरह देखा हो--क्या है यह? एक मित्र अपने मित्र को नहीं देखता है। और आप हैरान हो जाएंगे, कभी जरा पांच मिनट आंख बंद कर लें और अपनी मां का चेहरा स्मरण करें। आप हैरान हो जाएंगे, आपको मां का चेहरा तक स्मरण नहीं आएगा। कभी देखा ही नहीं ठीक से, स्मरण कैसे आएगा? पांच मिनट आंख बंद करके ख्याल करें--मेरी मां का चेहरा कैसा? तो सब रेखाएं धुंधली हो जाएंगी, वहां कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। बड़ी हैरानी होगी कि मां का चेहरा भी मुझे स्पष्ट, मेरी स्मृति में नहीं है। क्यों? हां, ऐसे अगर ख्याल न करें तो शायद आपको यह ख्याल होगा कि मुझे याद है अपनी मां का चेहरा। लेकिन आज ही आप जरा कोशिश करना आंख बंद करके, तो आपको पता चलेगा कि सब रेखाएं मिट जाती हैं, बिगड़ जाती हैं। मां का चेहरा भी पकड़ में नहीं आता कि ठीक-ठीक कैसा है? मां की आंख कैसी थी? कैसी है? क्या उसकी आंखों में भाव हैं, वे कुछ भी न पकड़ेंगे। कभी आपने देखी नहीं है गौर से। किसने देखी है अपनी मां की आंख को गौर से? जिसे हम प्रेम करते हैं, उसको भी हमने कभी देखा थोड़े ही है। उसके पास से निकल जाते हैं सोए-सोए, दूसरी पच्चीस बातें सोचते हुए। उसके पास बैठे रहते हैं, जिस मित्र को हम प्रेम करते हैं, उसको गले से लगाए बैठे रहते हैं, लेकिन हमारा मन तो न मालूम कहां होता है। इसलिए दिखाई हमें पड़ता है कि हम किसी को गले से लगाए हैं, लेकिन हमारे बीच हजारों मीलों का फासला होता है, क्योंकि हम कहीं और होते हैं। ऐसा सारा जीवन सोया-सोया है। इस सोए-सोए जीवन में जब हम बाहर के प्रति ही नहीं जाग सकते, तो भीतर के प्रति क्या जागेंगे, वह तो बहुत कठिन बात है।
तो पहला सूत्र हैः बाहर के प्रति जागना। जो भी बाहर दिखाई पड़े--बहुत
है बाहर, क्या नहीं है बाहर--उसे बहुत ध्यान से देखना, बहुत ध्यान से सुनना, सारी इंद्रियों का अत्यंत ध्यान से, बहुत इंटेंसिवली उपयोग करना। भोजन करते वक्त पूरी तरह स्वाद लेना जरूरी है; आंख खोल कर फूल को देखते वक्त पूरी तरह उसके सौंदर्य को पी लेना जरूरी है; संगीत सुनते वक्त उसकी

ध्वनियों को कानों के पूरे-पूरे प्राणों तक पहुंच जाना जरूरी है; किसी का हाथ हाथ में लें, तो उसका हाथ हाथ से जुड़ जाना जरूरी है। इतनी समग्रता से, इतने होश से, इतनी तन्मयता से जब कोई व्यक्ति बाहर के जीवन में जीना शुरू करता है, तो एक अवेयरनेस, एक जागरण, एक ज्योति उसके भीतर जागनी शुरू होती है।
फिर यही ज्योति दूसरे सूत्र में मन के प्रति लगानी होती है। मन है भीतर, विचारों से भरा हुआ, विचार ही विचार हैं वहां। कामनाएं, कल्पनाएं, इच्छाएं हैं वहां, स्मृतियां हैं, भविष्य की आकांक्षाएं हैं, वे सब मन के भीतर चल रही हैं। जैसे सड़क पर लोग चल रहे हैं, ऐसा मन में भी यात्रा चल रही है बहुत सी चीजों की। पहले बाहर के प्रति जागें, फिर मन के प्रति जागें। फिर मन को देखें कि यह क्या हो रहा है मन के भीतर?
हम सोए-सोए चल रहे हैं, मन के प्रति हमने कभी देखा ही नहीं कि वहां क्या हो रहा है। हम अपने काम में लगे हैं और मन अपना काम कर रहा है। हमें ख्याल भी नहीं है कि मन में क्या हो रहा है, कितना हो रहा है, कितनी बड़ी फैक्टरी वहां चौबीस घंटे चल रही है। अगर कोई आपके दिमाग से सारी की सारी फैक्टरी को बाहर निकाल कर रख दे, तो पूरा शैतान का कारखाना वहां मिलेगा। वहां क्या हो रहा है, नहीं कहा जा सकता।
एक छोटे से आदमी के मन के भीतर कितना क्या चल रहा है, उसे भी देखना और जानना जरूरी है, उसके प्रति भी जागना जरूरी है, उसके प्रति भी होश रखना जरूरी है। कभी दो क्षण बैठ कर उसे भी देखें कि मन के भीतर क्या हो रहा है। लेकिन हम तो कभी मन को देखते भी नहीं कि वहां क्या होता है। शायद हम डरते हैं, शायद हम भयभीत हैं कि पता नहीं वहां क्या हो रहा हो। कौन देखे! चले चलो, अपने काम में उलझे रहो। हम इसीलिए काम में उलझे रहते हैं कि कहीं भीतर देखने का मौका न आ जाए, नहीं तो बड़ी पीड़ा भी हो सकती है। क्योंकि जो आदमी समझता है कि मैं साधु हूं, हो सकता है उसके मन में किसी की हत्या के ख्याल चल रहे हों, वह कैसे भीतर देखे? भीतर देखे तो अहंकार को चोट लगती है कि मैं हूं साधु, मैं हूं अच्छा आदमी, हजार लोग मेरे पैर पड़ते हैं और महाराज-महाराज कहते हैं और मेरे भीतर यह चलता है? तो वह उसको देखना ही बंद कर देता है, ताकि जो दिखेगा ही नहीं, समझेंगे कि वह है ही नहीं। जैसा कि रेगिस्तान में शुतुरमुर्ग होता है, दुश्मन आता है तो सिर गपा कर खड़ा हो जाता है रेत में। दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता। शुतुरमुर्ग सोचता है, जो दिखाई पड़ता नहीं, वह है ही नहीं। आसानी से छुटकारा हो गया।
ऐसे ही हम शुतुरमुर्ग की तरकीबें काम में लाते हैं। मन को देखते नहीं, ताकि पता ही न चले कि क्या है। जितना हम फिकर करते हैं अपने कपड़ों की कि वे ठीक हैं कि गलत; अपने जूतों की कि उनमें कील निकली है कि नहीं; अपने बालों की कि वे ठीक काढ़े गए कि नहीं; उतनी फिकर भी हम उस मन की नहीं करते जो हमारे प्राणों में भीतर बैठा है कि वहां क्या हो रहा है! वहां कितनी कीलें हैं, वहां कितनी गंदगी है, वहां कितना सब अव्यवस्थित है, कितना डिसऑर्डर है, कितनी अनार्की है, कितनी अराजकता है, कितना पागलपन है, वहां कोई देखने की फिकर नहीं। हम अपने कपड़े ठीक-ठाक कर लेते हैं, बाहर से इत्र छिड़क लेते हैं, फूल सजा लेते हैं और चल पड़ते हैं। और भीतर क्या लिए हुए हैं? उसके प्रति भी जागना बहुत जरूरी है।
अत्यंत निष्पक्ष भाव से, जो भी चलता हो मन में, बुरा-भला, कुछ भी, उसे शांति से देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें। और आप हैरान हो जाएंगे, उसे देखते-देखते ही आपको दो बातें पता चलेंगी। एक, कि जिसे आप देख रहे हैं वह और आप अलग हैं। एक यह बहुत क्रांतिकारी बोध होगा कि विचारों को जिन्हें आप देख रहे हैं, वे अलग हैं, आप अलग हैं। नहीं तो आप देख भी नहीं सकते थे, देखने वाला अलग है। और यह बोध आ जाएगा कि देखने वाला अलग है, तो मन एकदम बदल जाएगा, बात दूसरी हो जाएगी, मैं अलग हूं, विचार अलग हैं। एक संबंध टूट जाएगा, मैं अलग हूं, विचार अलग हैं। फिर विचारों की कोई पीड़ा, बोझ, भार नहीं रह जाएगा मन पर। जो अलग है, वह बात खत्म हो गई।
दूसरी बात, देखते-देखते यह पता चलेगी, जैसे कोई हवाई जहाज से उड़ रहा हो, नीचे के मकानों को देखे, तो मकान सब जुड़े हुए मालूम पड़ते हैं, दो मकानों के बीच में खाली जगह मालूम नहीं पड़ती। अभी आप इतने लोग यहां बैठे हैं, अगर

हजार फीट ऊपर से जाकर मैं देखूं, तो आपके बीच में कोई खाली जगह दिखाई नहीं पड़ेगी। लेकिन मैं धीरे-धीरे, धीरे-धीरे करीब आऊं, तो हर आदमी और उसके पड़ोसी के बीच में खाली जगह दिखाई पड़ेगी, इंटरवल होगा, गैप होगा। जब आप विचारों के प्रति जागेंगे और उनके करीब आकर देखेंगे, तो दूसरी बात आपको पता चलेगी--हर दो विचारों के बीच में थोड़ी सी खाली जगह है, जहां कोई विचार नहीं है। एक विचार जाता है, फिर दूसरा आता है, दोनों के बीच में एक खाली जगह है, जहां कोई विचार नहीं है, इंटरवल है, गैप है। वह गैप बड़ा अदभुत है। उसी खाली जगह में आपकी आत्मा है। उसी विचार-शून्य क्षण में आप गहरे कूद सकते हैं। वही जगह है जहां से आप भीतर छलांग ले सकते हैं। जब आपको ये गैप दिखाई पड़ेंगे तो आपको पता चलेगाः विचार मैं नहीं हूं, बल्कि जो रिक्त जगह है वह मैं हूं। और जैसे ही यह बोध होगा कि जो रिक्त स्थान है, जो खाली शून्य अंतराल है, वह मैं हूं, वह जो स्पेस है बीच में, वह मैं हूं, तो आपको आत्मा की तरफ जागने का पहला मौका इन्हीं रिक्त स्थानों में से मिलेगा।
और तीसरा जागरण है आत्मा का। वह आपको करना नहीं पड़ता है। दो जागरण आप करते हैं, तीसरा जागरण अनायास अपने आप घटित होता है। दो काम आप करते हैं, तीसरा काम परमात्मा करता है। बाहर के प्रति और उस मन के प्रति आप जाग जाएं, तीसरा जागरण अपने से, अपने से पैदा होगा। तीसरा जागरण, दो जागरण का अनिवार्य परिणाम है। जैसे एक किसान बीज बो देता है, फिर बीज बोने के बाद पौधे की रक्षा करता है, फिर पौधे में फल आते हैं, फूल आते हैं। लेकिन फूल लाने नहीं पड़ते, फूल अपने आप आते हैं। बीज बोना पड़ता है, पौधे की सम्हाल करनी पड़ती है, लेकिन फूल लाने नहीं पड़ते, वे अपने आप आते हैं। उनको कोई खींच-खींच कर नहीं निकालता कि अब फूल भी निकालें, जैसे बीज बोए थे, अब फूल भी निकालें। और किसी ने अगर फूल निकालने की कोशिश की, तो फिर फूल कभी न निकलेंगे। फूल तो अपने से आते हैं, वह फ्लावरिंग अपने से होती है। दो काम किसान करता है, बीज बोता है, पौधे की रक्षा करता है; तीसरा काम परमात्मा करता है, फूल खिलाने का।
जीवन की खोज में भी जागरण का बीज मनुष्य को बोना पड़ता है। जागरण की रक्षा मनुष्य को करनी पड़ती है। और वह जो परम जागरण है, उसके फूल अपने आप आते हैं। वे सहज आते हैं, वे परमात्मा की तरफ से आते हैं। वह हमारे श्रम की भेंट है परमात्मा की ओर से। वे हमें खींच कर नहीं लाने पड़ते।
इसलिए दो जागरण आप साधें, तीसरा जागरण आपको उपलब्ध होता है। इसीलिए
जब तीसरा जागरण उपलब्ध होता है, तो साधक को पता चलता है कि मैंने क्या किया, यह तो अपने आप आया! और तभी वह परमात्मा के प्रति कृतज्ञता और ग्रेटिट्यूड से भर जाता है। वह कहता हैः मैंने क्या किया? मैंने तो कुछ और ही किया था, जिसका कोई मूल्य नहीं है। और यह जो मिल गया है, यह तो मैं जानता भी नहीं था कि मैंने कभी किया। यह क्या हो गया? एक बिल्कुल अनूठा, अद्वितीय, अलौकिक, अज्ञात, अननोन अनुभव उसके ऊपर अवतरित हो जाता है। वह उसे ग्रेस मालूम होती है, वह भगवत्-कृपा मालूम होती है, लगता है कि भगवान की कृपा से यह हो गया। वह सहज तीसरी घटना घटती है। वह तीसरी घटना घट सके, उसके लिए दो घटनाओं की तैयारी हर मनुष्य को करनी होती है।
इधर तीन दिनों में मैंने तीन बंधन तोड़ने को आपसे कहे--ज्ञान का, कर्म
का और आज अहंकार का। कैसे यह अहंकार का बंधन विलीन हो सकता है, उसकी मैंने आपसे बात की। कैसे यह जागरण जाग्रत हो सकता है भीतर, जिसके प्रकाश में अहंकार नहीं पाया जाएगा; कैसे यह सूरज लाया जा सकता है, जिसके सामने अंधकार नहीं होगा--उसकी मैंने आपसे बात कही।
लेकिन बातों से कुछ भी नहीं होता है। बातें सुनने में कितनी भी अच्छी लगती हों, इससे भी कुछ नहीं होता है। बल्कि अक्सर यह होता है कि जो बातें हमें सुनने में अच्छी लगती हैं, हम उन्हें इसीलिए सुन लेते हैं कि वे अच्छी लगती हैं और बात खत्म हो जाती है। अच्छी बातों में एक खतरा है, बड़ा खतरा अच्छी बातों में यह है कि वे सुखद लगती हैं और हम सुन कर उनका सुख ले लेते हैं और बात समाप्त हो जाती है।
बात समाप्त नहीं होनी चाहिए। क्योंकि जो बात सुनने में तक अच्छी लगती हो, काश वह हमारे अनुभव में आ जाए तो क्या होगा! जो बात सुनने में भी एक सौंदर्य की तरफ, एक संगीत की तरफ मन को खोलती हो--सुनने में, जिसका कोई बड़ा

मूल्य नहीं है--अगर वह बात घटित हो जाए, तो क्या होगा! अगर वह स्थिति उपलब्ध हो जाए, तो क्या होगा! कैसे आनंद में और कैसे नृत्य में हमारा प्रवेश हो जाएगा! कैसे आलोक में हम प्रतिष्ठित हो जाएंगे!
तो अंतिम रूप से यह कहूंगा कि परमात्मा करे, वह प्यास इन बातों से आपके भीतर गहरी हो, जो इन बातों को केवल सुनने का सुख न बनाए, बल्कि किसी दिन अनुभूति के आनंद में परिवर्तित कर दे। तो अंतिम रूप से यह बात कहता हूंः परमात्मा प्यास को जगाए, गहरी करे, आपके प्राणों को परेशान कर दे, आपको इतने असंतोष से भर दे, इतनी गहरी प्यास से भर दे कि आप बेचैन हो उठें, जब तक कि उस तरफ का द्वार न खुल जाए जहां से शांति के सागर की धारा उपलब्ध होती है। आप पागल हो उठें, जब तक कि वह द्वार न खुल जाए, उस द्वार को ठोकते ही चले जाएं, पीटते ही चले जाएं, जब तक कि उस द्वार से खुलने की खबर न आ जाए। क्राइस्ट ने कहा हैः नॉक एंड दि डोर शैल बी ओपन्ड अनटु यू। खटखटाओ और द्वार तुम्हारे लिए खुल जाएंगे। लेकिन मैं तो यह कहता हूंः खटखटाने की तो बात दूर, द्वार के करीब तो आओ, द्वार के पास तो आओ, पास आते ही द्वार खुल जाएंगे। और यह भी बात दूर कि द्वार खुल जाएंगे, सच तो यह है कि हम दूर खड़े हैं, इसलिए द्वार बंद हैं। हम पास हुए कि द्वार खुले ही हुए हैं। परमात्मा के द्वार बंद नहीं हैं, लेकिन हम दूर खड़े हैं। यही उनके बंद होने का एकमात्र कारण है, और कोई भी नहीं। हम निकट हुए कि वे खुले। शायद वे खुले ही हैं, दूर होने की वजह से हमें बंद दिखाई पड़ते हैं। पास होते ही पाया जाता है कि वे खुले हैं। तो प्यास जगे और हम द्वार के करीब आएं।
बातें अर्थपूर्ण नहीं हैं। लेकिन बातों से प्यास जग जाए तो प्यास अर्थपूर्ण है। उस प्यास के लिए कुछ, उस प्यास के लिए कुछ मुझे नहीं, आपको करना होगा। और उस प्यास के लिए निपट रूप से आपको करना होगा, कोई साथी और सहयोगी नहीं हो सकता, कोई पड़ोसी आपका साथ नहीं दे सकता। अपने ही निगूढ़ अंतर्तम में, अपने ही एकांत में, अपने ही प्राणों के भीतर उस प्यास को जगाना होगा। जो जगा लेते हैं, वे धन्यता को उपलब्ध हो जाते हैं। जो नहीं जगा पाते, उनका जीवन एक दुख-स्वप्न से ज्यादा नहीं है।
इतनी ही बात अभी सुबह मुझे आपसे कहनी है। कुछ और आपके प्रश्न होंगे इस संबंध में, वह मैं दोपहर और रात बात करूंगा। अब हम सुबह के ध्यान के लिए थोड़ी देर बैठेंगे, एक दस मिनट के लिए।

अपने माहिं टटोल
नौवां प्रवचन

नई संस्कृति की खोज

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछली चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न मेरे पास आए हैं। सभी प्रश्न बहुत अर्थपूर्ण, बहुत महत्व के हैं। कुछ थोड़े से प्रश्नों पर अभी और कुछ पर रात में विचार करेंगे। प्रश्न चूंकि बहुत हैं, मैं बहुत थोड़े संक्षेप में एक-एक का उत्तर देने की कोशिश करूंगा।

सबसे पहले, एक मित्र ने पूछा है, और वैसी बात करीब-करीब पूरे मुल्क में जगह-जगह पूछी जाती है। आप सबके मन में भी वह प्रश्न उठता होगा। उन्होंने पूछा हैः आजकल की दुनिया खराब हो गई है। अभी यह जो गीत गाया, उसमें भी यह बात है कि आजकल की दुनिया खराब हो गई है। इस खराब दुनिया को ठीक रास्ते पर कैसे लाया जाए?

इस प्रश्न में दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो यह कहना कि आजकल की दुनिया खराब हो गई है, इस बुनियादी भ्रम पर खड़ा हुआ है कि पहले की दुनिया अच्छी थी। यह बात इतनी बुनियादी रूप से गलत है जिसका कोई हिसाब नहीं। पहले की दुनिया भी आज से अच्छी नहीं थी। आज का आदमी खराब हो गया है, इससे ऐसा ख्याल पैदा होता है कि पहले का आदमी बहुत अच्छा था। शायद आपको पता नहीं कि इस तरह के ख्याल के पैदा हो जाने का कारण क्या है।
जमीन पर जो पुरानी से पुरानी किताबें उपलब्ध हैं, सबसे पुरानी किताब चीन में उपलब्ध है, जो कोई छह हजार वर्ष पुरानी है। उस पुरानी किताब में भी यह लिखा हुआ है कि आज की दुनिया खराब हो गई है, पहले के लोग बहुत अच्छे थे। ये पहले के लोग कब थे? आज तक एक भी ऐसी किताब नहीं मिली है, जिसने यह कहा हो--अभी के लोग अच्छे हैं, जो लोग मौजूद हैं, ये अच्छे हैं। अब तक मनुष्य-जाति के पास ऐसा एक भी उल्लेख नहीं, जो यह कहता हो--अभी के लोग अच्छे हैं। पहले के लोग अच्छे थे। ये पहले के लोग कब थे? बुद्ध और महावीर यह कहते हैं कि जमाना खराब हो गया, लोग बुरे हैं, पहले के लोग अच्छे थे। क्राइस्ट यह कहते हैं कि लोग बुरे हैं, पहले के लोग अच्छे थे। ये पहले के लोग कब थे? और अगर अच्छे लोग जमीन पर थे, तो अच्छे लोगों से बुरे लोग पैदा कैसे हो गए? वह अच्छी संस्कृति से बुरी संस्कृति पैदा कैसे हो गई? उस अच्छे से विकार कैसे पैदा हो गया?
नहीं, सच्चाई कुछ और है। सच्चाई बिल्कुल उलटी है। अगर पहले के लोग अच्छे थे तो युद्ध कौन करता था? हिंसा कौन करता था? पुरानी से पुरानी युद्ध की कथा हमारी महाभारत की है, वे लोग अच्छे लोग थे? अपनी पत्नियों को दांव पर लगाने वाले लोग अच्छे थे? आज एक साधारण आदमी भी अपनी पत्नी को दांव पर लगाने में दो दफा विचार करेगा, सोचेगा--यह उचित है? लेकिन उस समय, जिसको हम कहें कि जो धर्म का बहुत विचारशील आदमी था, वह भी विचार नहीं कर रहा है पत्नी को दांव पर लगाते वक्त। जुआ खेलने में कोई संकोच नहीं हो रहा है उसे। अपने ही भाई की पत्नियों को नंगा करने में किसी को कोई संकोच नहीं हो रहा है बीच सभा में। और वहां जो लोग बैठे हैं, वे बड़े विचारशील हैं, धर्म के ज्ञाता हैं, वे भी बैठे देख रहे हैं। ये लोग अच्छे थे? तो फिर महाभारत क्यों हो गया? इतना संघर्ष, इतना रक्तपात क्यों हो गया, अच्छे लोग थे तो? अच्छे लोग एक मिथ, एक कल्पना और कहानी है। नहीं तो बुद्ध ने किन लोगों
को समझाया कि चोरी मत करो? महावीर ने किनको समझाया कि हिंसा मत करो? अगर लोग अहिंसक थे, तो महावीर पागल थे, ढाई हजार साल पहले किसको समझा रहे थे कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो, दूसरे की स्त्री पर बुरी नजर मत रखो? लोग रखते होंगे, तभी तो समझा रहे थे, नहीं तो समझाएंगे कैसे? यह ब्रह्मचर्य का उपदेश किसको दे रहे थे? अगर सारे लोग ब्रह्मचर्य को मानते थे, तो ब्रह्मचर्य का उपदेश किसके लिए था? और अगर सारे लोग ईमानदार थे, तो ईमानदारी की शिक्षाएं हमारे ग्रंथों में क्यों लिखी हुई हैं? किसके लिए

लिखी हुई हैं? लोग बेईमान रहे होंगे, तब तो ईमानदारी की शिक्षा की बात लिखी है ग्रंथों में, नहीं तो कौन लिखता? जरूरत रही होगी जिंदगी को कि ईमानदारी कोई सिखाए। लोग बेईमान रहे होंगे, लोग हत्यारे रहे होंगे, लोग चोर रहे होंगे, तब तो अचौर्य समझाया जा रहा है, अहिंसा समझाई जा रही है। और लोग एक-दूसरे को घृणा करते रहे होंगे, तब तो प्रेम के इतने उपदेश दिए गए हैं, नहीं तो किसको दिए जाते?
लेकिन भ्रम कुछ और बातों से पैदा हो जाता है। हर युग में अच्छे लोग होते हैं। उन थोड़े से अच्छे लोगों की कथा बच रहती है, बाकी लोगों के जीवन का कोई हिसाब नहीं बचता। हमारे युग में गांधी थे। दो हजार साल बाद, हम जो लोग बैठे हैं, हमारी कोई कथा बच रहेगी? लेकिन गांधी की बच रहेगी। और दो हजार साल बाद लोग गांधी को कहेंगे, इतना अच्छा आदमी था, उस युग के लोग कितने अच्छे रहे होंगे! गांधी से वे सारे युग को तौल लेंगे, जो कि बिल्कुल झूठी तौल होगी। गांधी अपवाद था, नियम नहीं था। और दो हजार साल बाद, जब हम सबकी कोई कथा शेष नहीं रह जाएगी और गांधी की कथा शेष होगी, तो गांधी के आधार पर हम सबके बाबत जो निर्णय लिया जाएगा, वह बिल्कुल झूठा होगा। हम तो गांधी के हत्यारे हैं। लेकिन दो हजार साल बाद लोग कहेंगेः गांधी इतना अच्छा आदमी था, उसके समाज के लोग कितने अच्छे नहीं रहे होंगे!
तो राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, दो-चार नामों के आधार पर हम उस जमाने के लोगों के बाबत सोचते हैं। वह सोचना बिल्कुल फैलेसी है, बिल्कुल झूठ है। ये आदमी अपवाद थे। ये नियम नहीं थे। जहां तक सामान्य आदमी का संबंध है, आदमी विकसित हुआ है, उसका पतन नहीं हुआ है, उसका कोई ह्नास नहीं हुआ है। आदमी, सामान्य आदमी विकसित हुआ है। उसके जीवन में पीछे के आदमी से गति हुई है, उसके विचार में गति हुई है, उसकी चेतना में विकास हुआ है।
कई कारणों से यह बात कही जा सकती है। मैं कोई कारण नहीं देखता हूं कि लोग पहले से बुरे हो गए हैं। लोग पहले से भले हो गए हैं।
मैं तीन दिन से जो बातें कह रहा हूं, अगर ये ही बातें मैंने दो हजार साल पहले कही होतीं, आप मेरी हत्या कर देते। आप ज्यादा बेहतर आदमी हैं, दो हजार साल पहले के आदमी से।
क्राइस्ट ने ऐसी कौन सी बात कह दी थी जिसकी वजह से लोगों ने क्राइस्ट
को सूली पर लटका दिया? जो क्राइस्ट ने कहा था, तीन दिनों में मैंने उससे बहुत ज्यादा तीखी और आपको चोट पहुंचाने वाली बातें कही हैं, लेकिन आपमें से किसी ने पत्थर भी नहीं मारा, फांसी लगाने की तो बात दूसरी है। क्राइस्ट के पास जो लोग थे, उनसे आप बेहतर आदमी हैं। सुकरात को जिन लोगों ने जहर पिलाया था, उनसे आप बेहतर आदमी हैं। जितना पीछे हम लौटते हैं, आदमी विचारपूर्ण नहीं है, आदमी अत्यंत अंधा है, अत्यंत अविचारपूर्ण है। विचार विकसित हुआ है, विचार आगे गया है, मनुष्य की चेतना ने नई-नई बातें विचार की हैं, नये स्पर्श किए हैं, नये अनुभव किए हैं, नई दिशाएं खोली हैं। थोड़ा सोचें, हमारी सदी पहली सदी है, जिसने युद्ध के विरोध में सामूहिक आवाज दी है। आज तक युद्ध स्वीकृत था। पिछली किसी भी सदी ने यह नहीं कहा कि युद्ध पाप है। यह पहला मौका है कि इन दो महायुद्धों के बाद सारी दुनिया में जो भी विचारशील है, वह कह रहा है, युद्ध पाप है। आज युद्ध के विरोध में जितनी चेतना है, उतनी दुनिया में कभी भी नहीं थी। आज हिंसा के विरोध में जितनी चेतना है, उतनी कभी भी नहीं थी। आज जितना भाईचारा सारे जगत में मनुष्य-मनुष्य के बीच पैदा हुआ है, उतना कभी नहीं था। आज जितना उदार है मनुष्य, उतना कभी भी नहीं था। आज जितने उसके हृदय के द्वार दूसरों के लिए भी खुले हैं, उतने कभी भी नहीं खुले थे। जितना हम पीछे लौटते हैं, उतना नैरो माइंडेड, उतना संकीर्ण आदमी उपलब्ध होता है।
लेकिन आप कहेंगे कि नहीं, पहले का आदमी कम चीजों से तृप्त हो जाता था, उसे बहुत चीजों की जरूरत नहीं होती थी, वह अपरिग्रही था। आज बहुत चीजों की जरूरत है।
यह बात भी एकदम गलत है। चीजें नहीं थीं, यह बात दूसरी है, लेकिन चीजों
से तृप्ति कम चीजों में थी, यह बात झूठ है। चीजें नहीं थीं, यह मैं मानता हूं। बुद्ध के समय में किसी आदमी को कार रखने का परिग्रह और वासना पैदा नहीं होती थी, इसका कारण यह मत समझ लेना कि कार के प्रति उसका त्याग था।

कार नहीं थी। जो चीजें मौजूद थीं, उनके लिए वह दौड़ में खड़ा हुआ था हमेशा। उन चीजों के लिए कोई इनकार नहीं था उसके मन में। जो चीज नहीं थी, उसकी तो कामना वह नहीं कर सकता था। आज के आदमी का भोग बढ़ गया है, यह बिल्कुल ठीक नहीं है। हां, उसके पास भोग के साधन बढ़ गए हैं, यह जरूर ठीक है। पिछले आदमी के पास भोग के साधन कम थे। जो थे, उन्हीं में वह विचार करता था, उन्हीं में खोज करता था, उन्हीं को पाने की कोशिश करता था। आदमी वही है, उसके पास साधन बढ़ गए हैं। लेकिन इससे कोई आदमी का पतन नहीं हो गया है, बल्कि जिस आदमी ने ये साधन बढ़ाए हैं, वह उसकी उन्नत बुद्धिमत्ता के लक्षण हैं, उसके ज्यादा सोच-विचार और खोज के परिणाम हैं, प्रकृति के ऊपर उसके ज्यादा नियंत्रण की सूचना हैं, प्रकृति के रहस्यों को जानने में उसकी ज्यादा गति के प्रतीक हैं।
और हम सोचते हैं कि पहले के लोग ज्यादा ईमानदार थे, ज्यादा सच्चाई पसंद थे।
यह किस हिसाब पर आप सोचते हैं? किस कारण से आप यह सोचते हैं? अगर पुरानी कथाएं उठा कर पढ़ें, तो जितनी बेईमानी हो सकती है, उनमें मौजूद है; जितने धोखेधड़ियां हो सकते हैं, वे मौजूद हैं; जितना पाखंड हो सकता है, वह मौजूद है; जितना असत्य हो सकता है, वह मौजूद है; जितनी चालाकियां हो सकती हैं, वे सब मौजूद हैं। कोई फर्क नहीं पड़ा है। हां, एक बात में फर्क पड़ गया है। पहले कुछ लोग चालाकियां करते थे, बाकी लोग, चूंकि उनकी बुद्धिमत्ता बहुत कम विकसित थी, चालाकियों के शिकार होते थे। अब चूंकि बड़े पैमाने पर अधिक लोगों की बुद्धिमत्ता विकसित हुई है, इसलिए थोड़े लोगों को चालाकी करने का मौका नहीं है।
यह थोड़ा विचारणीय है। बुद्धिमत्ता का कम होना ईमानदारी नहीं है। दुनिया में बुद्धिमत्ता विकसित हुई है, इसलिए चालाकी में भी, अगर आप आगे हैं, तो दूसरे लोग भी आगे हैं, वे आपसे पीछे खड़े होने को राजी नहीं हैं। तो शायद आप सोचते हों कि सभी लोग, सभी लोग वही करने लगे हैं, जो कि थोड़े से बुद्धिमान लोग पीछे करते रहे हैं, वह आज हर आदमी करने में समर्थ हुआ है, क्योंकि बुद्धिमत्ता बहुत बड़े पैमाने पर विकसित हुई है, विवेक और विचार विकसित हुआ है।
जैसे उदाहरण के लिए आपसे कहूं, पुरुषों ने नियम बना रखा था कि विधवाएं विवाह नहीं करेंगी, लेकिन पुरुषों ने अपने लिए नियम नहीं बनाया हुआ था कि विधुर विवाह नहीं करेंगे। पुरुष चालाक रहा होगा, बेईमान रहा होगा, होशियार रहा होगा। आज स्त्रियां भी शिक्षित हुई हैं, उनको यह चालाकी साफ समझ में आ गई है कि पुरुष अपने तो विवाह कर सके विधुर होने के बाद और स्त्री न कर सके, यह कैसा हिसाब है? तो स्त्री अगर आज विधवा होकर विवाह करना चाहती है, तो हम कहते हैंः देखो, कितना पतन हो गया, विधवा विवाह कर रही है! यह सिर्फ स्त्रियों की बुद्धिमत्ता विकसित हुई है और आपकी चालाकी अकेली नहीं चल सकती, तो आज आपको लगता है--यह स्त्री कैसी, देखो पतित हो गई! कभी स्त्रियों ने सोचा था कि विधवा और विवाह करेगी? और आप कैसे विवाह करते रहे थे? स्त्री भी पुरुष के समकक्ष खड़ी हो गई है विचार करने में, तो आज कठिनाई हो रही है पुरुष को।
तीन हजार वर्ष तक हिंदुस्तान में करोड़ों हरिजनों को हमने सताया, शूद्रों को सताया। जो बुद्धिमान थे, उन्होंने उनको जमीन पर लिटा रखा, उनकी छाती पर बैठे रहे। उनके साथ जो भी अनाचार किया जा सकता था, किया गया। उन्हें जिस भांति हीन किया जा सकता था, किया गया। उनके भीतर की मनुष्यता की जिस भांति हत्या की जा सकती थी, वह की गई। न उन्हें ज्ञान, न उन्हें विचार के विकास का कोई मौका दिया गया। आज वे भी बुद्धिमान हो गए हैं। वे इनकार कर रहे हैं कि अब यह आगे नहीं चलेगा। तो हम कहते हैंः जमाना कैसा बिगड़ गया! वर्ण-धर्म सब छूटा जा रहा है। यह शूद्र देखो, यह हमारे साथ खड़े होने की हिम्मत कर रहा है, धक्का देकर हमारे साथ खड़ा होना चाहता है। आपने तीन हजार वर्ष तक क्या किया था उसके साथ? वह ईमानदारी थी? वह नैतिकता थी? वह धर्म था? तो आज उसके मन में विद्रोह खड़ा हो गया, आज उसकी बुद्धिमत्ता, वह भी जाग गया, उसके बच्चे भी सोचने लगे हैं, तो आपको लग रहा है कि सारा वर्ण-धर्म नष्ट हो गया! हे भगवान, यह कलियुग आ गया!

यह कलियुग नहीं आ गया है। ये जितनी मूढ़ताएं और जितने शोषण हम चलाते रहे थे, उनकी मृत्यु का वक्त आ गया है। इसलिए सारी परेशानी खड़ी हो गई है। हर जगह परेशानी खड़ी हो गई है। एक ढांचा था हमारा, वह ढांचा टूट रहा है, तो हम परेशान हैं, हम कहते हैं, दुनिया बड़ी बुरी हुई जा रही है। दुनिया बुरी नहीं हो रही, बल्कि दुनिया में बहुत सी बुराइयां चल रही थीं, उनको तोड़ने का ख्याल आदमी के सामने स्पष्ट हो गया है। अब वे बुराइयां नहीं चल सकेंगी। इसलिए उन बुराइयों से जो लोग फायदा उठा रहे थे, जिनका स्वार्थ उनसे तय हो रहा था, वे सब परेशान हो गए हैं। और वे सारे जमाने को गाली दे रहे हैं, सारे बच्चों को गाली दे रहे हैं, नये युवकों को गाली दे रहे हैं, नई पीढ़ी को गाली दे रहे हैं।
लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, हमने हजारों सालों में जो-जो किया है आदमी के साथ, बड़ा बेहूदा था, उसको तोड़ने का ख्याल आया, क्योंकि सारे लोगों के पास विचार पहुंचे, ख्याल पहुंचे, जागृति आई, चेतना आई।
मनुष्य की चेतना निरंतर विकसित हो रही है। और यह उचित भी है परमात्मा
के जगत में कि चेतना निरंतर विकसित हो। विकास जीवन है। पतन का क्या कारण है वहां? कोई वजह नहीं है।
आपको पता है, आज बिहार में आपका आदमी भूखा मर रहा है, इंग्लैंड, अमेरिका और रूस के बच्चे अपनी जेबों से पैसा काट कर बिहार के आदमी को भोजन भेज रहे हैं। यह आदमी का विकास है कि पतन? यह कल्पना के बाहर था आज से हजार साल पहले कि एक कौम में कोई भूखा मरे और दूसरी कौम उसकी फिकर करे। दूसरी कौम कहतीः बहुत अच्छा हुआ, मर जाओ बिल्कुल, तो हम तुम्हारी पूरी जमीन पी जाएं, हड़प जाएं।
आज सारी जमीन पर आदमी-आदमी के प्रति एक अभूतपूर्व संबंध पैदा हुआ है,
जो कभी नहीं था। पुराने दिन तो ये थे कि एक हिंदू मुसलमान को छूता तो स्नान करता। तो इस मुसलमान के मरने से हिंदू क्या फिकर करने वाला था? मर जाए यह। लेकिन आज बिहार में जो अनजान लोग मर रहे हैं, क्या मतलब है किसी किसान को जो हालैंड में काम करता हो? क्या प्रयोजन है किसी बच्चे को जो बेल्जियम में पढ़ता हो? क्या मतलब है उसे कि बिहार में कोई मर रहा है? मर जाए। उदयपुर के आदमी को उतनी फिकर नहीं है बिहार के आदमी की, जितना अमेरिका का किसान सोच-विचार में पड़ा हुआ है कि उसे कुछ भेजे। आज अमेरिका में चार किसानों में से एक किसान जितना पैदा कर रहा है, वह हिंदुस्तान आ रहा है। और यह बात जानते हुए कि हिंदुस्तान के नासमझ लोग गाली देते रहेंगे कि ये भौतिकवादी हैं, पापी हैं और हम आध्यात्मिक हैं, यह जानते हुए यह आ रहा है। हम गाली दिए जा रहे हैं सारी दुनिया को और वह सारी दुनिया हमारे लिए हर तरह की चिंता किए जा रही है। यह कभी पिछले दिनों में संभव हुआ था? यह कभी संभव हो सकता था? यह संभव हुआ है।
लेकिन हमें यह पीछे का रोग क्यों पकड़ता है कि पीछे सब अच्छा था?
इसके कुछ बुनियादी मनोवैज्ञानिक कारण हैं। पहला कारण तो यह है, पहला बुनियादी कारण तो यह है, यह थोड़ा सोचने-समझने जैसा जरूरी है। हर आदमी का मन बचपन में आनंद को अनुभव करता है। बचपन में न तो चिंता होती है, न फिकर होती है। मां-बाप फिकर करते हैं, चिंता करते हैं, बच्चा सिर्फ जीता है। कोई दायित्व नहीं, कोई बोध नहीं, कोई भार नहीं। फिर बच्चा बड़ा होता है, जैसे- जैसे जवान होने लगता है, दायित्व बढ़ता है, बोझ बढ़ता है। उसे दिखाई पड़ने लगता है कि बचपन बहुत अच्छा था, अब बड़ी मुसीबत शुरू हो गई। इस भांति उसका चित्त पीछे की तरफ सोचना शुरू कर देता है कि पीछे अच्छा था, अब सब गड़बड़ हो गया। फिर जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, जवान होता है, प्रौढ़ होता है, बूढ़ा होता है, कठिनाई बढ़ती जाती है। उसका चित्त सोचने लगता हैः पीछे सब अच्छा था, अब सब गड़बड़ होता जा रहा है।
एक-एक व्यक्ति को यह अनुभव होता है उसके चित्त में कि पीछे सब अच्छा था, अब सब गड़बड़ होता जा रहा है। यह जो बुद्धि का निर्माण हो जाता है, पीछे सब अच्छा था, यह मोड ऑफ थिंकिंग, यह सोचने का ढंग फिर सारी चीजों में काम करता है और वह कहता है कि पीछे सब अच्छा था और अब सब गड़बड़ हो गया है। इसका संबंध व्यक्तिगत मन की सोचने की विधि से है। हमारा व्यक्तिगत मन बचपन में आनंद अनुभव करता है, बाद में दुख अनुभव करता है, हर आदमी। इसलिए उसके सोचने

का ढंग यह हो जाता हैः पहले सब अच्छा था। फिर इस बात को वह हर चीज पर लागू करता है--समाज पर, जीवन पर, संस्कृति पर, सभ्यता पर--पीछे सब अच्छा था। यह उसके चित्त में बैठी हुई बचपन की याद है, जो काम करती है। और इसके आधार पर वह जो नतीजे लेता है, वे नतीजे एकदम भ्रांत और झूठे हैं, उनमें कोई अर्थ नहीं है।
मनुष्य विकसित हो रहा है, मनुष्य आगे जा रहा है, मनुष्य की चेतना निरंतर ऊर्ध्वगामी है। और यही उचित है। परमात्मा के इस जगत में नीचे जाना कैसे संभव है? नीचे जाने की बात अधार्मिक है। मनुष्य तो ऊपर जा रहा है, रोज नये अनुभव उसे और ऊपर ले जा रहे हैं।
लेकिन कुछ लोगों को लग रहा है कि नीचे जा रहा है। उनके निहित स्वार्थ टूट रहे हैं। जिन-जिन के स्वार्थ थे, उनको लग रहा है कि मनुष्य नीचे जा रहा है। जो मंदिर में बैठ कर पूजा करता था, आज मंदिर में कम लोग जा रहे हैं कल की बजाय। जो पादरी चर्च में भाषण करता था, उसके भाषण सुनने लोग नहीं जा रहे हैं। जो किताबें कल तक भगवान की किताबें समझी जाती थीं, लोग समझने लगे कि वे भी आदमियों की किताबें हैं। दुख पैदा हो रहा है, परेशानी पैदा हो रही है। पुरोहित का वर्ग सारी दुनिया में परेशान है, क्योंकि उसका धंधा एकदम विलीन हो रहा है। लोग समझ रहे हैं, भगवान मंदिर में नहीं है। लोग समझ रहे हैं, भगवान जीवन में है। लोग समझ रहे हैं, गंडे, ताबीज, तंत्र-मंत्र नासमझियां हैं। लोग जीवन के सूत्र खोज रहे हैं। लोगों की आंखें खुल रही हैं, कि तुम उनको अब समझाओ कि नरक में सड़ोगे, तो वे विश्वास करने को राजी नहीं हैं। तुम उनको कहो कि स्वर्ग में आनंद मिलेगा, दान करो, तो भी वे विश्वास करने को राजी नहीं हैं।
विश्वास की शक्ति कम हुई है। होगी। जब विचार विकसित होता है, तो विश्वास कम होता है। विश्वास अंधापन है। जब आंखें खुलती हैं, तो कोई आदमी विश्वास नहीं करता, विचार करता है। दुनिया में विचार जग रहा है, विश्वास शिथिल हो रहा है। इसलिए जो लोग विश्वास को धंधा बनाए हुए थे और विश्वास के आधार पर जी रहे थे, वे सब परेशान हो गए हैं।
थाईलैंड में चार करोड़ की आबादी है। चार करोड़ में बीस लाख भिक्षु, साधु। चार करोड़ की आबादी में बीस लाख साधु! थाईलैंड के युवकों ने कह दिया कि आप साधु हो, ठीक, लेकिन खेती-बाड़ी करो, अनाज पैदा करो, मुफ्त हम खाने नहीं देंगे। तो थाईलैंड का साधु कहता हैः जमाना बिल्कुल बिगड़ गया। यह क्या बात कर रहे हो? यह कोई बात करने की है? साधुओं ने कभी काम किया है? साधुओं ने कभी खेती-बाड़ी की है? जूते सीए हैं? कपड़े बुने हैं? साधु यह नहीं करता। तो थाईलैंड कहेगा कि तो फिर साधु मत रह जाओ। लेकिन अब बीस लाख लोगों की पलटन को मुफ्त नहीं पोसा जा सकता। भारी पड़ गई है। चार करोड़ की आबादी में बीस लाख आदमी कितने भारी हो गए हैं? तो वे बीस लाख आदमी चिल्ला कर कह रहे हैं कि जमाने का पतन हो गया। और बीस लाख आदमी जब चिल्ला कर कह रहे हों, तो सबके दिमाग में यह बात पैदा हो जाती है कि पतन हो गया है, जरूर हो गया होगा। लेकिन ये बीस लाख लोग अब जी नहीं सकेंगे।
हिंदुस्तान में भी वही हालत है, सारी दुनिया में वही हालत है। कैथलिक पादरियों की संख्या बारह लाख है। बारह लाख आदमी बिना कुछ किए जी रहे हैं। बारह लाख पादरी हैं सारी दुनिया में, वे मुफ्त जी रहे हैं। उनके आप पैर भी छू रहे हैं, आदर भी दे रहे हैं, भगवान भी मान रहे हैं, वे मुफ्त जी रहे हैं। कुछ क्रिएट नहीं किया, कुछ पैदा नहीं कर रहे हैं। एक ही काम करते हैं, वक्त आ जाए तो लड़वाने का काम करते हैं। प्रोटेस्टेंट से लड़ो, तो कैथलिक पादरी लड़वाने का काम करता है; मुसलमान से लड़ो, तो लड़वाने का। एक धंधा है पादरी के पास कि लड़वाने का वक्त आ जाए तो वह भाषण देता है कि लड़ो! और समझाता है कि अगर धर्म के युद्ध में मर गए, तो मोक्ष बिल्कुल निश्चित है। और पागल होते हैं जो इस मोक्ष की आशा में मर भी जाते हैं।
अब ये बारह लाख पादरी परेशान हैं, क्योंकि इंग्लैंड और यूरोप और अमेरिका में लड़के उनसे कह रहे हैं कि अब यह आगे नहीं चलेगा, यह आखिरी वक्त है, यह आखिरी पीढ़ी है जो तुमको चलने दे रही है। यह फौज-फांटा हम नहीं पाल सकते, इसकी कोई जरूरत भी नहीं है।

चर्च खाली होते जा रहे हैं, इसलिए परेशानी है। क्योंकि जब नहीं आते चर्च में सुनने वाले, तो दान भी नहीं आता है। दान नहीं आता, तो पादरी भी मुश्किल में पड़ता है।
अब नये युवक यज्ञ नहीं करवाएंगे, हवन नहीं करवाएंगे। तो यज्ञ और हवन
पर जो जी रहे थे, वे क्या कहेंगे? वे कहेंगेः अधर्म आ गया, धर्म के दिन चले गए, न लोग यज्ञ करते हैं, न हवन करते हैं।
सच्चाई यह है कि यज्ञ और हवन करने वाले लोग नासमझ थे। उनके पास विचार
की कोई शक्ति नहीं थी, कोई वैज्ञानिक बुद्धि नहीं थी, इसलिए उनका कोई भी शोषण कर रहा था। अब यह तो वक्त नहीं रहा। तो बीच में आने वाले पचास वर्षों में यह होगा कि सारी दुनिया में एक अव्यवस्था मालूम पड़ेगी, जो व्यवस्था थी वह टूट जाएगी। और जब कोई पुरानी व्यवस्था टूटती है और नई व्यवस्था निर्मित होती है, तो बीच में एक संक्रमण का वक्त होता है, जो बड़ी पीड़ा का और तकलीफ का होता है। हम सारी दुनिया में उसी वक्त से गुजर रहे हैं, संक्रमण का एक समय है। जब हमने पुराना मकान तो गिरा दिया है और नया अभी बना रहे हैं, तो बीच में थोड़ी तकलीफें झेलने का वक्त है। लेकिन दुनिया किसी बुरे रास्ते पर नहीं है। विचार उसे भले रास्ते पर ले जा रहा है। और अगर कहीं कोई दिखाई पड़ती हो बुराई, तो मेरा कहना है कि वह पिछली ही पीढ़ियों से पैदा हुई है, पिछली ही संस्कृतियों से पैदा हुई है।
जैसे हम देख रहे हैं, यह बात सच है, आप कहेंगे कि दिखाई पड़ता है कि आदमी नैतिक नहीं रह गया, झूठ बोलता है, धोखा करता है, पाप करता है। ये पूछे हैं सारे प्रश्न कि यह आदमी करता है। तो आप सोचते हैं आदमी बुरा हो गया है? मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि अब तक आपने आदमी को पाप से रोकने के लिए
जो उपाय किए थे, वे उपाय गलत थे। अब तक फियर सिर्फ एक उपाय था। धार्मिक लोगों ने भय, भय के आधार पर दुनिया में पाप रोकने की कोशिश की थी। घबड़ाया था लोगों को कि नरक में डलवा देंगे, कड़ाहों में जलाए जाओगे, यह होगा, वह होगा, जन्म-जन्म तक कुत्ते हो जाओगे, बिल्ली हो जाओगे, योनियां बदल जाएंगी, कष्ट भोगोगे, चौरासी करोड़ योनियों में भटकोगे, फिर मनुष्य हो पाओगे। ऐसी- ऐसी घबड़ाहट और फियर पैदा किया था। और इसी भय के आधार पर उसको अच्छा बनाया था कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो। भय के आधार पर नीति खड़ी की गई थी। जब तक लोग अंधे थे, उस नीति ने काम किया। अब लोग विचार करने लगे। और विचार में उनको दिखाई पड़ने लगा कि यह नरक है भी या नहीं? भय के जो मुद्दे थे, वे विचार के सामने टूट गए। तो अब उस आदमी को आप कहिए कि नरक चले जाओगे अगर चोरी की, तो वह कहता है कि कोई हर्जा नहीं, चले जाएंगे, आप फिकर मत करो। क्योंकि नरक का हमें कोई पक्का भरोसा नहीं कि है। तो अब वह चोरी कर रहा है। आपका पुराना ढंग जो था, वह व्यर्थ हो गया और आपको नया ढंग सूझ नहीं रहा कि वह चोरी से कैसे बचे।
पांच हजार साल तक केवल भय के आधार पर हमने आदमी को बेईमानी और चोरी करने से रोका। वह आधार नासमझ लोगों में चल सकता था, समझदार लोगों में नहीं चल सकता। तो फिर अब क्या हो? हमारा आधार गलत था, इसलिए लोग अनैतिक दिखाई पड़ रहे हैं। नये आधार रखने होंगे। भय आधार नहीं हो सकता। फियर के आधार पर कोई आदमी कभी नैतिक नहीं होता है। चौरस्ते पर एक पुलिसवाला खड़ा हुआ है और आप वहां से निकलते हैं और चोरी नहीं करते, तो आप यह मत सोचना कि आप नैतिक हैं। लेकिन चौरस्ते पर कोई पुलिसवाला नहीं है और आप चोरी नहीं करते, तो ही आप समझना कि आप नैतिक हैं। अदालतें, कानून, पुलिस, सब रोकते हों, तो आप चोरी नहीं करते, इससे कोई नैतिकता का संबंध नहीं है, सिर्फ भय है।
तो हमने बहुत भय खड़े किए। चौरस्ते पर पुलिसवाला खड़ा है, फिर अदालत है, फिर नीचे नरक है और फिर ऊपर सुप्रीम कांस्टेबल है भगवान, वह सबसे बड़ा पुलिसवाला, वह ऊपर से देख रहा है, नजर रखे हुए है हरेक को कि किसी ने चोरी की, तो उसको फिर सजा दिलवानी है, नरक में डालना है। वह यही धंधा कर रहा है बेचारा हजारों साल से। बहुत ऊब गया होगा, परेशान हो गया होगा। उसकी तो कोई गति नहीं, उसका कोई ट्रांसफर भी नहीं होता, उसकी कोई बदली नहीं होती, वह कोई रिटायर नहीं होता। वह भगवान ऊपर बैठा हुआ है और एक-एक आदमी का पाप देख रहा है। कितने आदमी, और कितने आदमी मर चुके, और वह पाप देखते-देखते कितना नहीं घबड़ा गया होगा, पागल नहीं हो गया होगा, उसको हम ऊपर बिठाए हुए हैं। यह

हमने आदमी को घबड़ाने के लिए सारा इंतजाम किया। और इस घबड़ाहट में, इस डर में आदमी अगर थोड़ा सा नैतिक मालूम पड़ता था, वह नैतिकता झूठी थी। आज यह सारा भय छूट गया। मनुष्य को उदय हुआ विचार, उसने चीजें देखीं और सोचीं, उसे लगा कि ये मामले सच्चाई के नहीं हैं, कल्पना के हैं। और कल्पना के हैं।
आपको पता है, तिब्बतियों का नरक कैसा होता है? और हिंदुओं का नरक कैसा होता है? हिंदुस्तान में हम गर्मी से परेशान हैं, तो हमने नरक में गर्मी का इंतजाम किया हुआ है--आग जल रही है, कड़ाहे जल रहे हैं, तेल खौल रहा है। लेकिन तिब्बत? तिब्बत ठंड से परेशान है, तो अपने पापियों के लिए अगर गर्म जगह भेज दें तो पापी बहुत प्रसन्न हो जाएंगे। तो उन्होंने इंतजाम किया है कि वहां ऐसी बर्फ है जो कभी गलती ही नहीं, बर्फ ही बर्फ है तिब्बतियों के नरक में। और उस नरक में डाल देंगे, बर्फ ही बर्फ में, ठंडक-ठंडक में मरेगा आदमी। तिब्बतियों के लिए बर्फ का भय हो सकता है, इसलिए तिब्बत के नरक में बर्फ है। हिंदुओं के लिए, भारतीयों के लिए गर्मी का भय है, इसलिए गर्मी का। अगर हिंदू को तिब्बतियों के नरक में भेज दिया जाए, तो वह समझेगा कि किसी एयरकंडीशन दुनिया में भेज दिया गया। वह एकदम आनंदित होकर नाच उठेगा कि लगेगा स्वर्ग आ गया।
लेकिन सारी दुनिया के अगर नरकों का आप विचार करेंगे, तो हैरान हो जाएंगे। हर कौम में जो तकलीफ है, वह तकलीफ नरक में पैदा कर दी है। वही तकलीफ नरक में पैदा कर दी है--भय देने के लिए। और स्वर्ग में? स्वर्ग में प्रलोभन दे दिया है। भय का उलटा प्रलोभन है। जो लोग अच्छे काम करेंगे, उनको स्वर्ग भेज देंगे। और स्वर्ग में क्या होगा? अरब के मुल्कों में, क्या वायदा किया गया है मुसलमान मुल्कों में? वायदा किया गया है कि स्वर्ग में शराब के झरने बह रहे हैं। हद्द हो गई! यहां हम समझाते हैं लोगों को कि शराब मत पीओ! जो शराब नहीं पीएगा उसको स्वर्ग में शराब की नदियां बह रही हैं, पीए, नहाए, डूबे, जो करना हो करे, यह प्रलोभन है।
जमीन पर स्त्रियों के लिए हम कहते हैं कि स्त्रियों से बचना, संयम रखना। लेकिन स्वर्ग में हमने अप्सराओं की व्यवस्था कर दी है। और अप्सराएं, जो लोग स्त्रियों से यहां बचेंगे, उनको मिलेंगी। और वे अप्सराएं बहुत अच्छी होंगी। यहां की स्त्रियां तो आखिर बूढ़ी हो जाती हैं, अप्सराएं कभी बूढ़ी नहीं होतीं। उनकी उम्र सोलह ही वर्ष बनी रहती है कांसटेंट, उसमें फर्क नहीं पड़ता। उम्र बदलती नहीं, बस सोलह पर टिकी रहती है, अप्सराओं की उम्र सोलह ही रहती है, उसके ऊपर नहीं जाती। ये प्रलोभन हैं हमारे। हद्द बेईमानी, हद्द नासमझी और मनुष्य के साथ खूब खिलवाड़ किया गया है। यह वहां उनको मिल जाएगा। यहां इच्छाओं से बचना, कामनाओं से बचना, वहां हमने कल्पवृक्ष निर्मित कर रखे हैं। उनके नीचे बैठना और जो कामना करो, पूरी हो जाएगी।
तो यहां नरक का भय और स्वर्ग का प्रलोभन, इन दो के बीच हम आदमी की कोशिश किए कि तुम नैतिक हो जाओ। जो आदमी अंधा था, विचारहीन था, वह रुक गया होगा। लेकिन उसका रुकना नैतिकता नहीं है। क्योंकि जिस चीज में भय के कारण हम रुकते हैं, प्रलोभन के कारण रुकते हैं, उसमें हम वस्तुतः नहीं रुकते, हमारा चित्त तो काम करता ही रहता है, करता ही रहता है, ऊपर से हम रुक जाते हैं।
यह नीति खतम हो गई है। और यह अच्छा हुआ है, यह शुभ है। यह नीति गलत आधारों पर खड़ी थी। अब एक नई नीति को जन्म देने का सवाल है। और ये पुराने लोग जो पुरानी नीति के अतिरिक्त सोचने में जरा भी समर्थ नहीं हैं, उनको ऐसा लग रहा है कि आ गया यह तो महाकाल का समय, प्रलय आ जाएगी, अब क्या होगा? नहीं साहब, प्रलय नहीं आ जाएगी, नई नीति का जन्म होगा। मनुष्य के ऊपर
जब संकट खड़े होते हैं, तभी विचार पैदा होता है। अब एक बड़ा संकट, एक बड़ी क्राइसिस पैदा हो गई सारी दुनिया में कि क्या करें, नीति अब कैसे खड़ी हो? भय पर अब खड़ी नहीं हो सकती, प्रलोभन पर अब खड़ी नहीं हो सकती। वे पिटे-पिटाए रास्ते गए, अब बच्चे स्वर्ग-नरक नहीं मानेंगे।
छोटा सा बच्चा मुझसे एक स्कूल का पूछता था कि कहां है यह नरक, मुझे बताइए! मैंने तो पूरी भूगोल पढ़ डाली, उसमें कहीं है नहीं। यह बच्चा उन बूढ़ों से ज्यादा विकसित है जिन्होंने नरक मान लिया होगा चुपचाप। यह

ज्यादा विकसित है, इसकी चेतना ज्यादा प्रबुद्ध है। इसकी प्रबुद्ध चेतना के लिए नई नीति चाहिए। उसी नई नीति की मैं आपसे बात कर रहा हूं। वह नीति शांत मन से निकलती है, भयभीत मन से नहीं। जब कोई व्यक्ति चित्त को शांत करता है, तो शांत चित्त अनैतिक होने में असमर्थ हो जाता है। किसी भय के कारण नहीं, किसी प्रलोभन के कारण नहीं, एक आंतरिक बोध के कारण। शांत मनुष्य, विचारवान मनुष्य, जाग्रत मनुष्य अनैतिक होने में असमर्थ हो जाता है। अनैतिकता सोए हुए मन का लक्षण है, इसकी हम तीन दिन से बात कर रहे हैं। सोया हुआ आदमी जो भी करेगा, वह अनैतिक होगा। जागा हुआ आदमी जो भी करेगा, वह नैतिक होगा।
तो जागरण कैसे आ जाए? तो हम जगत में एक नई नीति के जन्म की शुरुआत कर सकेंगे। करनी पड़ेगी, सोचना पड़ेगा, खोजना पड़ेगा कि छोटे-छोटे बच्चे के चित्त को हम कैसे जाग्रत कर सकें।
अभी तो हम भयभीत करते थे। और भयभीत होने से चित्त विकसित नहीं होता, क्रिपिल्ड होता है, ग्रंथि से भर जाता है, दब जाता है। यही तो वजह है कि जिन-जिन कौमों ने बहुत ज्यादा इस तरह की बातें सिखाईं, उन कौमों के बच्चे विकसित नहीं हो पाए। हमारी कौम के बच्चे सबसे कम विकसित हैं। दुनिया में आज किसी भी कौम के बच्चों के सामने हमारे बच्चे कमजोर हैं--बौद्धिक रूप से, शारीरिक रूप से, मानसिक रूप से, सब तरह से कमजोर हैं। और उसका कुल कारण इतना है कि हमने उनको दबाया, दबाया, कभी हमने उनके चित्त को स्वतंत्रता से विकसित होने का मौका नहीं दिया। हमारे बच्चे वैसे हैं, जैसे एक पौधा पैदा हो और जगह-जगह से हम उसको मोड़ दें, इधर जाओ, इधर जाओ, सब तरफ से शाखाएं उसकी दबाएं, तो आखिर में एक पौधा पैदा होगा पंगु, जिसमें पत्ते तो लगेंगे, लेकिन उनमें जान न होगी, जिसमें डालें तो निकलेंगी, लेकिन वे इतनी घुमाई-फिराई गई होंगी कि बेजान हो जाएंगी। वह कुरूप, अग्लीनेस का एक सबूत हो जाएगा, और कुछ भी नहीं।
तो अब चिंतन सारी दुनिया में है कि मनुष्य का चित्त--ज्ञान, शांति, अभय, इनके आधार पर कैसे नैतिक हो सकता है? हो सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। बल्कि सच्चाई यह है कि तभी हो सकता है, और कभी नहीं हो सकता, भय के आधार पर कोई नैतिक नहीं हो सकता। भय खुद ही अनीति है। भय सबसे बड़ी अनीति है। लेकिन हम तो कहते रहे हैं कि गॉड फियरिंग, ईश्वर-भीरु, ईश्वर से डरने वाला धार्मिक होता है। और मैं आपसे यह कहता हूंः जो किसी से भी डरता है, वह कभी धार्मिक नहीं होता। डरने वाला कभी धार्मिक होता ही नहीं। धार्मिक तो वह होता है, जो डरता ही नहीं। अभय, फियरलेसनेस उसका पहला सूत्र है, वही धार्मिक हो सकता है। वही नैतिक हो सकता है, जो अभय को उपलब्ध होता है, जो सारे भय से मुक्त हो जाता है। यह भय की मुक्ति की खोज बच्चों के लिए करनी है।
मनुष्य का ह्नास नहीं हुआ है। एक संस्कृति का, एक सभ्यता का ह्नास हो गया है। और वह गलत थी, इसलिए ह्नास हो गया, और कोई कारण न था। अब मनुष्य बिना संस्कृति के खड़ा है, उसकी नई संस्कृति की खोज का सवाल है। और वे लोग जो पुरानी ही बातों को दोहराए चले जा रहे हैं, वे मनुष्य के इस संकट को मिटाने में सहयोगी नहीं होंगे। क्योंकि वे पुराने ढांचे गलत हो गए थे, इसलिए छोड़ने पड़े हैं। उन्हीं ढांचों को हम वापस आदमी के ऊपर थोपने की कोशिश करेंगे जितनी देर तक, उतनी देर तक नई दिशाएं नहीं खुल सकेंगी।
एक बात स्पष्ट रूप से जान लेना जरूरी हैः एक जमाना मर गया, जो कल तक था। लेकिन उसकी मृत्यु से कोई अहित नहीं हो गया है। एक नया जमाना पैदा हो सकता है, जो कल होगा। इसलिए जो लोग भी थोड़ा सोच-विचार करते हैं, उन्हें खोज करनी चाहिए--कि किन कारणों से पुराना ढांचा मर गया? किन कारणों से? और नया ढांचा किन कारणों से खड़ा हो सकता है और विकसित हो सकता है?
हमारी पुरानी पूरी नीति दमन, सप्रेशन की थी--दबाओ, दबाओ, दबाओ! लेकिन
मन को मुक्त करो, खोलो, उसके द्वार खोलो, पहचानो, वह नहीं थी। वह गई। लेकिन यह कोई पतन नहीं है, यह विकास है। मनुष्य ज्यादा सुदृढ़ भूमि पर, ज्यादा आलोकित भूमि पर कदम रख रहा है।
तो मुझे तो ऐसा नहीं दिखाई पड़ता कि आज का आदमी बुरा है कल के आदमी से। मैं तो आशान्वित हूं, आज का आदमी बहुत भला है। और मैं यह भी कहना चाहता

हूंः कल का आदमी और भला होगा, परसों का आदमी और भला होगा। विकास आगे की तरफ है, क्योंकि विकास परमात्मा की तरफ है। बीज विकसित हो रहा है आगे की तरफ। केवल वे ही लोग इस विकास में बाधा बनते हैं, जो ढांचों के ऊपर जोर पकड़ लेते हैं।
एक बच्चा घर में पैदा होता है, हम उसको कपड़े पहनाते हैं। फिर बच्चा बड़ा होने लगता है, तो अगर हमारा कपड़ों से बहुत मोह हो, तो हम कहेंगेः यह बच्चा बिल्कुल बिगड़ता जा रहा है, बच्चा बिल्कुल बिगड़ रहा है। कल तक जो कपड़े ठीक आते थे, अब यह गड़बड़ कर रहा है, और कपड़े ठीक नहीं आ रहे हैं। अगर हम कपड़ों के बहुत प्रेमी हों, तो बच्चे की टांग काट देंगे, हाथ काट देंगे, ताकि कपड़े के भीतर रहे, क्योंकि कपड़ा हमने इतनी मुश्किल से बनाया था। लेकिन अगर हम बच्चे को प्रेम करते हैं, तो हम कहेंगेः यह कपड़ा फेंक दो और नये कपड़े बनाओ, बच्चा विकसित हो रहा है।
मनुष्य-जाति विकसित हो रही है, तो जो कपड़े तीन हजार वर्ष पहले उसे पहनाए गए थे, वे तंग हो गए हैं, वे उसके प्राणों में फंदा बन गए हैं। और हम कहते हैंः यह आदमी गड़बड़ हुआ जा रहा है। हमारे सब कपड़े फिजूल हुए जा रहे हैं। हमारी सारी नीति, हमारा धर्म, हमारे शास्त्र फिजूल हुए जा रहे हैं। तो इस आदमी को काटो, छांटो, ताकि कपड़े के भीतर रहे।
नहीं; आदमी गड़बड़ नहीं हुआ है, आपके ढांचे छोटे पड़ गए हैं। ढांचे बदल देने होंगे। आदमी तो विकसित हो रहा है। और आदमी की सारी तकलीफ तभी पैदा होती है, जब वह तो विकसित हो जाता है और ढांचा छोटा रह जाता है। किसी बड़े आदमी को छोटे बच्चे का कमीज पहना दें, तो जैसी हालत हो जाएगी, वैसी हालत पूरी मनुष्य-जाति की आज है। मनु महाराज को हुए हो गए होंगे ढाई हजार, तीन हजार साल। और तीन हजार साल पहले मनु महाराज जो लिख गए, वह आज के आदमी को पहनाया जा रहा है। हद्द नासमझी की बात है! तीन हजार साल में क्या हम भाड़ झोंकते रहे? तीन हजार साल में कोई विचार नहीं किया? आदमी के बाबत नई खोज नहीं की? तीन हजार साल में हमने कुछ भी नहीं जाना? कोई नया अनुभव नहीं कि मनु के आगे हम विकसित हो सकें?
लेकिन नहीं, मनु जो ढांचा दे गए, उस पर हम खड़े हैं। और तकलीफ इसलिए हो रही है कि ढांचा बदलने को हम राजी नहीं हैं। हम इसी के लिए राजी हैं कि चाहे आदमी को बदलना पड़े, ढांचा हम न बदलेंगे। तो फिर तकलीफ खड़ी हो रही है, उससे आदमी के ऊपर हम क्रोधित हो रहे हैं, निंदा कर रहे हैं उसकी और वही बातें दोहराए जा रहे हैं जिनसे आदमी विकृत हो रहा है। छोटे-छोटे बच्चों को हम क्या सिखा रहे हैं? वे ही गलत बातें, जिनकी वजह से आदमी परेशान है, उनको सिखाए जा रहे हैं।

इस संबंध में एक प्रश्न पूछा है, उसकी भी मैं इसी संबंध में बात कर लूं। एक मित्र ने पूछा है कि अगर हम बच्चों को कोई भी शिक्षा न दें, तब तो बच्चे बिगड़ जाएंगे। अगर हम उनको आदर्श न सिखाएं, अगर हम उनको सिद्धांत न सिखाएं, तो वे बिगड़ जाएंगे।

बड़े मजे की बात है कि आप तीन हजार साल से सिखा रहे हैं, फिर भी वे बिगड़ क्यों गए हैं? आदर्श भी सिखा रहे हैं, शिक्षा भी दे रहे हैं, सिद्धांत भी, गीता भी पिला रहे हैं, रामायण, कुरान, बाइबिल भी पिला रहे हैं और फिर भी वे बिगड़ गए? तीन हजार साल से आप क्या कर रहे हैं और?
तो मैं यह नहीं कहता हूं कि कुछ भी न सिखाएं। मैं यह कहता हूं कि उनके ऊपर थोपें नहीं, उनके भीतर जो छिपा है, उसके सहारे बनें, उसे विकसित करें। दो बातें हैं। एक बच्चे पर हम थोप दें कोई बात, तो बच्चे की आत्मा हमेशा के लिए परतंत्र हो जाती है। और बच्चे के भीतर जो छिपी हुई शक्तियां हैं, उनको सहारा दें, उनको विकसित होने का मौका दें, समझें उस बच्चे को और उन-उन ताकतों को जो उसके भीतर सोई हैं, जगाएं, तो बच्चा विकसित होगा। बच्चे के ऊपर ढांचे नहीं देने होते, उसकी चेतना को दिशा देनी होती है। और हम ढांचे देते रहे हैं।
हम छोटे-छोटे बच्चों को क्या कहते हैं? हम उनसे कहते हैंः महावीर जैसे बनो, बुद्ध जैसे बनो, गांधी जैसे बनो। यह बात एकदम गलत है। कोई बच्चा क्यों

महावीर जैसा बने? वह खुद बनने को पैदा हुआ है। कोई महावीर की ट्रू कॉपी बनने को पैदा हुआ है? उसकी जिंदगी अपनी है, वह अपनी आत्मा लेकर आया है, क्यों बने महावीर जैसा? क्यों बुद्ध जैसा बने? क्यों गांधी जैसा बने? वह खुद अपने जैसा बनेगा। लेकिन हम उसे सिखा रहे हैं कि फलां जैसे बनो, उस जैसे बनो। और इस सिखाने का परिणाम यह होगा कि अगर बच्चा बुद्ध, महावीर और राम जैसा बनने की कोशिश में पड़ गया, तो एक बात तय है, वह जो होने को पैदा हुआ था, वह नहीं बन पाएगा। और वही होता उसका विकास, वही होती उसकी आत्मा, वह नहीं हो पाएगा। और जब उसका विकास नहीं हो पाएगा, उसकी आत्मा पूर्णता को नहीं पा पाएगी, तो वह होगा दुखी, पीड़ित, परेशान, चिंतित, हैरान। उसकी समझ में नहीं आएगा कि यह क्या हो रहा है?
और क्या आपको पता है, आज तक जमीन पर कोई एक आदमी दूसरे आदमी जैसा हुआ है? बुद्ध को हुए ढाई हजार साल हो गए, फिर दूसरा बुद्ध क्यों नहीं पैदा हुआ अब तक? ढाई हजार साल कोई कम वक्त है? राम को हुए और भी वक्त हो गया, अब तक दूसरा राम क्यों पैदा नहीं हुआ? कोई कम समय मिला है राम को होने में फिर दुबारा? लेकिन सच्चाई यह है... और हमारी आंखें इतनी अंधी हैं कि हम देखते नहीं, फिर भी हम दोहराए चले जा रहे हैं--राम जैसे बनो, कृष्ण जैसे बनो, क्राइस्ट जैसे बनो। सच्चाई यह है कि कोई आदमी कभी किसी दूसरे जैसा न बन सकता है, न बनने की जरूरत है। हर आदमी यूनीक है, हर आदमी बेजोड़ है, हर आदमी अद्वितीय है। परमात्मा अदभुत कलाकार मालूम होता है, वह एक ही चीज को दुबारा पैदा ही नहीं करता। इतना इनवेंटिव मालूम होता है, इतना आविष्कारक। उसकी आविष्कार की बुद्धि चुकती ही नहीं है। वह एक ढांचे को बनाता है और तोड़ देता है, फिर नये आदमी बनाता है। वह कोई फैक्ट्री नहीं खोली हुई है उसने कि जहां ढांचे लगे हुए हैं, सांचे लगे हुए हैं, एक सी मॉडल की फोर्ड गाड़ियां निकलती जा रही हैं हजारों। एक-एक आदमी अद्वितीय और बेजोड़ है। सृष्टि की अदभुत से अदभुत लीलाओं में यह एक लीला है कि हर आदमी बेजोड़ और अलग है। हर आदमी अपने जैसा है, और किसी जैसा भी नहीं है।
लेकिन हम बच्चों को सिखाते हैंः दूसरों जैसे हो जाओ। यह शिक्षा बुनियादी रूप से गलत है। इसका फल क्या होगा? उस बच्चे का व्यक्तित्व मर जाएगा। उधार होगा उसका व्यक्तित्व। और अगर वह बन भी गया किसी जैसा, तो वह नकल होगी, सच्चाई नहीं। राम तो नहीं बन पाएगा, रामलीला का राम जरूर बन सकता है। और रामलीला के राम की कोई भी जरूरत दुनिया में नहीं है। क्योंकि रामलीला का राम एकदम झूठा आदमी है, एकदम झूठा, उसमें कोई भी मतलब नहीं है। पाखंड इसी से पैदा हुआ दुनिया में, दूसरे जैसे बनने की कोशिश से।
अगर किसी फूलों की बगिया में कोई उपदेशक पहुंच जाए और फूलों को समझाने लगे, गुलाब से कहे कि जुही जैसे हो जाओ; चंपा से कहे, चमेली जैसे हो जाओ; तो क्या होगा उस बगिया में? पहली बात तो यह कि फूल उसकी बात ही न सुनेंगे। फूल इतने नासमझ नहीं हैं जितना आदमी कि हर किसी की बात सुनने लगें। वे उसकी फिकर ही नहीं करेंगे। वह उपदेशक बकता रहेगा, न वे ताली बजाएंगे, न संगठन बनाएंगे। लेकिन हो सकता है कुछ फूल आदमियों के साथ रहते- रहते बिगड़ गए हों। साथ रहने से बुरा परिणाम तो होता ही है। जंगल में जो जानवर रहते हैं, उनको वे बीमारियां नहीं होतीं, आदमी के पास जो जानवर रहते हैं, उनको आदमी की बीमारियां हो जाती हैं। तो आदमी के बगीचों में रहते- रहते कुछ फूल बिगड़ गए हों और उपदेशकों की बातें सुनने लगे हों, तो शायद कुछ फूल सुन लें और मान लें। और चमेली चंपा जैसे होने की कोशिश में लग जाए और गुलाब जुही जैसा होने लगे, तो फिर उस बगिया में क्या होगा? वह बगिया उजड़ जाएगी, उसमें फूल फिर पैदा नहीं हो सकेंगे।
इसलिए नहीं हो सकेंगे फूल पैदा कि गुलाब सिर्फ गुलाब ही हो सकता है। वही उसकी नियति, वही उसकी डेस्टिनी, वही उसका आनंद, वही परमात्मा के द्वारा दिया गया उसका दायित्व है। वह जुही नहीं हो सकता। लेकिन जुही होने की कोशिश में, उसकी सारी ताकत तो लग जाएगी जुही होने की कोशिश में और तब वह गुलाब भी नहीं हो पाएगा, क्योंकि ताकत खर्च हो जाएगी जुही होने में। जुही तो हो नहीं सकेगा और इस जुही होने की कोशिश में गुलाब भी नहीं हो पाएगा। उस पौधे पर फिर फूल नहीं आएंगे। वह बगिया उजड़ जाएगी। और बगिया उजड़ जाएगी, तो

उपदेशक कहेगाः देखो, कैसा कलियुग आ गया है, फूल नहीं लग रहे पौधों में! यह जमाना ही खराब है।
यह उपदेशक की करतूत है यह कलियुग। यह जमाना खराब नहीं है, यह बगिया में फूल आते, यह उपदेशक की करतूत है कि फूल बगिया में नहीं आ रहे हैं। आदमी की जिंदगी पर जो सबसे बड़ा पाप और दुर्भाग्य हो गया है, वह उपदेशकों की अदभुत शिक्षाएं हैं। उन्होंने हरेक को सिखा दिया, किसी और जैसे हो जाओ। फिर कोई आदमी अपने जैसा नहीं हो पा रहा है। आदमी की जिंदगी में फूल आने बंद हो गए हैं।
नई शिक्षा, नई नीति, नया धर्म मनुष्य से कहेगाः तुम भूल कर भी किसी और जैसे होने की कोशिश मत करना। तुम तो खोजना अपने भीतर कि तुम क्या हो सकते हो? क्या तुम्हारे भीतर बीज छिपा है? कौन सी पोटेंशियलिटी है? तुम उसी को विकसित करना, उसी को फैलाना, तुम वही हो जाना। तुम्हारे ऊपर यही दायित्व है परमात्मा का कि तुम वही हो जाना जिसको लेकर तुम पैदा हुए हो। तुम नकल में मत पड़ना, क्योंकि नकल करने वाला आदमी अपनी आत्मा खो देता है।
और हम सब नकल में पड़े हुए हैं। अजीब-अजीब नकलें हैं! और हममें जो जितना नकल करने में कुशल होता है, वह उतना बड़ा नेता हो जाता है, उतना बड़ा ज्ञानी हो जाता है। हममें जो सबसे ज्यादा ईडियट होता है, हममें जो सबसे ज्यादा मूढ़ होता है, वह सबसे ज्यादा नकल कर पाता है। नकल करने के लिए बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है, नकल करने के लिए बुद्धिहीनता की जरूरत है। जितना बुद्धिहीन आदमी हो, उतनी नकल कर सकता है। क्योंकि उसे कोई सोच-विचार ही पैदा नहीं होता। अगर महावीर नग्न खड़े हैं, तो वह भी नग्न खड़ा हो सकता है। लेकिन महावीर की नग्नता उनका अपना फूल है, वह उनके अपने भीतर की जिंदगी है, वह उनकी अपनी इनोसेंस, अपने निर्दोष चित्त से आई हुई बात है। वह उनका अपना व्यक्तित्व है, वह नग्नता उनके फूल की अपनी सुगंध है। दूसरा आदमी नंगा खड़ा हो जाए, तो महावीर की नग्नता और इसकी नग्नता एक हो जाएगी? महावीर की नग्नता निकल रही है उनकी इनोसेंस से, उनकी अपनी निर्दोषता से, और यह आदमी नग्नता का अभ्यास करके खड़ा हो गया। यह सर्कस का आदमी है, इसकी नग्नता बिल्कुल झूठी है। और यह झूठा नंगा आदमी सब तरह की कोशिश करके बिल्कुल महावीर जैसा बन सकता है, बल्कि यह भी हो सकता है कि अगर महावीर और इसको परीक्षा में बिठाया जाए, तो यह पास हो जाए, महावीर फेल हो जाएं। यह इसलिए हो सकता है कि महावीर के लिए जो सहज है, उसमें भूल-चूक भी हो सकती हैं, इससे भूल-चूक हो ही नहीं सकतीं, इसका तो गणित का हिसाब है। इसका तो एक-एक रत्ती- रत्ती हिसाब है।
ऐसा एक दफे हो गया है, इसलिए मैं कह रहा हूं, ऐसी एक परीक्षा हो चुकी है। यूरोप में हंसोड़ अभिनेता है, चार्ली चैपलिन। ख्यातिनाम है, हजारों- लाखों उसको प्रेम करने वाले हैं सारी दुनिया में। चैपलिन का जन्म-दिन था और उसके मित्रों ने जन्म-दिन पर एक समारोह आयोजित किया। और सारे यूरोप और अमेरिका से आमंत्रित किए उन्होंने अभिनेता, जो चार्ली चैपलिन का पार्ट करें। चार्ली चैपलिन का पार्ट करने के लिए एक काम्पिटीशन रखा। दुनिया भर के अभिनेताओं को आमंत्रित किया कि चार्ली चैपलिन का पार्ट करो। जगह-जगह प्रतियोगिताएं हुईं, आखिर में सौ अभिनेता चुने गए और वे लंदन में इकट्ठे हुए। वे सौ अभिनेता चार्ली चैपलिन का पार्ट करेंगे, और उनमें जो सबसे अच्छा पार्ट कर सकेगा चार्ली चैपलिन का, ऐसे तीन अभिनेताओं को तीन बड़े पुरस्कार इंग्लैंड की महारानी देगी।
चैपलिन ने अपने मन में सोचा कि मैं भी दूसरे नाम से भरती क्यों न हो जाऊं? मैं भी दरख्वास्त लगा दूं दूसरे नाम से और प्रतियोगिता में दूसरी नकल से चला जाऊं। कौन पता लगा सकेगा? वहां तो एक से सौ आदमी हैं, मैं उसमें खो जाऊंगा। और पहला पुरस्कार तो मुझे मिल ही जाएगा, क्योंकि मैं असली चार्ली चैपलिन हूं।
उसने झूठे नाम से दरख्वास्त भर दी और प्रतियोगिता में सम्मिलित हो गया। लेकिन जब प्रतियोगिता का फल निकला, तो बड़ी मुश्किल हो गई, उसको नंबर दो स्थान मिला, नंबर एक दूसरा आदमी ले गया। वह असली चार्ली चैपलिन को नंबर दो का पुरस्कार मिला। यह तो बाद में पता चला कि चार्ली चैपलिन खुद भी थे और नंबर दो आए।

इसलिए मैंने कहा कि महावीर की नकल करने वाला साधु, क्राइस्ट की नकल करने वाला पादरी, शंकराचार्य की नकल करने वाला संन्यासी, जीत सकते हैं अगर प्रतियोगिता हो तो, उनसे जो कि मूल थे। क्योंकि यह नकल करना एक कुशलता की बात है।
यह नकल सारी दुनिया में पैदा हुई है। और इस नकल की वजह से, जो असली आदमी का जन्म होना चाहिए, वह नहीं हो पा रहा है।
तो मेरा कहना हैः नकल पर खड़ी हुई नीति खतरनाक, आत्मघाती, स्युसाइडल है। अब एक ऐसी नीति को विकसित करना है कि प्रत्येक बच्चे को खुद होने का मौका मिल सके। बच्चों से कहना है कि तुम अपने जैसे होना।
उस मां को, उस पिता को मैं सच्चा मां और पिता कहता हूं, उस गुरु को मैं सच्चा गुरु कहता हूं, जो अपने बच्चों से कहे कि तुम खुद जैसे बनने की कोशिश करना और कभी भूल कर भी किसी और जैसे मत बनना। तो तुम्हारे भीतर एक सुगंध, एक सौरभ, एक गरिमा पैदा होगी, जिसके लिए तुम जमीन पर आए हो। और जिस दिन वह सुगंध तुम्हारे भीतर पैदा होगी, उसी दिन तुम्हारे जीवन में आनंद की घड़ी होगी। उसी सुगंध के आधार पर तुम जान सकोगे उसको जो परमात्मा है, उसके बिना कोई उसे जानता नहीं। खुद को पूरी तरह से विकसित करने पर ही, खुद के जीवन की सारी कलियां जब खिल जाती हैं तभी, खुद का व्यक्तित्व जब पूरी तरह प्रफुल्लित होता है तभी--तभी जीवन में आनंद का, कृतज्ञता का, धन्यता का भाव पैदा होता है। वही धर्म है। और वैसा व्यक्ति अनजाने, अनचाहे, बिना प्रयास के शुभ होता है, मंगलदायी होता है। क्योंकि जो खुद आनंद से भर जाता है, वह दूसरे को दुख देने में असमर्थ हो जाता है।
यह मैं अंतिम बात इस चर्चा में आपसे कहना चाहता हूं। जो खुद आनंद से
भर जाता है, वह दूसरे को दुख देने में असमर्थ हो जाता है। और अनीति क्या है? दूसरे को दुख देना। और नीति क्या है? दूसरे को दुख न दे पाना। जो आदमी खुद दुखी है, वह बच नहीं सकता दूसरे को दुख देने से, दुख देगा ही। क्योंकि जो हमारे पास है, वही हम दूसरे को दे सकते हैं। जो हमारे पास नहीं है, वह हम कैसे देंगे? अगर मैं दुखी हूं, तो मैं आपको दुख ही दे सकता हूं। मैं आपको आनंद कैसे दूंगा? कहां से दूंगा? वह मेरे पास नहीं है। तो चाहे मैं कितना ही कहूं कि मैं आपको आनंद देना चाहता हूं, प्रेम देना चाहता हूं, लेकिन अगर मैं दुखी हूं, तो मैं दूंगा दुख। और अगर मैं आनंदित हूं, तो मैं चाहूं भी कि आपको दुख दूं, तो दुख न दे सकूंगा। क्योंकि जो मेरे पास है, वही तो मैं दूंगा।

अपने माहिं टटोल
दसवां प्रवचन

सत्य है अनुसंधान -- मुक्त और स्वतंत्र

इधर तीन दिनों में सत्य की खोज में और उस रास्ते पर किन बाधाओं को मनुष्य दूर करे, किन सीढ़ियों को चढ़े और किन बंद द्वारों को खोले, उस संबंध में बहुत सी बातें हुई हैं। बहुत से प्रश्न भी उस संबंध में पूछे गए हैं। आज की रात उन सारे महत्वपूर्ण प्रश्नों पर मैं चर्चा करूंगा जो शेष रह गए हैं।

सबसे पहले, अनेक प्रश्न पूछे गए हैं कि हजारों वर्षों से हजारों लोग जिन बातों को मान रहे हैं, मैं उन बातों को गलत क्यों कहता हूं? और जिन बातों को इतने लोग सही मानते हों, क्या वे बातें गलत हो सकती हैं? क्या इतनी पुरानी परंपराएं, रूढ़ियां, जिन्हें हम सदा से मानते रहे हैं, भूल भरी हो सकती हैं?

एक छोटी सी कहानी इस प्रश्न के उत्तर में कहूंगा। उस कहानी से कुछ बात ख्याल में आ सकेगी और कुछ उसके पीछे। एक राजा के दरबार में एक अजनबी अपरिचित आदमी आया। और उस आदमी ने आकर राजा को कहाः तुमसे बड़ा सम्राट पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। और न ही इतिहास को ज्ञात है कि कभी तुमसे बड़ा कोई सम्राट हुआ हो।
राजा प्रसन्न हुआ, जैसे कि कोई भी प्रसन्न होता। और उस आदमी ने कहाः लेकिन तुम जैसे महान सम्राट के लिए आदमियों जैसे कपड़े पहनना शोभादायक नहीं है। मैं तुम्हारे लिए देवताओं के वस्त्र ला सकता हूं।
राजा ने कहाः कुछ भी खर्च हो जाए, कितनी भी संपदा लगे, लाओ तुम देवताओं
के वस्त्र।
उस आदमी ने कहाः पहली बार ही पृथ्वी पर देवताओं के ये वस्त्र उतरेंगे तुम्हारे लिए, लेकिन बहुत खर्च करना होगा।
राजा के पास कोई कमी न थी, उसने खर्च का वचन दिया। राजा के सभी दरबारी चिंतित हुए, वे समझ गए कि कोई चालाक आदमी राजा को धोखा दे रहा है। देवताओं के वस्त्र! आज तक न देखे गए और न सुने गए! छह महीने का वचन दिया उस आदमी ने। और छह महीने हर दो-चार दिन में आकर दस-पांच हजार रुपये वह ले जाता रहा। देवताओं को रिश्वत खिलानी थी, और कई दफ्तर के काम निपटाने थे, तब देवताओं तक पहुंचना हो सकता था।
अंतिम तिथि आ गई, जब उसने वचन दिया था कि वह वस्त्र लेकर आ जाएगा। राजा
के दरबारी प्रतीक्षा में थे कि आखिर में तो वह फंस ही जाएगा। उस दिन उसके घर पर सिपाहियों का पहरा लगा दिया गया कि कहीं वह भाग न जाए। लेकिन वह भागने को नहीं था, ठीक समय एक बहुत खूबसूरत पेटी में बंद ताला डाल कर वह बाहर निकला। लोग निश्चिंत हुए, जरूर वह वस्त्र ले आया था। राज-दरबार में वे वस्त्र पहुंचे। सैकड़ों लोग राजा के द्वार पर इकट्ठे हो गए थे। देवताओं के वस्त्र कभी देखे न गए थे। दरबारी हैरान थे, लेकिन अब शक करने की कोई बात भी न थी, वह आदमी पेटी लेकर आ ही गया था। उसने राज-दरबार में जाकर पेटी रखी। उस दिन दरबार सजा था और महल ज्योतियों से दीपायमान किए गए थे। राजा बैठा था अपने सिंहासन पर इस खुशी में कि पहला मनुष्य होगा वह, जो देवताओं के वस्त्र पृथ्वी पर पहनेगा। उस आदमी ने पेटी का ताला खोला, ताला खोल कर वह खड़ा हुआ और उसने कहाः मित्रो, एक बात सूचना कर दूं, जो देवताओं ने मुझसे कही है। उन्होंने कहा है कि ये वस्त्र केवल उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे, जो ठीक अपने ही पिता से पैदा हुए हों। ये वस्त्र सभी को दिखाई पड़ने वाले नहीं, ये देवताओं के वस्त्र हैं। ये कोई सामान्य आदमियों के वस्त्र नहीं हैं। उसने पेटी खोली, उसने कुछ उसके भीतर से निकाला, हाथ तो उसका खाली आया
और उसने राजा से कहाः अलग कर दीजिए अपना कोट और पहनिए यह कोट देवताओं का।
राजा को भी हाथ खाली दिखाई पड़ा, दरबारियों को भी हाथ खाली दिखाई पड़ा।

लेकिन बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई थी, सारे दरबारी ताली पीटने लगे और कहने लगेः इतना सुंदर कोट हमने कभी देखा नहीं!
राजा ने सोचाः अगर मैं यह कहूं कि कोट दिखाई नहीं पड़ता, तो व्यर्थ ही पिता के ऊपर संदेह हो जाएगा। खुद तो उसे संदेह हो ही आया, क्योंकि पूरे दरबारी कह रहे थे कि ओह, अदभुत! और एक-दूसरे से आगे बढ़े जा रहे थे प्रशंसा में कोट की। राजा ने सोचाः पिता तो मेरा संदिग्ध हो ही गया, अब व्यर्थ इस बात को खोलने से क्या फायदा, इस कोट को पहन ही लो, जो कि था ही नहीं। उसने अपना कोट निकाल दिया, जो कि था; और वह कोट पहना, जो कि नहीं था। धीरे-धीरे एक-एक वस्त्र निकाले जाने लगे, राजा नंगा होने लगा। एक-एक वस्त्र पेटी से वह निकालने लगा और उसने कहाः यह पहनें पजामा, यह पहनें टोपी, यह फलां, यह ढिकां। कुछ भी न था, हाथ खाली था। राजा के अपने वस्त्र छिनने लगे, राजा धीरे-धीरे नंगा खड़ा हो गया, केवल अधोवस्त्र रह गया, अंडरवियर रह गया। अंत में उस आदमी ने निकाला अंडरवियर, हाथ में कुछ भी न था। उसने कहाः यह लें और पहनें। अब बड़ी मुश्किल आ गई। लेकिन मजबूरी थी, दरबारी ताली बजा रहे थे और कह रहे थे, ऐसे वस्त्र तो कभी देखे नहीं। और सब एक-दूसरे से आगे थे ताली बजाने में, क्योंकि कोई भी अपने पिता पर संदेह करवाने के लिए तैयार न था। प्रत्येक को दिख रहा था--हाथ खाली है, पेटी खाली है। लेकिन जब शेष सारे लोग कह रहे हों, तो कौन मुफ्त अपनी मुसीबत मोल ले! जब सब कहते हैं, तो ठीक ही कहते होंगे। जब इतने लोग कहते हैं, तो ठीक ही कहते होंगे। यह तर्क तो स्पष्ट था। राजा का अंडरवियर भी छिन गया, वह पूरी तरह नग्न खड़ा हो गया। और सारे लोगों ने तालियां बजाईं और कहाः धन्य है महाराज! ऐसे वस्त्र पृथ्वी पर कभी नहीं देखे गए!
राजा भी बोलाः मैं भी हैरान हूं! इतना आनंदपूर्ण मालूम हो रहा है इन्हें पहन कर, ऐसा कभी भी मालूम न हुआ था!
उस आदमी ने, जो इन वस्त्रों को लाया था, उसने कहाः महाराज, ये वस्त्र पहली दफा उतरे हैं, देवताओं ने कहा था, राजा का जुलूस निकाल देना।
उस राजधानी में उस दिन उस नंगे राजा का जुलूस निकला। गांव भर में खबर पहुंच गई कि वस्त्र उसी को दिखाई पड़ेंगे जिसका पिता संदिग्ध न हो। और गांव भर में सभी को वस्त्र दिखाई पड़े। रास्तों पर लोगों ने तालियां बजाईं, फूल फेंके और कहाः धन्य है! धन्य है! ऐसे वस्त्र, ऐसे वस्त्र कभी नहीं देखे गए! उस गांव में उस दिन दूसरे गांव से एक अजनबी युवक भी आया हुआ था, उसे इस घोषणा की कोई खबर न थी, वह भी भीड़ में खड़ा हुआ था। वह हैरान हो गया! वह चिल्लायाः क्या तुम सब पागल हो गए हो? यह राजा नंगा है!
लेकिन लोगों ने कहाः पागल है तू! देखता नहीं, इतने लोग जिस बात को कहते हैं, वह सच होती है। तेरे अकेले को कौन मानेगा? पागल है तू! और तुझे पता नहीं कि अनजाने ही तूने यह भी बता दिया कि तेरे पिता संदिग्ध हैं। हम सब अपने पिताओं के पुत्र हैं, हमें वस्त्र दिखाई दे रहे हैं।
उस राजधानी में जो हुआ था, पूरी मनुष्य-जाति के साथ इधर पांच-छह हजार वर्षों में हुआ है। जिन बातों की कोई सच्चाई नहीं है, वे केवल भीड़ की मान्यता के आधार पर सच होकर खड़ी हैं। और हर आदमी जानता है कि वे झूठ हैं, लेकिन कौन आदमी अपने ऊपर संदेह करवाए! जब सारे लोग कह रहे हैं कि सच हैं, तो उसे भी मान लेना होता है कि सच होंगी।
एक आदमी, एक-एक आदमी जानता है बहुत गहरे में--असत्य क्या है। लेकिन भीड़, भीड़ कहती हैः यही सत्य है। और भीड़, भीड़ की संख्या, भीड़ का बल और हजारों साल से पैदा हो जाने से भीड़ की ताकत, वह एक-एक आदमी को डरा देती है कि मैं अकेला इस सागर के सामने क्या कहूं? कौन सुनेगा? और वह कहेगा भी तो कोई सुनने को नहीं है। यद्यपि प्रत्येक दूसरे आदमी की स्थिति भी यही है, वह भी जानता है कि यह सरासर झूठ है। लेकिन झूठ भी बहुत दिन दोहराए जाने से और बहुत लोगों के दोहराए जाने से सच जैसे प्रतीत होने लगते हैं।
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः ऐसा कोई झूठ नहीं है, जिसे निरंतर दोहराया जाए तो जनता के लिए वह सच न हो जाए। और उसने लिखा है कि यह मैं कोई बातचीत और सिद्धांत नहीं कह रहा हूं, यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं। मैंने निरंतर न मालूम कितने प्रकार के झूठ बोले, लेकिन ठीक से प्रचार किया, लोगों को समझाया, और वे सच हो गए। मैं खुद ही बाद में हैरान हो गया,

इतने लोग जब मानते हैं, तो ठीक ही होगा, मुझको भी ऐसा लगने लगा। जो कि मैंने ही झूठ बोले थे, जिनकी शुरुआत मुझसे हुई थी और मैं जानता हूं कि वे नितांत असत्य बातें थीं; लेकिन जब सारा मुल्क मानने लगा, तो मुझको तक शक हुआ कि कहीं मैं भूल में तो नहीं हूं! जब इतने लोग मानते हैं, तो ठीक ही मानते होंगे।
कोई भी असत्य प्रचार के माध्यम से सत्य हो सकता है। तो जिनको आप कहते हैं, हजारों वर्षों से हम मानते हैं, आपके हजारों वर्षों से मानने से कोई चीज सच नहीं हो जाती। इससे केवल इतना पता चलता है कि हजारों वर्ष तक प्रचारित होने से कोई भी चीज सच मालूम होने लगती है। और आप कहते हैं, हम इतने लोग मानते हैं, हमारी भीड़ इतनी है, इतनी संख्या है। संख्या से सत्य का क्या संबंध? सत्य कोई डेमोक्रेटिक, कोई लोकतांत्रिक पार्लियामेंट थोड़े ही है कि वहां आपने हाथ उठा दिए तो सत्य का निर्णय हो जाएगा, कि जिनके पक्ष में ज्यादा हाथ हैं वे जीत जाएंगे।
कोई लोकतंत्र नहीं है सत्य। सत्य कोई भीड़ की आवाज और हाथों का उठाया जाना नहीं है। उसका निर्णय कोई मत से नहीं होता। पुराने होने से कोई चीज सच नहीं हो जाती है और न नये होने से कोई चीज झूठ हो जाती है। ये कोई कसौटियां नहीं हैं।
फिर मैंने आपसे यह नहीं कहा है कि जो कुछ भी आप मानते हैं, वह असत्य है। मैंने यह कहा हैः मानना असत्य है। और इन दोनों बातों में भेद है। मैंने आपसे यह नहीं कहा है कि जो कुछ आप मानते हैं, असत्य है। मैं क्यों कहूं? मुझे क्या प्रयोजन? मैंने आपसे यह कहा हैः मानने वाली बुद्धि असत्य है, विचार करने वाली बुद्धि सत्य है। जो मान लेता है और विचार नहीं करता, उसकी बुद्धि असत्य है, उसकी चित्त की दशा असत्य है। वह फिर जो भी मान ले, वह भी असत्य होगा। जिन चीजों पर आपने कभी सोचा नहीं, खोजा नहीं, उन्हें किस भांति मान लिया है? क्यों मान लिया है? सिर्फ इसलिए कि बहुत लोग मानते हैं? सिर्फ इसलिए कि बहुत लोग स्वीकार करते हैं?
यह जो स्वीकृति है, बहुत लोगों के आधार पर खड़ी हुई, यही मनुष्य के चित्त पर सबसे बड़ा बंधन है। और जिस व्यक्ति को सत्य की खोज में निकलना हो, उसे मान्यता के, बिलीफ के, विश्वास के सारे बंधन तोड़ देने पड़ते हैं। उसे अपने चित्त को मुक्त करना होता है, मान्यता से, ताकि वह जान सके। जो मानता है, वह जानने से वंचित रह जाता है। जो दूसरे पर विश्वास कर लेता है, उसकी खुद की खोज समाप्त हो जाती है। और जो इस भांति स्वीकार करता है, वह अंधा है। और अंधे के लिए सत्य का दर्शन असंभव है। आंख चाहिए विचार करने वाली, खोजने वाली, सोचने वाली, चिंतन करने वाली, स्वतंत्र, निष्पक्ष बुद्धि चाहिए। विश्वासी की बुद्धि निष्पक्ष नहीं होती। विश्वासी की बुद्धि पक्षपातग्रस्त होती है, प्रिज्युडिस्ड होती है। और जो पक्षपात से भरा है, वह कभी निष्पक्ष होकर सोच नहीं पाता। और जो निष्पक्ष होकर नहीं सोच पाता है, वह कैसे उपलब्ध हो पाएगा उसे जो कि सत्य है? यह सवाल नहीं है कि कितने वर्षों से कोई बात दोहराई जा रही है। हजारों ऐसी मूढ़ताएं हैं जिनका इतिहास हजारों वर्ष पुराना है।
जमीन को हजारों वर्षों तक गोल नहीं माना जाता था, चपटी माना जाता था। फिर एक दिन जिस आदमी ने कहा कि जमीन गोल है, लोगों ने कहा कि माफी मांग लो, ऐसी बात कभी मत कहो। हजारों वर्षों से जो बात मानी जाती रही है, वह सच है। उस आदमी को मजबूर किया अदालत में ले जाकर कि तुम माफी मांग लो, नहीं तो फांसी लगा देंगे। वह बेचारा बूढ़ा आदमी था, जिसने यह बात कही थी। सत्तर साल के ऊपर उसकी उम्र हो गई थी। उसे एक गांव से घसीट कर राजधानी तक ले जाया गया था। उसे घुटने के बल जबरदस्ती खड़ा कर दिया गया और कहाः मांग लो माफी और कहो परमात्मा से कि मैंने एक झूठी बात कही है। क्योंकि जो सब लोग मानते हैं और जो बाइबिल तक में लिखा हुआ है कि जमीन चपटी है, तो तुम कौन हो गोल बताने वाले? और बाइबिल तो भगवान के पुत्र की किताब है, तो उसमें कहीं झूठ हो सकता है? असत्य हो सकता है?
उस बेचारे ने क्षमा मांग ली। लेकिन क्षमा मांगते वक्त उसके मुंह से
एक सच्ची बात निकल ही गई। उसने कहा कि हे परमात्मा! मैं माफी मांगे लेता हूं और मैं कहे देता हूं कि जमीन चपटी है, गोल नहीं। लेकिन मेरे कहने से

क्या होता है? उसने पीछे एक बात जोड़ी, लेकिन मेरे कहने से क्या होता है, जो है वह है, जमीन तो गोल ही है।
हजारों वर्षों तक हम समझते थे कि सूरज जमीन का चक्कर लगाता है। जिस आदमी ने पहली दफा कहा कि नहीं, सूरज जमीन का चक्कर नहीं लगाता, जमीन ही सूरज का चक्कर लगाती है। तो बहुत परेशानी हो गई। हमने कहाः यह नहीं हो सकता, यह कभी नहीं हो सकता। हजारों साल तक लोग नासमझी की बात मान सकते थे क्या? हम रोज आंखों से देखते हैं कि सूरज डूबता है, ऊगता है।
लेकिन जैसे-जैसे हमारी समझ बढ़ी, हमने जाना कि नहीं, जमीन ही चक्कर लगाती है सूरज के, सूरज नहीं लगाता। और कितने ही हजारों वर्षों से यह बात कही गई हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। सूरज तब भी चक्कर नहीं लगाता था जब हम मानते थे कि चक्कर लगाता था, अब भी नहीं लगाता है।
हमारी मान्यता से सत्य प्रभावित नहीं होता, सत्य अपनी जगह है। हमारी मान्यता गलत होगी तो हम गलत और अंधेरे में भटकते रहेंगे, हमारा बोध स्पष्ट होगा तो हम सत्य के निकट पहुंच जाएंगे। सत्य हमारी मान्यता से प्रभावित नहीं होता, लेकिन हमारी मान्यता हमको प्रभावित कर देती है और अंधेरे में ढकेल देती है। क्या करें?
इन तीन दिनों में मैंने आपसे यह कहा हैः अपने विचार को निष्पक्ष, मान्यता से मुक्त, परंपरा, रूढ़ियों से ऊपर उठाना जरूरी है, अगर कोई जानना चाहता हो उसे जो कि है। अगर परमात्मा को खोजना हो, तो परमात्मा के नाम से जो-जो बताया गया है, उसे पकड़ कर बैठ रहना खतरनाक है, उसे छोड़ देना होगा। उसे छोड़ देना होगा इसलिए कि उसका अभी पकड़ना अंधेरे में पकड़ना है। और जो उसे पकड़ कर तृप्त हो जाता है, फिर वह सच्चे परमात्मा की खोज ही नहीं करता, उसे कोई जरूरत नहीं रह जाती है।
इसलिए मैंने जोर दिया है कि आपका चित्त निष्पक्ष हो, विचारपूर्ण हो, जागरूक हो, अंधा न हो, विश्वासी न हो, विवेकयुक्त हो।
अब तक कहा जाता रहा हैः विश्वास धर्म है। मैं आपसे कहता हूंः विश्वास अधर्म है। विश्वास धर्म नहीं है; धर्म है विवेक, धर्म है विचार। और चूंकि यह कहा जाता रहा है कि विश्वास धर्म है, इसी वजह से धर्म पीछे पड़ गया, विज्ञान के मुकाबले हारता चला गया। क्योंकि विज्ञान है विचार, विज्ञान विश्वास नहीं है। इसलिए विज्ञान तो रोज-रोज गति करता गया और धर्म सिकुड़ता गया, सिकुड़ता गया और सिकुड़ कर वह छोटे-छोटे डबरों में परिणत हो गया--हिंदू का डबरा, मुसलमान का डबरा, ईसाई का डबरा, जैनी का डबरा। वह सागर नहीं रह गया, वह छोटे-छोटे डबरे बन गए। और डबरे, आप जानते हैं, बहुत जल्दी सड़ जाते हैं। क्योंकि वे विराट नहीं होते, छोटे-छोटे होते हैं। तो हिंदू-मुसलमान के डबरे सब सड़ गए, उन सबसे सड़ांध उठ रही है, झगड़े खड़े हो रहे हैं, हिंसा और हत्या हो रही है।
सागर चाहिए धर्म का, डबरे नहीं चाहिए। धर्म चाहिए, हिंदू और मुसलमान
और ईसाई नहीं चाहिए। एक ऐसी दुनिया चाहिए जहां धर्म तो हो, लेकिन हिंदू और मुसलमान न रह जाएं। क्योंकि हिंदू-मुसलमान की वजह से धर्म के आने में बाधा पड़ रही है। और हिंदू-मुसलमान तब तक रहेंगे, जब तक विश्वास है। जिस दिन विश्वास की जगह विचार होगा, विवेक होगा, उस दिन दुनिया में बहुत धर्मों की कोई गुंजाइश नहीं रह जा सकती है। क्यों? नहीं रह सकती है इसलिए कि कहीं हिंदू की केमिस्ट्री अलग होती है, मुसलमान की केमिस्ट्री अलग? हिंदू की एलोपैथी अलग, जैन की एलोपैथी अलग? मुसलमान का गणित अलग, ईसाई का गणित अलग, ऐसा होता है? हो सकता है? कि हम कहें कि हम तो मुसलमान हैं, हमारा गणित अलग होगा, हम हिंदुओं जैसा गणित नहीं बना सकते। हिंदू अपना गणित अलग बनाएं, दो और दो पांच करें, हम तो दो और दो चार करेंगे या दो और दो तीन करेंगे। हम हिंदू, तुम मुसलमान, हमारा-तुम्हारा गणित एक जैसा कैसे हो सकता है? नहीं, लेकिन गणित एक है सारी दुनिया का।
लेकिन मैं आपको यह बता दूं, आज से पांच सौ साल पहले गणित भी अलग-अलग थे। हिंदुस्तान में जैनियों का गणित अलग था, हिंदुओं का गणित अलग था। कैसे पागलपन की बातें हैं! गणित और अलग-अलग हो सकते हैं? लेकिन विचार ने खोज की, विवेक ने खोज की, हम युनिवर्सल, सार्वलौकिक नियमों पर पहुंच गए। गणित एक है दुनिया का, चाहे कोई कम्युनिस्ट मुल्क में रहता हो, चाहे कोई अमेरिका

में रहता हो, चाहे कोई चीन में रहे, चाहे पाकिस्तान में, चाहे हिंदुस्तान में, गणित एक है। गणित विज्ञान बन गया, गणित विचार के द्वारा उपलब्ध हुआ, इसलिए एक हो सका।
धर्म अनेक क्यों हैं? जब जमीन के कानून एक हैं और जब पदार्थ के नियम एक हैं, तो आत्मा के नियम अनेक कैसे हो सकते हैं? जब सामान्य पदार्थ के नियम सार्वलौकिक हैं, युनिवर्सल हैं, तो परमात्मा के नियम भी अलग-अलग कैसे हो सकते हैं? वे भी युनिवर्सल हैं। लेकिन हमारे विश्वास के कारण हम उन सार्वलौकिक नियमों को खोजने में असमर्थ हैं। हमारा विश्वास हमें रोकता है। वह कहता हैः यही सत्य है। तो फिर सत्य की खोज नहीं हो पाती। जब तक जमीन पर हिंदू-मुसलमानों में बंटे हुए होंगे लोग, तब तक धर्म नहीं उतर सकता। और ये ही सारे लोग चिल्लाते हैं कि धर्म नष्ट हो रहा है, और ये ही उसके हत्यारे हैं। ये ही सारे लोग चिल्लाते हैं कि दुनिया से धर्म समाप्त हो रहा है। धर्म समाप्त होगा, क्योंकि विश्वास पर खड़ा हुआ धर्म धर्म ही नहीं है।
लेकिन क्या विचार पर धर्म खड़ा हो सकता है?
मैं कहता हूंः हां, विचार पर धर्म खड़ा हो सकता है। और जिन लोगों ने भी धर्म को जाना है--महावीर ने, बुद्ध ने, क्राइस्ट ने, मोहम्मद ने, राम ने, कृष्ण ने--उन्होंने विश्वास के आधार पर नहीं जाना है; अपनी खोज, अपना विवेक, अपनी चेतना के जागरण से जाना है। दुनिया में आज तक जब भी धर्म जाना गया है, तब वह एक अत्यंत वैचारिक खोज की तरह जाना गया है, अंधे विश्वास की तरह नहीं।
इसलिए मैं कहता हूं कि चाहे कितने ही लोग मानते हों और चाहे कितने ही हजारों साल से मानते हों, इस बात को अथॉरिटी मत बना लेना कि हजार साल से कोई मानता है, इसलिए वह सच्ची बात होनी चाहिए। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वह जरूरी रूप से झूठ है। मैं यह कह रहा हूं, आपका यह मानने का ढंग और तर्क गलत है। आप खोजें, निजी खोज करें, थोड़ा सोचें, विचार करें, और फिर जो आपको सच मालूम पड़े, वह आपके जीवन को बदल देगा। लेकिन जब तक हम खोज ही नहीं करते, सोचते ही नहीं, तब तक हम अंधों की भांति चलते हैं। और अंधों की भांति चलना मनुष्य के भीतर छिपे हुए परमात्मा का सबसे बड़ा अपमान है।
मनुष्य होने की पहली शर्त हैः स्वयं की चेतना और विवेक के प्रति दायित्व, स्वयं की स्वतंत्रता, सामर्थ्य और शक्ति के प्रति समर्पण, स्वयं के भीतर जो छिपा है उसकी अथक खोज, स्वयं में जो बीज-रूप से बैठा है उसे पूर्णता तक पहुंचाने का साहसपूर्ण प्रयत्न--मनुष्य होने में यह सब कुछ अंतर्गर्भित है। लेकिन जो लोग विश्वास से जीते हैं, वे मनुष्य नहीं, भेड़ों की भांति हो जाते हैं।
मैंने एक घटना सुनी है। एक छोटे से स्कूल में एक अध्यापक अपने बच्चों
को गणित के पाठ पढ़ा रहा था। और उसने कहा... वह गांव गड़रियों का गांव था, जहां बहुत भेड़ें थीं। तो उसने गांव के उन बच्चों को समझाने के लिए कहाः एक छोटी सी बगिया में बारह भेड़ें बंद हैं। अगर उनमें से छह भेड़ें छलांग लगा कर बाहर निकल जाएं, तो भीतर कितनी बचेंगी?
एक बच्चे ने हाथ उठाया, वह बच्चा बहुत छोटा था। शिक्षक ने कहाः हां, बोलो, आज तुमने पहली बार ही हाथ उठाया।
उसने कभी हाथ नहीं उठाया था। वह बहुत छोटा था और नया-नया स्कूल में आया था। उसने कहाः और प्रश्नों के बाबत मैं जानता नहीं था, इसलिए चुप रहा, लेकिन इस बाबत जानता हूं। आपने क्या कहा?
उसने अपना प्रश्न दोहरायाः बारह भेड़ें बंद हैं, छह भेड़ें छलांग लगा
कर बाहर निकल गईं, भीतर कितनी बचेंगी?
उस लड़के ने कहाः एक भी नहीं।
उस शिक्षक ने कहाः क्या कहते हो! तुम्हें इतना भी समझ में नहीं आता कि मैं कह रहा हूं बारह भेड़ें बंद हैं, छह बाहर निकल गईं।
उसने कहाः वह मैं नहीं समझता, गणित मुझे मालूम नहीं, लेकिन भेड़ों को मैं जानता हूं, मेरे घर में भेड़ें हैं। छह भेड़ें अगर निकल गईं, तो भीतर एक भी नहीं बचेगी। उसने कहाः गणित तो मैं नहीं जानता, लेकिन भेड़ों को मैं जानता हूं, मेरे घर में भेड़ें हैं।

भेड़ें निकल जाएंगी सभी। क्योंकि भेड़ होने में अंतर्गर्भित है अनुगमन, फॉलोइंग, दूसरे के पीछे जाना। और जो आदमी दूसरे के पीछे जाता है, वह अपने भीतर भेड़ की आत्मा को विकसित कर रहा है, आदमी की आत्मा को नहीं। जो फॉलो करता है, जो किसी का अनुयायी है, वह मनुष्य नहीं रहा। उसने अपनी खो दी गरिमा, खो दिया गौरव, खो दी आत्मा। अनुगमन नहीं, किसी के पीछे जाना नहीं, बल्कि खुद के भीतर जाना धर्म है। किसी के पीछे जाना धर्म नहीं है, खुद के भीतर जाना धर्म है। और खुद के भीतर जाने के लिए किसके पीछे जाइएगा? क्योंकि कोई आपके भीतर नहीं जा सकता, सिर्फ आप जा सकते हैं।
धर्म का संबंध अनुगमन, फॉलोइंग से नहीं है। लेकिन हम तो धर्मों के नाम
से यही देखते हैं। ये जो इतने फॉलोअर्स सारी दुनिया में हैं--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, और नये-नये खड़े होते जाते हैं--ये फॉलोअर्स तो मनुष्य होने के स्वत्व को भी खो देते हैं। जो आदमी दूसरे के पीछे जाता है, उसने अपनी आत्महत्या कर ली।
नहीं जाना है किसी के पीछे। खोजना है उसे जो मेरे भीतर है। और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि जो अपने भीतर है उसे खोज लेता है, वह उसे पा लेता है जिसकी बात राम करते हैं, कृष्ण करते हैं, महावीर करते हैं, वह उसे पा लेता है। वह उस परमात्मा पर पहुंच जाता है, जिसकी सारी चर्चा है। और जो दूसरे के पीछे चलता है, वह तो खुद पर ही नहीं पहुंच पाता, परमात्मा पर पहुंचना तो बहुत दूर है। वह दूसरे के पीछे भटकता है, भटकता है, भटकता है, खुद तक भी नहीं पहुंच पाता। और खुद तक पहुंचना, खुदा तक पहुंचने की पहली शर्त है। कौन पहुंचेगा स्वयं तक? वह जो अंधा होकर अनुगमन नहीं करता, आंख खोल कर जीता है।
इस आंख खोलने के नियम के बाबत हमने इधर तीन दिनों में बात की। कुछ और प्रश्न पूछे हैं, उनकी मैं चर्चा करूं।
तो इस प्रश्न के संबंध में आपसे कह दूंः सत्य मान्यता नहीं है। सत्य विश्वास नहीं है। सत्य अनुगमन नहीं है। सत्य है स्वयं की खोज। सत्य है विवेक और विचार। सत्य है अनुसंधान--मुक्त और स्वतंत्र। इसलिए इससे डरने की कोई जरूरत नहीं कि कितने लोग मानते हैं।
रूस में बीस करोड़ लोग हैं और उनमें से, करोड़ों में से करोड़ों लोग मानते हैं कि ईश्वर नहीं है। वहां एक बच्चा पैदा होता है, वह देखता है कि बीस करोड़ लोग मानते हैं कि ईश्वर नहीं है, वह भी मानने लगता है कि ईश्वर नहीं है। वह कहेगा कि बीस करोड़ लोग मानते हैं, तो क्या गलत मानते होंगे? बीस करोड़ लोग मानते हैं, तो क्या झूठ मानते होंगे? हमारे महापुरुष लेनिन, मार्क्स, स्टैलिन, ख्रुश्चेव मानते हैं कि ईश्वर नहीं है, तो क्या गलत मानते होंगे? इतने-इतने बड़े महापुरुष, इतना बड़ा देश, इतनी बड़ी ताकत, बीस करोड़ लोग, तो क्या झूठ मानते होंगे? तो वह बच्चा क्या कह रहा है? क्या वह बच्चा ठीक कह रहा है? अगर वह बच्चा ठीक नहीं कह रहा है, तो आप जो कह रहे हैं, वह कैसे ठीक है?
आप भी गलत कह रहे हैं, वह भी गलत कह रहा है। यह सवाल ही नहीं है कि क्या मानते हैं आप, सवाल यह है कि दूसरों को देख कर मानना गलत है। उसमें आप अपने को खो देते हैं। और मैं तो चूंकि स्वयं की खोज की बात कर रहा हूं, इसलिए खुद को खो देने की किसी भी शर्त को मानने को राजी नहीं हूं। इसलिए मैंने कहा कि यह मुक्त हो जाना जरूरी है।

इसी संबंध में पूछा है कि मैंने कहा कि ज्ञान से मुक्त हो जाना जरूरी है। यह तो बड़ी अजीब बात है!

निश्चित ही, ज्ञान से भी मुक्त हो जाना जरूरी है। किस ज्ञान से?
जो केवल शब्दों, विचारों, सिद्धांतों और किताबों से उपलब्ध होता है। उसमें कोई प्राण नहीं होते, वह एकदम निष्प्राण, थोथा, बासा, उधार, बारोड होता है। उसमें कोई प्राण नहीं होते, वह जीवन को कोई गति नहीं देता। वह वैसा ही होता है, जैसे एक आदमी तैरने के संबंध में किताबें पढ़ ले, बहुत किताबें पढ़ ले। दुनिया में जितनी किताबें लिखी हैं, पढ़ ले। दस-पांच भाषाएं सीख ले, तो दस-पांच भाषाओं में जितनी किताबें हैं, वह पढ़ ले। पचास साल

जिंदगी के खतम कर दे, और तैरने के बाबत दुनिया का सबसे बड़ा विचारक हो जाए। और भाषण उससे करवाने हों, तो तैरने के बाबत घंटों भाषण कर सके। किताबें लिख सके, युनिवर्सिटीज में व्याख्यान दे सके, तर्क कर सके, विवाद कर सके। लेकिन उस आदमी को जरा सी नदी में पानी में धक्का दे दें, तो पता चल जाए कि वह पचास वर्ष में जो जाना था, किस अर्थ का है? किस कीमत का है? किस प्रयोजन का है? वह ज्ञान था। लेकिन तैरना ज्ञान से नहीं आता, तैरना तैरने से आता है। और तैरना और ही बात है।
एक फकीर था, मुल्ला नसरुद्दीन। वह एक नदी पर कुछ दिनों तक मांझी का काम करता था। छोटी सी नाव थी, उसमें लोगों को पार ले जाता था। उस गांव का एक बहुत बड़ा विद्वान, गणितज्ञ, बहुत पुरानी भाषाओं का जानने वाला पंडित, वह एक दिन उसकी नाव पर बैठा और नदी के पार गया। बीच में सहज ही उसने नसरुद्दीन को कहाः तुम गणितशास्त्र जानते हो? वह गणितशास्त्र का पंडित था। नसरुद्दीन ने कहाः नहीं, महाराज!
उस पंडित ने कहाः तेरा चार आना जीवन व्यर्थ हो गया। फिर थोड़ी बात आगे चली, उसने कहाः तू धर्मशास्त्र जानता है?
उसने कहाः नहीं, महाराज!
उस पंडित ने कहाः तेरा और चार आना जीवन नष्ट हो गया; आठ आना बेकार हो गया। और थोड़ी बात चली, उसने कहाः तू दर्शनशास्त्र जानता है?
उस मल्लाह ने कहाः नहीं, महाराज!
वह पंडित हंसने लगा, उसने कहाः तू जीवन बेकार ही करने को उतारू है क्या? बारह आना जीवन नष्ट हो गया।
और तभी उठ आया जोर का तूफान, नाव डगमगाने लगी। तो मुल्ला नसरुद्दीन ने पूछाः पंडितजी, तैरना आता है?
उन्होंने कहाः नहीं।
मुल्ला ने कहाः आपका सोलह आना जीवन नष्ट होता है। मैं चला, मुझे तैरना आता है। बारह आना नष्ट हुआ, कोई फिकर नहीं, चार आना बचा रहेगा। लेकिन आपका सोलह आना नष्ट होता है, हुआ नहीं। मैं जा रहा हूं।
जिंदगी में भी किताबें तैरना नहीं सिखाती हैं और न परमात्मा में तैरना सिखाती हैं। परमात्मा की नदी में भी केवल वे ही लोग पार होते हैं, जो परमात्मा को जीने की कोशिश करते हैं, जानने की नहीं। जीने से जानना निकल आता है, लेकिन जानने से जीना नहीं निकलता। जो आदमी जी लेता है, वह जान लेता है; लेकिन जो जानने में लगा रहता है, वह जी तो पाता ही नहीं, जान भी नहीं पाता है। शब्द इकट्ठे कर लेता है--उपनिषद, गीता, कुरान, बाइबिल, सब उसे कंठस्थ हो जाते हैं। लेकिन शब्द तैराते नहीं, शब्द नाव नहीं बन सकते, शब्द प्राण नहीं बन सकते। शब्द बोझ बन जाते हैं उलटे, हलका नहीं करते आदमी को, और भारी कर देते हैं। जितना सिर पर किताबों का बोझ होता है, आदमी उतना और छोटा हो जाता है, बड़ा नहीं। बोझ दबा देता है।
इसलिए मैंने कहा कि शब्दों से आने वाला ज्ञान साथी नहीं है, संगी नहीं है, उस ज्ञान को छोड़ देना जरूरी है। और जो उस ज्ञान को छोड़ कर जीवन-सत्य के प्रति शांत होकर जीवन-सत्य को जीने की दिशा में गतिमान होता है, वह जान पाता है एक दिन उस सबको--उस सबको, जो शब्दों में कहा गया, लेकिन कहा नहीं जा सका है; उस सबको, जो शास्त्रों में बांधा गया, लेकिन बंध नहीं पाया; उस सब सौंदर्य को, उस सब प्रेम को, उस सब आनंद को, उस परमात्मा को, जो सब तरफ मौजूद है, वह जान पाता है जो धर्म में तैरना सीखता है।
उस तैरने की कला पर ही हम इधर तीन दिन तक बात करते थे कि वह कैसे तैरना सीख जाएं। लेकिन उस सीखने के लिए जरूरी है कि ये सारी बातें जो हमारे चित्त को बांधती हैं, छोड़ दी जाएं। ज्ञान बांधता है। ज्ञान से मेरा अर्थ? वह ज्ञान, जो हम दूसरों से सीख लेते हैं।
बंगाल में एक फकीर हुआ। छोटा उसका एक आश्रम था। उस आश्रम में नये-नये लोग आते, ठहरते, ज्ञान लेते। एक नया संन्यासी भी आया, पंद्रह दिन तक वहां रुका, उसने उस वृद्ध संन्यासी की बातें सुनीं। लेकिन उसे लगा कि उस वृद्ध संन्यासी के पास बहुत बातें नहीं हैं, थोड़ी सी ही बातें हैं। रोज-रोज उन्हीं को दोहरा देता है। पंद्रह दिन में ऊब जाना युवक का स्वाभाविक था। वह ऊब उठा और उसने सोचाः छोड़ दूं इस आश्रम को, कहीं और खोजूं। यह जगह मेरे

लिए नहीं, यह गुरु मेरे लिए नहीं, यह तो बंधी हुई कुछ थोड़ी सी बातें दोहराता है और बात समाप्त। इनको कब तक सुनूंगा? और क्या सीखूंगा? लेकिन जिस संध्या वह छोड़ने को था, उसी संध्या कोई बात घट गई और फिर उस युवक ने वह आश्रम कभी नहीं छोड़ा। क्या घट गई उस रात बात?
एक और संन्यासी आ गया कहीं से। और रात उस आश्रम के अंतेवासी इकट्ठे हुए। वह जो नया संन्यासी आया था, उसने दो घंटे तक तत्व की बड़ी गहरी बातें कीं। बड़े सूक्ष्म, बड़े बारीक सिद्धांत समझाए। जो युवक संन्यासी छोड़ना चाहता था, वह भी बैठ कर सुनता था। उसके मन में हुआः ओह! गुरु हो तो ऐसा! कितनी गहरी इसकी बातें! कितने सूक्ष्म इसके विचार! कितनी पैनी इसकी दृष्टि! कैसा कुशल इसका तर्क! धन्य हुआ, ऐसा गुरु हो, इसी के साथ चला जाऊं कल सुबह। ठीक मिल गया वह आदमी जिसकी तलाश थी। एक यह बूढ़ा है, जो कुछ पिटी- पिटाई बातें रोज दोहरा देता है, जिनमें न कोई बहुत सार है, न अर्थ। सोचा उस युवक ने कि आज इस वृद्ध संन्यासी के मन में कितनी ग्लानि न अनुभव होती होगी, अपमान! कितना इसकी प्रतिभा हीन हो गई होगी मन ही मन में! कितनी हीनता लगती होगी! इस संन्यासी की बातें सुन कर कैसा मन ही मन में पछताता और दुखी होता होगा!
बात पूरी हुई, वह नया संन्यासी रुका, रुक कर उसने सबकी तरफ देखा कि क्या प्रभाव पड़ा है! उसने उस बूढ़े संन्यासी से पूछाः महानुभाव! मैंने जो बातें कहीं, क्या सोचते हैं उस संबंध में?
वह बूढ़ा इतनी देर तक आंख बंद किए बैठा सुनता था, उसने आंख खोलीं और उसने कहाः मेरे मित्र, पहली बात तो यही कहनी है कि मैं दो घंटे से सुनता हूं, तुम तो कुछ बोलते ही नहीं।
वह बोलाः मैं नहीं बोलता था, तो इतनी देर से कौन बोलता था?
उस वृद्ध ने कहाः शास्त्र बोलते थे, किताबें बोलती थीं, तुम नहीं बोलते थे। तुम्हारा बोला हुआ एक भी शब्द नहीं है। तो तुम कहते हो कि मैंने जो कहा उसका क्या परिणाम हुआ? तो पहले तो मैं यही निवेदन कर दूं कि तुमने कुछ कहा ही नहीं, परिणाम का सवाल कहां है!
वह जो संन्यासी छोड़ कर जाना चाहता था, रुक गया, फिर कभी उस आश्रम को नहीं छोड़ा उसने। यह बूढ़ा क्या बोला? यह बोला कि तुम्हारे भीतर से किताबें बोलती हैं, तुम नहीं बोलते।
ऐसा ज्ञान, जो कहीं और से आकर हमारे भीतर बोलने लगता है, किसी भी अर्थ
का नहीं है, उसे छोड़ देना जरूरी है। और तब जागेगा वह, जो हमारे भीतर छिपा है।
दो तरह के ज्ञान हैं। एक तो ज्ञान होता है कुएं की भांति, और एक ज्ञान होता है हौज की भांति। हौज में हम क्या करते हैं? मिट्टी लाते, ईंट लाते, पत्थर इकट्ठे करते, दीवाल बनाते, हौज का घेरा बनाते हैं, फिर कहीं से पानी लाकर हौज में भर देते हैं। हौज में अपना कोई पानी नहीं होता, हौज में सिर्फ अपनी ईंट-पत्थर की दीवाल होती है। हौज में कोई पानी नहीं होता, हौज केवल दीवाल होती है ईंट-पत्थर की, घेरा होता है। लेकिन कुएं में? कुएं में काम उलटा करना पड़ता है। कुएं में सबसे पहले ईंट-पत्थर, मिट्टी, जो कुछ हो, उसे निकाल कर अलग करना पड़ता है। लाना नहीं पड़ता, अलग करना पड़ता है। हौज में लाना पड़ता है, कुएं में अलग करना पड़ता है। और जब सारी मिट्टी, पत्थर, ईंट अलग हो जाते हैं, तो नीचे से वह निकल आता है, जो जल का स्रोत है। कुएं में जल है, ईंट-पत्थर ऊपर पड़े हैं, उन्हें अलग कर देना होता है। हौज में जल नहीं है, जल लाना पड़ता है, रोकने के लिए ईंट-पत्थर की दीवाल बनानी पड़ती है। ज्ञान भी ठीक ऐसे ही दो तरह का होता है। एक हौज वाला ज्ञान होता है, जिससे पंडित पैदा होते हैं। पंडित ईंट-पत्थर इकट्ठा करके दीवाल बना लेता है अपने दिमाग में--हिंदू होने की दीवाल, मुसलमान होने की दीवाल, वेदांती होने की दीवाल, फलांवादी होने की दीवाल--सब तैयार कर लेता है दीवाल। फिर जगह-जगह से पानी ले आता है और अपनी हौज में भर लेता है। फिर जिसकी हौज जितनी बड़ी, वह उतना बड़ा पंडित हो जाता है। हालांकि सच्चाई यह है कि हौज जितनी बड़ी हो, उतनी जल्दी सड़ जाती है और उसका पानी बदबू फेंकने लगता है। इसलिए पंडितों के मस्तिष्क से जितनी दुर्गंध जीवन में फैलती है, और कहीं से फैलती नहीं। लेकिन कुएं की बात और है। जो आदमी अपने मस्तिष्क से सारी

ईंट-पत्थर को बाहर निकाल कर फेंक देता, जो अपने मस्तिष्क की सारी दीवालें गिरा देता, जिसके मस्तिष्क पर कोई सीमा नहीं रह जाती, मिट्टी-पत्थर की सारी पर्त अलग हो जातीं, उसके भीतर से आ जाता है वह स्रोत जीवन का, जल का, ज्ञान का। यह है ज्ञानी, जो कुएं की भांति अपने भीतर से ज्ञान को ले आता। वह है पंडित, जो हौज की भांति सब तरफ से ज्ञान को इकट्ठा कर लेता।
धर्म का पंडित से कोई संबंध नहीं है, यद्यपि पंडित सब तरफ से धर्म से संबंधित होने की घोषणा करते रहे हैं। धर्म से पंडित का कोई भी संबंध नहीं है। ज्ञानी का संबंध हो सकता है। पांडित्य एक कुशलता है, ज्ञान एक क्रांति है।
तो जिस ज्ञान को छोड़ने के लिए मैंने कहा, वह हौज वाला ज्ञान है। और इसलिए छोड़ने को कहा, ताकि कुएं वाला ज्ञान उपलब्ध हो सके। जो कुआं बनना चाहते हैं, उन्हें हौज अपनी मिटा ही देनी होगी। और जो कुआं बनने से रुकना चाहते हैं, उनकी मर्जी, वे अपनी हौज को और मजबूत बना सकते हैं, और ग्रंथ लाकर अपनी दीवाल खड़ी कर सकते हैं, और शब्द-सूत्र इकट्ठे करके इतना मजबूत किला बना सकते हैं कि उसके भीतर सूरज की कोई किरण कभी प्रवेश न कर सके।
यह चित्त की दशा है। इस चित्त की बंधी हुए दशा को, मैंने कहा, ज्ञान कोई छोड़े तो उसके जीवन में क्रांति आनी शुरू होती है।

एक मित्र ने और एक प्रश्न पूछा है। उन्होंने पूछा है, जैसा मैंने सुबह कहा, मैंने सुबह कहा कि अहंकार छूट जाना चाहिए। तो उन्होंने पूछा हैः यह अहंकार कैसे पैदा हो जाता है?

यद्यपि मैंने सुबह इस संबंध में कुछ बातें कही हैं, शायद वे ठीक से सुन न पाए हों, समझ न पाए हों, तो दो बातें उनसे कह देता हूं। एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे उनको बात समझ में आ जाए।
एक बहुत बड़े राजमहल के निकट पत्थरों का एक ढेर लगा हुआ था। कुछ बच्चे वहां खेलते हुए निकले। एक बच्चे ने पत्थर उठा लिया और महल की खिड़की की तरफ फेंका। वह पत्थर ऊपर उठने लगा। पत्थरों की जिंदगी में यह नया अनुभव था। पत्थर नीचे की तरफ जाते हैं, ऊपर की तरफ नहीं। ढलान पर लुढ़कते हैं, चढ़ाई पर चढ़ते नहीं। तो यह अभूतपूर्व घटना थी, पत्थर का ऊपर उठना, नया अनुभव था। पत्थर फूल कर दुगुना हो गया। जैसे कोई आदमी उदयपुर से फेंक दिया जाए और दिल्ली की तरफ उड़ने लगे, तो फूल कर दुगुना हो जाए। वैसा वह पत्थर जमीन पर पड़ा हुआ, जब उठने लगा राजमहल की तरफ, तो फूल कर दुगुना हो गया। आखिर पत्थर ही ठहरा, अकल कितनी, समझ कितनी, फूल कर दुगुना वजनी हो गया--ऊपर उठने लगा! नीचे पड़े हुए पत्थर आंखें फाड़ कर देखने लगे। अदभुत घटना घट गई थी! उनके अनुभव में ऐसी कोई घटना न थी कि कोई पत्थर ऊपर उठा हो। वे सब जयजयकार करने लगे, धन्य-धन्य करने लगे। हद्द हो गई, उनके कुल में, उनके वंश में ऐसा अदभुत पत्थर पैदा हो गया, जो ऊपर उठ रहा है!
और जब नीचे होने लगा जयजयकार और तालियां बजने लगीं, और हो सकता है पत्थरों में कोई अखबारनवीस हों, जर्नलिस्ट हों, उन्होंने खबर छापी हो; कोई फोटोग्राफर हों, उन्होंने फोटो निकाली हो; कोई चुनाव लड़ने वाला पत्थर हो, उसने कहा हो, यह मेरा छोटा भाई है, जो ऊपर जा रहा है। कुछ हुआ होगा नीचे, वह ज्यादा तो मुझे पता नहीं विस्तार में, लेकिन नीचे के पत्थर बहुत हैरान होकर देखने लगे, जयजयकार चिल्लाने लगे। नीचे की जयजयकार उस ऊपर के पत्थर को भी सुनाई पड़ी। जयजयकार किसको सुनाई नहीं पड़ जाती है? बड़ा मजा है, जो जयजयकार कभी नहीं होती, वह भी सुनाई पड़ जाती है; तो जो होती है, वह तो सुनाई पड़ ही जाएगी। वह उसे सुनाई पड़ गई, वह और फूलने लगा। उसने चिल्ला कर कहा कि मित्रो! घबड़ाओ मत, मैं थोड़ी आकाश की यात्रा को जा रहा हूं। उसने कहाः मैं जा रहा हूं आकाश की यात्रा को, ताकि जान सकूं कि क्या है रहस्य इस आकाश का? और लौट कर तुम्हें बता सकूं।
गया, महल की कांच की खिड़की से टकराया। तो पत्थर टकराएगा कांच की खिड़की
से तो स्वाभाविक कि कांच चूर-चूर हो जाए। इसमें पत्थर की कोई बहादुरी नहीं है। इसमें केवल कांच का कांच होना और पत्थर का पत्थर होना है। इसमें कोई कांच की कमजोरी नहीं है और पत्थर की बहादुरी नहीं है। कांच का कांच होना,

पत्थर का पत्थर होना है। पत्थर टकराया, कांच टूट कर चकनाचूर हो गया। लेकिन पत्थर खिलखिलाया और हंसा, जैसे कि नेता अक्सर खिलखिलाते और हंसते हैं। और उस पत्थर ने कहाः कितनी बार मैंने नहीं कहा कि मेरे रास्ते में कोई न आए, नहीं तो चकनाचूर हो जाएगा। वह वही भाषा बोला जो राजनीति की भाषा है--जो मेरे रास्ते में आएगा, चकनाचूर हो जाएगा। देखा अब अपना भाग्य, चकनाचूर होकर पड़े हो!
और वह पत्थर गिरा महल के कालीन पर, बहुमूल्य कालीन बिछा था। थक गया था पत्थर, लंबी उसने यात्रा की थी। सड़क की गली से महल तक की यात्रा कोई छोटी यात्रा है! बड़ी थी यात्रा, जीवन-जीवन लग जाते हैं--गली से उठते, महल तक पहुंचते। थक गया था, पसीना माथे पर आ गया होगा, गिर पड़ा। कालीन पर गिर कर उसने ठंडी सांस ली और कहाः धन्य, धन्य हैं ये लोग! क्या मेरे पहुंचने की खबर पहले ही पहुंच गई कि उन्होंने कालीन बिछा रखा है? और कितने अतिथि- प्रेमी और कैसे स्वागत-सत्कार के प्रेमी, महल बना कर रखा मेरे लिए? क्या पता था कि मैं आ रहा हूं? ठीक जगह खिड़की बनाई, जहां से मैं आने को था! ठीक-ठीक सब किया, कोई भेद न पड़ा, एक इंच मैं चूका नहीं। जो मेरा मार्ग था आने का, वहां खिड़की बनाई। जो मेरा मार्ग था विश्राम का, वहां कालीन बिछाए। बड़े अच्छे लोग हैं।
और यह वह सोचता ही था कि राजमहल के नौकर को सुनाई पड़ी होगी आवाज टूट जाने की कांच की, वह भागा हुआ आया, उसने उठाया पत्थर को हाथ में। पत्थर तो, पत्थर तो, हृदय गदगद हो उठा। उसने कहाः आ गया मालूम होता है मकान का मालिक, स्वागत में हाथ में उठाता है, प्रेम दिखलाता है। कितने भले लोग!
और फिर उस नौकर ने पत्थर को वापस फेंका। तो उस पत्थर ने मन में कहाः वापस लौट चलें, घर की बहुत याद आती है, होम सिकनेस मालूम होती है।
वह वापस गिरने लगा अपनी ढेरी पर, तो नीचे तो आंखें फाड़े हुए लोग बैठे थे। उनका मित्र, उनका साथी गया था आकाश की यात्रा को, चंद्रलोक गया था, वह लौट कर आया था। वह गिरा नीचे, फूलमालाएं पहनाई गईं, कई दिन तक जलसे चले, कई जगह उदघाटन हुआ और न मालूम क्या-क्या हुआ। और उन पत्थरों ने पूछा कि क्या- क्या किया? उसने अपनी लंबी कथा कहीः मैंने यह किया, मैंने यह किया, मेरा ऐसा स्वागत हुआ, ऐसी-ऐसी जगह मेरा सत्कार हुआ, इतने-इतने शत्रु मरे। कई चीजों का गुणनफल किया उसने। एक कांच मारा था, कई कांच बताए। एक महल में ठहरा था, कई महलों में ठहरा हुआ बतलाया। एक हाथ में गया था, अनेक हाथों में पहुंचने की खबर दी। जो बिल्कुल स्वाभाविक है, आदमी का मन। आदमी का मन जैसा करता तो पत्थर का मन तो और भी ज्यादा करेगा। और तब उसके पत्थरों ने कहाः मित्र, तुम अपनी आत्मकथा जरूर लिख दो, हमारे बच्चों के काम आएगी। ऑटोबायोग्राफी लिखो, क्योंकि सभी महापुरुष लिखते हैं, तुम भी लिखो।
वह लिख रहा है। जल्दी ही लिख लेगा तो आपको पता चलेगी, खबर हो जाएगी। क्योंकि उसके पहले भी और पत्थरों ने लिखी हैं और उनको आप अच्छी तरह पढ़ते रहे हैं। वह भी लिखेगा, उसकी भी पढ़ेंगे।
इस पत्थर पर आपको हंसी क्यों आती है? इस बेचारे में कौन सी खराबी है?
यह आदमी से कौन सा भिन्न है? और इस पत्थर पर आप हंसते हैं, तो कभी अपने पर हंसे हैं? इस पत्थर की इस बात को सुन कर आप हंसते हैं कि मैं जा रहा हूं यात्रा को, लेकिन हम खुद क्या हैं? क्या हम भी किन्हीं अनजान हाथों के द्वारा फेंके गए पत्थर नहीं? हमें पता है, हम क्यों जन्म लेते हैं? हमें पता है, हम कैसे पैदा हो जाते हैं? हमें पता है, कौन हमें फेंक देता, कौन अनजान ताकत, कौन अनजान हाथ, कौन अपरिचित फेंक देता है जीवन में?
लेकिन हम कहते हैंः मेरा जन्म! मेरा जन्म-दिन है! आपसे पूछा था किसी ने
कि आप किस जन्म-दिन पैदा होना चाहते हैं? आपसे कोई तारीख, तिथि, कोई पूछी थी कि आप कब पैदा होना चाहते हैं, जो आप कहते हैं, मेरा जन्म-दिन? आपका कोई निर्णय है इसमें? आपकी कोई च्वाइस? आपसे किसी ने पूछा था, आप पैदा भी होना चाहते हैं कि नहीं होना चाहते? न आपसे किसी ने पूछा कि आप पैदा होना चाहते हैं, न पूछा दिन, न कोई तारीख। लेकिन कहते हैंः मेरा जन्म-दिन!
यह "मेरा" बड़ा अजीब है। कहते हैंः मेरी जवानी! आप ले आए इस जवानी को?
यह आपके हाथ का कोई काम है? यह आपका प्रयत्न है कोई कि आप जवान हो गए? क्या

आप चाहते कि जवान न हों, तो आप रुक जाते जवान होने से? नहीं, लेकिन कहते हैंः मेरी जवानी! यह "मैं" कहां आ गया इस जवानी में?
कहते हैंः मेरी जिंदगी! क्या है जिंदगी आपकी? कौन सी चीज आपकी है इस जिंदगी में? कहते हैंः मेरा शरीर! क्या है आपका इसमें? इस शरीर में मेरे जो-जो कण हैं, न मालूम कितने शरीरों में रह चुके हैं। मुझसे पहले न मालूम इन कणों ने न मालूम कितने शरीरों में की हैं यात्राएं--पशुओं में, पक्षियों में, पौधों में। रोज अन्न खा रहे हैं, वह आपके शरीर में जाकर आपका हिस्सा बन रहा है, लेकिन कल तक किसी पौधे का हिस्सा था, किसी पौधे का शरीर था। जो श्वास मैं ले रहा हूं, कहता हूंः मेरी श्वास! यहां हम इतने लोग बैठे हैं, जो आप श्वास अभी ले रहे हैं, वह आपके पड़ोसी बहुत थोड़ी देर पहले ले चुके हैं, वह अब आपको मिल गई, थोड़ी देर बाद दूसरे को मिल जाएगी। आपका क्या है? आप कहां आते हैं? कहते हैंः मैं लेता हूं श्वास। लेकिन आपको पता है, अगर श्वास न आएगी तो आप ले सकेंगे? आप मालिक हैं श्वास के?
नहीं; जिंदगी फेंके हुए पत्थर की कथा है। लेकिन हम हर काम से अपने मैं
को जोड़ लेते हैं, जो बिल्कुल झूठा है, जिसकी कोई जगह नहीं, जो बिल्कुल सब्स्टेंशियल नहीं है, जिसका कोई पदार्थगत कुछ भी सत्ता नहीं है, जो है बिल्कुल शैडो, है छाया की भांति झूठा।
उस पत्थर की कथा पर हंस गए थे, अपनी जिंदगी को थोड़ा उसकी जगह रख कर सोच लेना, तो पता चल जाएगा कि अहंकार कैसे पैदा हो गया है।
तो मैं इसमें क्या कहूं कि कैसे पैदा हो गया है? थोड़ा खोज लेना, तो पता
चल जाएगा कि नासमझी है, भूल है, ख्याल है, छाया है, सत्य कुछ भी नहीं है उस अहंकार में। और यह दिख जाए, तो अहंकार छोड़ना नहीं पड़ता। यह दिख जाए, तो अहंकार गया। अगर उस पत्थर को यह दिख जाए कि वह कैसी नासमझी की बातें कह रहा है, तो बात खतम हो गई। फिर और कौन सी कथा रह गई?
तो जिस आदमी को अपने जीवन पर थोड़ी भी दृष्टि है, और जो अपने जीवन की कथा को थोड़ा आंकता है, देखता है, खोजता है, वह अनुभव कर लेता है कि अहंकार से ज्यादा असत्य और कुछ भी नहीं है। और जो यह जान लेता है कि अहंकार असत्य है, इसके साथ ही, इसके साथ ही, तत्क्षण, वह यह भी जान लेता है कि परमात्मा सत्य है। परमात्मा का सत्य होना अहंकार के असत्य होने के सिक्के का दूसरा पहलू है। जिसने यह जान लिया कि अहंकार असत्य है, उसने यह भी जान लिया कि परमात्मा सत्य है। और जो यह समझता है कि अहंकार सत्य है, वह अनिवार्य रूप से यह भी जानता है कि परमात्मा असत्य है।
तो जब तक अहंकार है भीतर, तब तक करो पूजा, करो प्रार्थना, पढ़ो मंत्र-तंत्र और जो भी उलटा-सीधा करना हो करो, कोई फर्क नहीं पड़ेगा, परमात्मा से कोई संबंध नहीं हो सकता। वह अहंकार बाधा है। वह अहंकार पूजा को भी पी जाएगा, अपना भोजन बना लेगा कि मैं पूजा करने वाला हूं! वह प्रार्थना को भी पी जाएगा और अपना भोजन बना लेगा और कहेगाः मैं प्रार्थना करने वाला हूं! तुम प्रार्थना करने वाले हो? मैं हूं असली प्रार्थना करने वाला इस गांव में! वह अहंकार सब पी जाएगा और हर चीज को अपने आस-पास जोड़ लेगा और कहेगा, मैं इससे मजबूत हो रहा हूं।
इसलिए धर्म की सबसे बुनियादी और आधारभूत क्रांति अहंकार के विसर्जन
से प्रारंभ होती है और परमात्मा की उपलब्धि पर समाप्त होती है। इस अहंकार के विसर्जन के लिए बहुत कुछ मैंने आपसे सुबह बातें की हैं। लेकिन यह कैसे पैदा होता है, यह आप अपनी जिंदगी को खोजना, तो आपको दिख जाएगा। और मेरे कहने से तो दिखने का कोई संबंध नहीं है। इसलिए मैंने एक कहानी कह दी, और इस संबंध में कुछ भी नहीं कहूंगा। मेरे कहने से कुछ भी नहीं होगा, आप देखेंगे तो दिख सकता है। जो असत्य है, उसकी असत्यता को देख लेना कोई कठिनाई नहीं है। हम देखना ही न चाहें, तो बात दूसरी है। और हम देखना नहीं चाहते हैं। और देखना हम इसलिए नहीं चाहते हैं कि गहरे मन में हम अच्छी तरह जानते हैं कि देखा कि यह गया। इसलिए देखो ही मत, आंखें मूंदे रहो और चलते जाओ। इसलिए पूछो सबसे...
ऐसा एक दफा हुआ। रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा। गीत लिखा कि हे परमात्मा! मैं तुझे खोज रहा हूं। बहुत-बहुत वर्षों, जन्मों से मेरी खोज चलती तेरे लिए। अनेक बार थोड़ी-बहुत तेरी झलक मिली और फिर तू खो गया। लेकिन एक बार

मैंने तय कर लिया कि तुझे अब खोऊंगा नहीं, और मैं तेरा पीछा ही करने लगा। आखिर एक सुबह मैं तेरे दरवाजे पर पहुंच गया, मैं तेरी सीढ़ियां चढ़ गया, मैंने तेरे द्वार की कुंडी अपने हाथ में ले ली और मैं बजाने को ही था कि मुझे ख्याल आया कि कुंडी बज जाएगी और तू निकल आएगा, तो फिर मैं क्या करूंगा? तू मिल जाएगा, फिर मैं क्या करूंगा? मैं बहुत डर गया--फिर मैं क्या करूंगा? अब तक तो तुझे खोजता था, यह काम था। अब तक तो तुझे खोजता था, यह व्यस्तता थी। अब तक तो तुझे खोजता था, रोता था, प्रार्थना करता था, गीत लिखता था, इसमें उलझा था। लेकिन तू मिल जाएगा, तो फिर क्या करूंगा? फिर अनंत-अनंत काल तक करूंगा क्या? तो मैं डर गया, मैंने कुंडी वापस छोड़ दी और मैं धीरे-धीरे जूते खोल कर सीढ़ियों से नीचे उतर आया कि कहीं तू आवाज सुन कर निकल ही न आए। और तब से मैं तुझे फिर खोज रहा हूं, हालांकि मुझे अच्छी तरह पता है कि तेरा घर कहां है, लेकिन मैं खोजता हूं। और बड़ा मजा है, खोजता भी मैं हूं और जानता भी मैं हूं कि तू कहां मिल जाएगा। लेकिन उस जगह से बच कर निकल जाता हूं, क्योंकि डर है--अगर तू मिल गया तो फिर क्या होगा?
जिंदगी बड़ी अदभुत है! मैं आपसे यह निवेदन करता हूंः जिन चीजों को आप खोजना चाहते हैं, उन्हीं चीजों से किसी गहरे तल पर आप बचना भी चाहते हैं। अगर बचना न चाहें, तो खोज तो आज और यहीं पूरी हो सकती है। लेकिन आप बचना भी चाहते हैं, खोजना भी चाहते हैं, इससे सारी कठिनाई खड़ी हो जाती है।
अहंकार, पूछते जरूर हैं आप, यह क्या है और इसको मैं कैसे समाप्त कर दूं? लेकिन हो सकता है, यह आपका अहंकार ही पूछ रहा हो--कि बड़ा मजा आ जाए अगर मैं ऐसा आदमी बन जाऊं जिसका कोई अहंकार नहीं है। यह अहंकार ही हो सकता है पूछ रहा हो--कि बहुत मजा आ जाए अगर मैं ऐसा आदमी बन जाऊं जिसका कोई अहंकार नहीं है। तो तरकीब पता लगा लें कि अहंकार खोने की तरकीब क्या है? यह हो सकता है अहंकार ही पूछ रहा हो। और तब बड़ी मुश्किल हो जाएगी। तब अहंकार से छूटने का कोई रास्ता न रह जाएगा। हमारा मन बड़े अजीब और अनूठे रास्तों पर काम करता है। लेकिन अगर मन सीधा और साफ काम करे, जो कि वह कर सकता है, तो जिंदगी बड़ी सरल है और सत्य बहुत निकट है।

एक छोटी सी बात, जो पूछी है, और फिर मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा।
एक मित्र ने पूछा है कि आप बार-बार कहते हैं कि परमात्मा को पाना सरल है, तो फिर सारे लोग पा क्यों नहीं लेते? कितने थोड़े से लोगों को तो शायद परमात्मा मिलता हो! और उसका भी कोई पक्का तो नहीं है कि उनको मिलता है कि नहीं मिलता! क्योंकि कौन तय करे? तो उन्होंने पूछा है कि आप कहते हैं बार-बार कि सरल है, सरल है, फिर मिलता क्यों नहीं है?

जरूर जब मिलता नहीं है, तो ख्याल आता है, कठिन होना चाहिए। लेकिन न मिलने के पीछे हमेशा कठिनाई ही नहीं होती है। बल्कि बड़ा मजा है, अगर परमात्मा का पाना कठिन होता, तो बहुत से लोग कभी का परमात्मा को पा लेते। क्योंकि जो चीज कठिन होती है, उसको पाने में अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है।
हिमालय पर एवरेस्ट की चोटी है, और छोटी-छोटी हजारों चोटियां हैं। एवरेस्ट पर हजारों लोग चढ़ने जाते हैं, छोटी-छोटी चोटियों की कोई फिक्र नहीं करता, उनको चढ़ना बहुत सरल है, उनको कोई देखता ही नहीं। लेकिन दुनिया भर से पहाड़ों पर चढ़ने वाले पर्वतारोही गौरीशंकर पर, एवरेस्ट पर चढ़ना चाहते हैं। पचास सालों में न मालूम कितने लोग मर गए उसको चढ़ने में। मैं बहुत हैरान हुआ! मैं सोचने लगा, छोटी-छोटी पहाड़ियां हैं, इन पर क्यों नहीं चढ़ते? इन पर चढ़ना तो बड़ा सरल है। इस पर क्यों चढ़ते हैं, जिस पर चढ़ना कठिन है? और तब मुझे दिखाई पड़ा कि कठिन पर चढ़ने में अहंकार को रस आता है--इतनी कठिन चीज और मैंने जीत ली!
तो जो कठिन है, आदमी का अहंकार उस तरफ जाता है; और जो सरल है, उस तरफ नहीं। दुनिया को जीतना बहुत कठिन है, इसलिए हर आदमी दुनिया को जीतना चाहता है। परमात्मा को जीतना बहुत सरल है, अहंकार के लिए कोई चैलेंज वहां नहीं है, कोई चुनौती वहां नहीं है, इसलिए कोई आदमी उस तरफ आंख नहीं उठाता।

कुछ लोग कभी-कभी आंख उठाते भी हैं, तो वे तभी उठाते हैं जब कोई परमात्मा की कठिनाई बताने वाला मिल जाए और वह कहे कि जन्म-जन्म कोशिश करनी पड़ेगी, शीर्षासन करना पड़ेगा, भूखे मरना पड़ेगा, घर छोड़ना पड़ेगा, कोड़े मारना पड़ेंगे अपने को, आंखें फोड़ना पड़ेंगी, कांटे छिदाने पड़ेंगे, धूप में पड़े रहना पड़ेगा, तब कहीं जन्म-जन्म की कोशिश से मिलेगा परमात्मा। तो फिर कुछ लोगों को बात जंच जाती है, कि तो फिर खोजना चाहिए। क्योंकि अहंकार को रस आना शुरू हो जाता है। अगर बात कठिन है, तो चलो देख लें एक मौका, इसको भी जीत कर देख लें। इसीलिए दुनिया में धर्म के नाम पर कठिन से कठिन तरकीबों की ईजाद हुई, यह मनुष्य के मन का शोषण है, अहंकार का शोषण है, और कुछ भी नहीं। मैं तो कहता हूंः परमात्मा को पाना बहुत सरल है। अगर अहंकार न हो, तो
आप इसी वक्त पा सकते हैं। लेकिन अहंकार को सरल बात जंचती ही नहीं, उसको जंचती है कठिन बात, दुरूह, दुर्गम, अगम हो, तो फिर चलो। तलवार की धार पर चलना हो, तो अभी अहंकारी को जंचता है कि चलो आ जाएं, चल कर देख लें। लेकिन कोई कहे कि घर में सोने जैसा सरल है, तो फिर तो बात जंचती नहीं। लेकिन मैं कहता हूंः सरल है। और न पाने का कारण यह है कि हम कठिन की खोज करते हैं, इसलिए परमात्मा को नहीं उपलब्ध हो पाते।
एक छोटी सी कहानी, अपनी चर्चा मैं रात की पूरी करूं।
एक बार बहुत पुराने जमानों में, एक बड़े साम्राज्य में, उस राज्य का बड़ा वजीर मर गया। जो बड़ा महामंत्री था, उसकी मृत्यु हो गई। उस राज्य का नियम था कि देश भर में सबसे बुद्धिमान आदमी को खोज कर वे मंत्री बनाते थे। तो तीन महीने लग गए, सारे मुल्क में अनेक तरह की प्रतियोगिताएं हुईं बुद्धिमान आदमी को खोजने के लिए। एक वाइ.जमैन खोजना था। फिर परीक्षाएं होते-होते, चुनाव होते-होते, छंटनी होते-होते अंत में तीन आदमी बच रहे, जो पूरे देश में सर्वाधिक बुद्धिमान समझे गए। अब अंतिम फैसला होने को रह गया, इन तीन में से एक चुना जाना था। अंतिम परीक्षा का दिन आ गया। सारा देश उत्सुक था, वे तीनों लोग भी उत्सुक थे कि क्या होगा? जीवन-मरण का सवाल था। वे सब भांति तैयार होकर आए थे कि कोई भी परीक्षा हो।
परीक्षा का दिन आ गया, कल सुबह परीक्षा होगी। आज सांझ से वे उत्सुक थे
कि किसी भांति कल का पर्चा पता चल जाए, जैसा कि सभी परीक्षार्थी उत्सुक होते हैं। और ऐसा नहीं है कि परीक्षार्थी आज ही पर्चा पता चलाने के लिए उत्सुक हो गए हैं, हमेशा से उत्सुक हैं, वे भी उत्सुक हो गए।
लेकिन वे हैरान हुए, पर्चा पता चलाने की जरूरत ही न आई, गांव में दीवाल-दीवाल पर पर्चा लगा हुआ था, दुकान-दुकान पर उसकी चर्चा थी कि कल यह परीक्षा होने को है। वे बाजार में गए तो उन्हें पता चला कि यह होने को है परीक्षा। हर आदमी को पता था पूरे गांव में कि एक गणित की पहेली से खुलने वाला ताला है। उस ताले को लगा कर तीनों व्यक्तियों को कमरे के भीतर बंद कर दिया जाएगा और उनको कहा जाएगा कि जो सबसे पहले इस ताले को खोल कर बाहर आता है, वही वजीर है।
तीनों को पता चल गया। उनमें से दो तो फौरन भागे हुए बाजार गए, पुस्तकालयों में गए और उन्होंने किताबें खोजीं, शास्त्र खोजे तालों के संबंध में, गणित-पहेलियों के संबंध में कि न मालूम क्या होगा? किताबें ले आए, रात भर पढ़ते रहे, रात भर घोखते रहे, याद करते रहे, हिसाब लगाते रहे। जिंदगी-मरण का सवाल था, सोने का कोई सवाल भी नहीं था। लेकिन एक आदमी उनमें बड़ा अजीब था, वह सांझ से ही चादर तान कर सो गया। उन दो लोगों ने समझा कि इसने मालूम होता है ड्राप ले लिया, यह परीक्षा में बैठेगा नहीं, डर गया, घबड़ा गया, क्या हो गया! यह तैयारी नहीं कर रहा है कोई! रात भर वे तो तैयारी करते रहे, वह आदमी सोता रहा। दो-चार दफा उन्होंने उसे उठाया भी, तो उसने कहाः आज तो मुझसे बात ही मत करो, तुम अपनी तैयारी करो, मुझे अपनी करने दो। वे बहुत हैरान हुए कि यह कौन सी तैयारी हो रही है?
सुबह हो गई, वह आदमी तो रोज पांच बजे उठ आता था, आज तो वह सात बजे उठा।
वे लोग समझे कि या तो इसका मस्तिष्क घबड़ाहट से, शॉक से कुछ गड़बड़ हो गया। उन्होंने रात भर इतनी तैयारी की, रात भर सोए नहीं एक क्षण, सब भांति से याद किया, याद किया। सुबह वे इस हालत में पहुंच गए कि अगर उनसे कोई पूछता कि दो और दो कितने होते हैं, तो वे नहीं बता सकते थे। क्योंकि रात भर जिन्होंने

इतनी तैयारी की हो, उनका दो और दो का ख्याल भी भूल जाता है। मस्तिष्क बहुत बेचैन, अशांत, तनाव से भर गया था, जैसे सभी परीक्षार्थियों का हो जाता है।
सब उन्हें याद होता है, लेकिन परीक्षा-भवन में कुछ भी याद नहीं रह जाता। वही हालत उनकी हो गई थी।
वे तीनों चले। वे दो तो डगमगाते पैर, बेचैन, परेशान, उनके मन में तो गणित चल रहे हैं, और वह एक गीत गुनगुनाता हुआ। उन दोनों को बहुत गुस्सा भी आया कि तुम यह क्या गीत गा रहे हो? यह कोई वक्त है गीत गाने का?
उसने कहाः तुम अपनी तैयारी करो, मुझे अपनी करने दो। मैं तुम्हें बाधा नहीं देता, तुम कृपा करके मुझे बाधा न दो।
वे तीनों पहुंचे। अफवाह सच थी। राजा ने उन्हें एक कक्ष में बंद कर दिया। द्वार पर एक अजीब सा ताला लटका हुआ है, जिस पर गणित के चिह्न और अंक बने हैं। और राजा ने कहाः मित्रो, यह ताला है, गणित की एक पहेली, पहेली ऊपर बनी है। इसे तुम अगर हल कर पाओ, तो ताला हल करते ही खुल जाएगा। जो आदमी हल करके बाहर निकल आएगा, वह वजीर हो जाएगा, वह चुन लिया जाएगा। तो अब तुम हल करो, मैं जाता हूं।
उन तीनों को छोड़ कर द्वार को बंद करके वह बाहर चला गया। वे दो व्यक्ति, जिन्होंने रात भर तैयारी की थी, उन्होंने जल्दी से अपने कपड़ों के भीतर हाथ डाले और छिपी हुई किताबें बाहर निकाल लीं। कोई यह न सोचे कि आजकल के विद्यार्थी ऐसा करते हैं, पहले के विद्यार्थी भी ऐसा ही करते थे। जो भी समझदार है, वह यह करेगा ही। समझदारी चालाकी ले ही आएगी। वे दो समझदार थे, एक नासमझ था, न वह कोई किताबें लाया था, न कुछ। वह एक कोने में आंख बंद करके बैठ गया। उन्होंने अपनी किताबें खोल लीं, ताले पर अंक देखे और अपना हिसाब लगाने में लग गए। बड़ा अजीब सा उलझन भरा सवाल था, जल्दी हल करना था, एक सेकेंड की फुर्सत न थी। तो जितनी तेजी से लग गए वे हल करने में, उतना ही मामला और उलझता चला गया, क्योंकि अशांत आदमी कहीं कुछ सुलझा पाता है! पहेली और बड़ी पहेली होती गई, किताबों ने और सहारा दे दिया पहेली को बड़ा करने में। किताब खोलते थे, दूसरी किताब खोलते थे, अंक देखते थे, उसके अंक उतारते थे मन में, सब काम चल रहा था, वजीर होने की जल्दी चल रही थी, कहीं कोई दूसरा न निकल जाए, यह घबड़ाहट चल रही थी। ऐसी विक्षिप्त हालत थी! कहीं कोई पहेली हल होनी थी?
वह तीसरा आदमी एक कोने में आंख बंद करके बैठ गया। उन्होंने एक-दो बार उससे भी कहाः महानुभाव! कुछ तैयारी करो, क्या कर रहे हो?
उसने कहाः तुम अपनी करो, मुझे अपनी करने दो।
वे तो अपने गणित सुलझाने में लग गए। वह जो आदमी चुपचाप बैठा था मौन, वह क्या कर रहा था रात भर से? वह मौन होने की कोशिश कर रहा था। क्योंकि जिंदगी में कोई भी सवाल हल करना हो, तो मौन हो जाना जरूरी है, साइलेंट हो जाना जरूरी है। क्योंकि जितना होगा चित्त शांत, उतनी सामर्थ्य होगी चित्त की देखने की, पहचानने की, प्रवेश की, विचार की, खोज की। तो पूरी रात से कोशिश कर रहा था कि सब भांति शांत हो जाए, मन में कोई उलझन न रह जाए, कोई विचार न रह जाए, अब भी वह यही कर रहा था। फिर आखिर उसका मन हो गया शांत और वह उठा और दरवाजे पर गया, उसने दरवाजा धकाया, बड़ी हैरानी की बात थी, दरवाजा लगा हुआ नहीं था, अटका था, वह बाहर निकल गया।
दो व्यक्ति अपने काम में लगे थे, उन्हें पता भी नहीं चला कि एक हममें
से बाहर निकल गया। वह तो राजा जब उसे भीतर लेकर आया, तब उनकी आंखें खुलीं। उन्होंने कहाः अरे! तुम बाहर कैसे पहुंचे? क्योंकि उनको तो कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि यह आदमी और बाहर पहुंच सकता है! इतना कठिन सवाल और ऐसा सुस्त आदमी!
राजा ने कहाः यह आदमी अदभुत है। इसने समझदारी का पहला सबूत दे दिया। अरे पागलो, पहले यह तो देख लेना था कि ताला लगा भी है या नहीं लगा है? तुम उसे खोलने की कोशिश में लग गए!
पहली बात जाननी जरूरी थी, समझदारी का पहला नियम था कि जिस सवाल को हम
हल करना चाहते हैं, देख तो लें कि वह सवाल है भी या नहीं? जो इस बात को सोचे बिना सवाल को हल करने में लग जाता है, वह क्या कभी सवाल को हल कर पाएगा? क्योंकि सवाल होता तो हल भी हो जाता, सवाल तो है ही नहीं, तो हल होगा कैसे?

इसलिए कठिन होता चला जाता है, कठिन होता चला जाता है। परमात्मा इसलिए सवाल बना हुआ है कि वह सवाल नहीं है, और जो सिद्धांतों और शास्त्रों में खोजते हैं, वे उलझते चले जाते हैं और बात कठिन होती चली जाती है। परमात्मा का द्वार बंद नहीं है, इसलिए कौन उसे खोलने की कोशिश कर रहा है? परमात्मा का द्वार खुला हुआ है, लेकिन इस खुले द्वार को देखने के लिए एक शर्त जरूरी हैः साइलेंट माइंड चाहिए, शांत मन चाहिए। वह शांत मन फौरन कह देगाः दरवाजा बंद नहीं है, उठो, देखो। तुम धक्का भी नहीं दोगे कि दरवाजा खुल जाएगा। परमात्मा तो बहुत सरल है, आदमी के शास्त्र बहुत कठिन हैं। परमात्मा
तो बहुत सरल है, आदमी की बुद्धिमत्ता बहुत जटिल है। परमात्मा तो बहुत सरल है, लेकिन उस सरलता को पहचानने वाला शांत और सरल मन हमारे पास नहीं है, एक जटिल और उलझा हुआ मन लिए हम बैठे हैं। और इस उलझे मन से हम हल करने चलते हैं। हल नहीं होगा, और उलझ जाएगा। इसलिए मैं बार-बार कह रहा हूं कि तथाकथित ज्ञान परमात्मा तक पहुंचने नहीं देता।
शांत मन है उसके लिए द्वार। शून्य मन है उसके लिए द्वार। और जो शांत
और शून्य हो जाता है, वह जान लेता है सब--सब जो जीवन में अर्थपूर्ण है, सब जो जीवन में आनंदपूर्ण है, सब जो जीवन को आलोक से भर देता है और अमृत से, सब जहां मृत्यु समाप्त है और अनंत का उदघाटन है। सरल है बहुत। बहुत है सरल, अत्यंत है सरल, एकदम है सरल, क्योंकि है स्वरूप, क्योंकि वही है जो मेरा है। कठिन कैसे हो सकता? और परमात्मा कठोर नहीं कि उसके द्वार हों बंद; द्वार हैं खुले। लेकिन कोई जाए उन द्वारों के निकट।
जाने की ही बात हम इधर तीन दिन किए। यह अंतिम दिन है, अंतिम दिन अब हम अंतिम बार उस शून्य में बैठने की कोशिश करेंगे, जो उस आदमी ने की थी उस कमरे में, अकेले में बैठ गया था चुपचाप, मौन। पहेली नहीं पकड़ी थी उसने हल करने को, अपने मन को पकड़ा था शांत करने को। ये दो अलग बातें हैं। पहेली को पकड़ लें हल करने को, मन हो जाएगा अशांत। और अशांत मन कोई पहेली को सुलझा न पाएगा। उसने पकड़ा मन को, पहेली को नहीं। उसने पकड़ा मन को कि कर लूं इसे शांत, फिर देख लूंगा पहेली को। शांत मन के सामने कोई पहेली कभी नहीं है। पूछते हैं बार-बार प्रश्न आपः ईश्वर क्या है? कहां है? स्वर्ग क्या है? नरक क्या है? पहेलियों को पकड़ रहे हैं, मन को नहीं पकड़ रहे हैं। पूछते हैं कि पुनर्जन्म है या नहीं? पूछते हैंः कर्मों का कोई संबंध है या नहीं? जमाने भर के न मालूम कहां-कहां के प्रश्न पूछते हैं। पहेलियों को पकड़ते हैं, लेकिन उस मन को नहीं पकड़ते, जो शांत हो जाए तो जिसके समक्ष कोई पहेली नहीं रह जाती। पहेलियों को पकड़िए, पंडित हो जाइएगा। शास्त्र पढ़िए, गुरुओं के पास जाइए, सेवा करिए उनकी, वे खूब ज्ञान देंगे आपको। और उनका ज्ञान आपकी मृत्यु बन जाएगा, आपका बंधन, आपका बोझ। और आपका चित्त भूल जाएगा इस बात को जो कि बेसिक थी, जो कि आधारभूत थी, वह यह कि पहेली को पकड़ना है या मन को? मैं जमाने भर की पहेलियां सुलझाने जाऊं या इस मन को सुलझा लूं?
मेरा कहना हैः जो मन को सुलझा लेता है, उसके लिए सब पहेलियां सुलझ जाती हैं। सुलझा हुआ मन, सुलझा हुआ जगत; सुलझा हुआ मन, सुलझा हुआ जीवन; सुलझा हुआ मन, तो फिर कोई बाधा नहीं रह जाती परमात्मा तक उठने में, वह सुलझा हुआ मन यात्रा कर लेता है।
उस आदमी की तरह थोड़ी देर हम भी एक कोने में चुप होकर बैठेंगे। ताले के संबंध में बिल्कुल मत सोचना, सोचना ही मत। और मत सोचना यह कि गीता क्या कहती है उस ताले को खोलने के बाबत? और कुरान क्या कहता है? और महावीर क्या कहते हैं? बुद्ध क्या कहते हैं? कृपा करो, इनको छोड़ दो। ताले को छोड़ दो, उसके साथ इन सबके दिए उत्तर भी छोड़ दो। क्योंकि जो ताले को खोजता है, वह इनके उत्तर खोजता है। खोजो उस मन को, जो भीतर है, करो उसे शांत, होने दो उसे मौन, हो जाने दो उसे शून्य और फिर देखो। तो फिर दिखाई पड़ेगा कि सिवाय परमात्मा के और कुछ भी नहीं है।
इतनी ही बात। और चूंकि अंतिम दिन है और इधर तीन दिनों में न मालूम क्या-क्या बातें मैंने आपसे कहीं, तो विदा के इस क्षण में जरूरी है कि ये दो-तीन बातें आखिर में और आपसे कह दूं। एक तो मैंने ऐसी बहुत सी बातें कहीं जिससे आपके मन को चोट पहुंची होगी, लेकिन मैं क्षमा नहीं मांगूंगा। क्योंकि मैंने जान कर ही वह चोट पहुंचाई है, कोई अनजाने में नहीं। दुख तो

इतना ही रह जाता है कि चोट थोड़ी ही पहुंचा पाता हूं, पूरी नहीं पहुंचा पाता, क्योंकि शब्द बहुत आदमी के कमजोर हैं और तलवार नहीं बन सकते। लेकिन अगर बन जाएं और आपके हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर दें, तो शायद आपकी जिंदगी में कुछ हो जाए। क्योंकि जड़ता हो गई है घनी, सो गए हैं गहरे, अब तो कोई बहुत क्रूरता से और कठोरता से न हिलाए, तो हिलना भी संभव नहीं है। अब तो कोई बहुत जोर से तूफान आ जाए और कोई आंधी और भूकंप आ जाए और सब हिल जाए, तो शायद हमारी नींद टूटे। और हो सकता है न भी टूटे। क्योंकि कोई बहुत ही गहरे सोने वाले हों, तो शायद भूकंप में भी सोए रहें।
तो इधर तीन दिन मैंने बहुत सी चोटें पहुंचाईं जान कर। दुख रहेगा तो उन लोगों का, जिनको चोट न पहुंची हो, तो उनसे क्षमा मांगता हूं कि अगली बार आऊंगा तो और जोर से पहुंचाने की कोशिश करूंगा। लेकिन जिनको पहुंच गई हो, उनका धन्यवाद करता हूं, उनका स्वागत करता हूं। वह चोट उनको चिंतन का मौका दे, विचार का, खोज का, उनके जीवन में कोई घड़ी आ जाए कि वे जाग सकें, खुद कुछ जान सकें, तो ही उन्हें उनकी आत्मा उपलब्ध हो सकती है।
अंतिम बार हम अब रात के ध्यान के लिए बैठेंगे।